भारतीय जैन तीर्थ दर्पण।

सम्पूर्ण जैन तीर्थों का सांस्कृतिक इतिहास, पौराणिक विवरण
एवं आधुनिक स्वरूप
चित्रों तथा मान-चित्र से सुशोभि

●

संग्रह कर्त्ता :
ए० सी० जैन

भगवान महावीर की २५००वीं ◎
निर्माण महोत्सव के संदर्भ
में प्रकाशित

प्रकाशक :
जैनको० प्रकाशक

मूल्य आठ रुपया

जो

श्रमण संस्कृति के अप्रतिम नायक

युग बोध के चैतन्य प्रतीक

एवं

वीतराग विज्ञानता के मूर्तिमान स्वरूप थे

उन

तीर्थंकर वर्धमान महावीर के पुनीत चरणों में

हमारे कोटि कोटि प्रणाम !
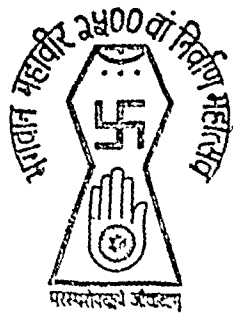
तीर्थंकर महावीर की वाणी के समर्थ उद्घोषक

तथा

सर्व मान्य ग्रन्थ 'समण संत' के विमोचन कृता

परम पूज्य उपाध्याय मुनि श्री १०८ विद्यानन्द जी

महाराज के कर कमलों में

सादर समर्पित

श्री १०८ आचार्य विमलसागर जी महाराज

का

शुभाशीर्वाद

यह पुस्तक 'भारतीय जैन तीर्थ दर्पण' बहुत सुन्दर परिश्रम से लिखी गई है। यात्रियों को यात्रा में सहायक होगी और समाज अपनाए और पुस्तकें आलंबन से अपनी-अपनी अभीष्ट यात्रायें कर मनोरथ सफल बनावें।

पुस्तक सम्पादक महोदय ने अच्छा परिश्रम किया है। उनको पूर्ण आशीर्वाद है और उनके उत्साह की वृद्धि हो।

आ० वि० सागर

दिनांक १७-१०-७५

पृष्ठ निर्देशन

जैन दृष्टि में राजस्थान तथा जैन तीर्थ

इतिहास और कला की पृष्ठभूमि

काल चक्र—काल सतत प्रवाहमान् है। उसका चक्र निरन्तर घूमता रहता है। काल का कहीं आदि नहीं और कहीं अन्त नहीं। जैन धर्म में इस काल-चक्र को अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी इन दो खण्डों में विभाजित किया है। इनमें से प्रत्येक के ६ विभाग हैं—सुषमा-सुषमा, सुषमा, सुषमा-दुषमा, दुषमा-सुषमा, दुषमा, दुषमा-दुषमा। इन सब १२ कालों का एक कल्प कहलाता है। प्रकृति स्वयं ही एक कल्प के आधे भाग में निरन्तर उत्कर्षशील बनी रहती है। इसमें मनुष्य की आयु, रूप, स्वास्थ आदि सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष होता रहता है, उसे उत्सर्पिणी काल कहते हैं और जिस काल में अपकर्ष होता रहता है, वह अवसर्पिणी काल कहलाता है।

कल्प-वृक्ष—मनुष्य-समाज के प्रारम्भिक और अविकसित रूप को 'युगलिया समाज' कहते हैं। तत्कालीन मानव-समाज अपनी सम्पूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वृक्षों पर निर्भर रहते थे, जिन्हें कल्प-वृक्ष कहा जाता था। यह १० प्रकार के होते थे—मद्यांग, तूर्यांग, विष्पांग, माल्यांग, ज्योतिरंग, द्वीपांग, गृहांग, भोजनांग, पत्रांग, वस्त्रांग। ये अपने नाम के अनुरूप ही फल देते थे। उस समय मानव प्रकृति से सरल था, वह सहज जीवन व्यतीत करता था। उसकी आवश्यकताएँ सीमित थीं और पूर्ति के साधन असीम थे। इस

काल को भोग-युग कहा जाता था। आधुनिक भाषा में इसे पूर्व पाषाण युग कहा जा सकता है।

कुलकर—कल्पवृक्षों की संख्या घटती जा रही थी। मनुष्यों के समक्ष नित नई समस्याएँ और उलझनें उत्पन्न हो रही थीं। उस समय जिन महान् पुरुषों ने अपने विशेष ज्ञान और सूझ-बूझ से उन समस्याओं और उलझनों को सुलझाया, उन्हें कुलकर कहा जाता है। वे अन्य मानवों के समान ही रहते थे, किन्तु अपने विशिष्ट ज्ञान के कारण उन्होंने समाज का नेतृत्व किया। इस प्रकार १४ कुलकर हुए और ये सभी एक ही वंश-परम्परा के रत्न थे और सिन्धु नदियों के बीच दक्षिण भरत क्षेत्र के निवासी थे। जनता पर इनका बहुत प्रभाव था और आवश्यकता पड़ने पर दण्ड भी देते थे। जो शारीरिक न होकर मनोवैज्ञानिक था। किसी से अपराध होने पर वे कहते 'हा'। यदि अपराध भारी हुआ या पुनः अपराध हुआ तो कहते थे 'मा'। यदि अपराधी फिर भी बाज न आया या अपराध अति भयानक हुआ—(आज की अपेक्षा नहीं) तो कहते 'धिक्'। यह दण्ड अत्यन्त कठोर माना जाता था और तब, पुनः अपराध करने का साहस नहीं होता था।

कुलकरों के समय की विशेष बातें—जोतिराँग कल्पवृक्ष का तेज कम होने से आकाश में सूर्य-चन्द्रमा दिखाई पड़ने लगे—अन्धकार, नक्षत्र और तारागण दिखने लगे—क्रूरमृग, हिंसक जन्तुओं से बाधा होने लगी। दीपोद्योतनोपाय बतलाये—प्रजा जनों को कल्पवृक्षों की सीमा दिखला दी। दिखलाई हुई सीमा विशेष का चिन्ह बतला दिया।—हाथी घोड़े आदि वाहनों का उपयोग बतला दिया।—बच्चों के मुखावलोकन का भाव दूर किया।—बालकों की नामकरण विधि बतला दी—शिशुरोदन-निवारण हेतु बालकों के साथ चन्द्र दर्शनादि क्रीड़ा बताई। बालक और माता-पिता का परस्पर नाता उनको समझा कर कह दिया—नदी समुद्रादि जलाशयों के तरणोपाय

रूप नाव, जहाजादि चलाने की रीति बतलाई।—जन्म समय में जरायु को निकालने का उपाय बतला दिया—जन्म समय की नाभि के नाल को काटने का उपाय बतला दिया, मिट्टी के वर्तन बनाना और स्वयं उगे हुए धान्यों का उपयोग करना बताया। अन्तिम कुलकर नाभिराय हुए। इनके समय कर्म भूमि का आरंभ हुआ। तेरहवें कुलकर के समय पुत्र और पुत्री होने लगे और इन्द्र ने उनका विवाह किया था—कुलकर को छोड़कर वाकी सबका नाम 'आर्य' था।

वैदिक परम्परा में स्वायाम्भुव मनु मन्वन्तर परम्परा के आद्य प्रवर्तक माने गये हैं। स्वायाम्भुव के प्रियव्रत, प्रियव्रत के आग्नीध्र, आग्नीध्र के नाभि और नाभि के पुत्र ऋषभदेव वताये गये हैं।

युग के प्रारम्भ में कर्म-व्यवस्था—जब अन्तिम कुलकर नाभिराय की पत्नी मरुदेवी के गर्भ में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव आने वाले थे, तब सौधर्म इन्द्र ने कुबेर को त्रिलोकीनाथ के उपयुक्त नगरी की रचना करने का आदेश दिया। तब देवों ने अयोध्या की रचना की और इन्द्र ने उस नगरी में प्रथम जिन मन्दिरों का निर्माण किया। भगवान् ऋषभदेव ने युग के आदि में जब केवल एक कल्पवृक्ष शेष था। यहीं पर सबसे पहले असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प का ज्ञान संसार को दिया था। अयोध्या में उन्होंने अपनी ब्राह्मी और सुन्दरी पुत्रियों के माध्यम से लीपि और अंक विद्या का अविष्कार किया। अपने भरत आदि सौ पुत्रों को बहत्तर कलाओं का शिक्षण दिया, सामाजिक व्यवस्था के लिए क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण की स्थापना की, राजनीतिक व्यवस्था हेतु पुर, ग्राम, खेट, कर्वट नगर आदि की व्यवस्था की। अन्त में सारे राष्ट्र को ५२ जनपदों (प्रदेशों) में विभाजित करके और उन्हें अपने १०० पुत्रों में बाँटकर निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि-दीक्षा लेकर उन्होंने धर्म-मार्ग का प्रशस्त करने का सौभाग्य प्रदान किया। उनके पुत्र चक्रवर्ती भरत ने, प्रदेशों और

खण्डों पर विजय प्राप्त करके प्रथम सार्वभौम साम्राज्य की स्थापना की। अयोध्या को राजनीतिक केन्द्र बनाया और इस देश को 'भारत वर्ष' नाम दिया। इससे पूर्व इस देश का नाम अजनाभ वर्ष या नाभि-खण्ड था।

५२ जनपदों के नाम इस प्रकार हैं—सुकोशल, अवन्ती, पुण्ड्र, उण्ड्र, अश्मक, रम्यक, कुरु, काशी, कलिंग, अंग, वंग, सुह्म, समुद्रक, काश्मीर, उशीनर, आनंत, वत्स, पंचाल, मालव, दशार्ण, कच्छ, मगध, विदर्भ, कुरुजाँगल, करहाट, महाराष्ट्र, सुराष्ट्र, आभरि, कोंकण, वनवास, आन्ध्र, कर्णाट, कौशल, चोल, केरल, दारु, अभिसार, सौवीर, शुरसेन, अपरान्तक, विदेह, सिन्ध, गान्धार, यवन, चेदि, पल्लव, काम्बोज, आरट्ट, वाह्लीक, तुरुषक, शक और कैकय।

तीर्थ-वैभव तथा परिचय

जैन तीर्थ क्षेत्र, हमारी धार्मिक परम्परा की अहिंसामूलक संस्कृति की ज्योति को प्रकाशमान रखने वाले, हमारी आस्था को आधार देने वाले, हमारे जीवन को कल्याणमय बनाने वाले, जन-जन का कल्याण करने वाले हमारे तीर्थकर ही हैं। तीर्थंकर प्रत्येक युग में 'तीर्थ' का प्रवर्तन करते हैं, अर्थात् मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करते हैं। समाज में उक्त तीन प्रकार के तीर्थक्षेत्रों की मान्यता का प्रचलन रहा है—(१) निर्वाण क्षेत्र—वे क्षेत्र कहलाते हैं, जहां तीर्थंकरों का या महान् आचार्य साधु का निर्वाण हुआ हो। यह क्षेत्र कुल पांच हैं :—कैलाश, चम्पा, पावा, ऊर्प्रयन्त और सम्मेद शिखर, इन पाँच के अतिरिक्त अन्य मुनियों की निर्वाण भूमियाँ हैं। (२) कल्याण क्षेत्र—जहां तीर्थंकरों के गर्भ, जन्म, दीक्षा और केवल ज्ञान कल्याणक हुआ है। जैसे अयोध्या, वाराणसी, सिंहपुरी, चन्द्रपुरी, हस्तिनापुर, शौरीपुर, अहिच्छत्र, काकन्दी, कुकुभग्राम आदि। (३)अतिशय क्षेत्र—जहाँ

किसी मन्दिर में या मूर्ति में कोई चमत्कार दिखाई दे, जैसे श्री महावीर जी, देवगढ़ आदि। अतिशय क्षेत्रों के प्रति आकर्षण भौतिक या सांसारिक होता है, आध्यात्मिक नहीं होता।

जैन साहित्य में मूर्तियों के कृत्रिम और अकृत्रिम दो प्रकार बतलाये गये हैं। इसी प्रकार चैत्यालय भी दो प्रकार के होते हैं— कृत्रिम और अकृत्रिम। नन्दीश्वर द्वीप, सुमेरु, कुलाचल, शाल्मली वृक्ष, जम्बू वृक्ष, वक्षार गिरि, चैत्य वृक्ष, रतिकर गिरि, रुचक गिरि, कुण्डल गिरि, मानुषोत्तर पर्वत, इष्वाकार गिरि, अंजन गिरि, दधिमुख पर्वत, व्यन्तरलोक, स्वर्गलोक, ज्योतिर्लोक और भवनवासियों के पाताल लोक में चैत्यालय पाये जाते हैं। इन अकृत्रिम चैत्यालयों में अकृत्रिम प्रतिमाएँ विराजमान हैं। कृत्रिम मन्दिर एवं प्रतिमाएँ सर्वप्रथम भरत क्षेत्र के प्रथम चक्रवर्ती भरत ने अयोध्या और कैलाश में मन्दिर बनवा कर उनमें स्वर्ण और रत्नों की मूर्तियां विराजमान करायीं। इनके अतिरिक्त बाहुबली स्वामी की पोदनपुर में पांच सौ पच्चीस धनुष की प्रतिमा भी निर्माण करायी।

तीर्थ क्षेत्र पर तीर्थंकरों के कल्याणक स्थानों और सामान्य केवलियों के केवल ज्ञान और निर्वाण स्थानों पर प्राचीन काल में, लगता है उनकी मूर्ति विराजमान नहीं होती थी। तीर्थंकरों के निर्वाण स्थान को सौ धर्मेन्द्र अपने वज्रदण्ड से चिह्नित कर देता था। उस स्थान पर भक्त लोग चरण चिन्ह बना देते थे। तीर्थों पर प्रायः चरण-चिन्ह ही रहते थे और उनके लिए एकाध मन्दिर, स्तूप, आयागपट्ट, धर्मचक्र, अष्ट प्रातिहार्य युक्त मूर्तियों का निर्माण होता था और वे जैन कला के अप्रतिम अंग माने जाते थे। पश्चात् जब मन्दिरों का महत्व बढ़ने लगा तो तीर्थ पर भी अनेक मन्दिरों का निर्माण होने लगा।

दिल्ली

भारत की राजधानी, देहली अथवा दिल्ली का साहित्य में सर्वप्रथम उल्लेख महाभारत काल में इन्द्रप्रस्थ के रूप में मिलता है। पश्चात् समय-समय पर इसके नामों में परिवर्तन होता रहा, जैसे ढिल्ली, ढिल्लका, योगिनीपुर. जोइणीपुर, जहानाबाद, दिल्ली, देहली। ढिल्ली शब्द का प्रयोग ग्यारहवीं शताब्दी और उसके पश्चात्वर्ती काल में खूब होने लगा था। इतिहासकारों के मतानुसार तोमरवंशी राजा अनंगपाल प्रथम ने इस नगरी की स्थापना की थी। अनंगपाल प्रथम के वंशजों ने कुछ वर्षों तक राज्य किया। चन्द्रदेव राठौड़ ने उन्हें भगा दिया, वे लोग यहाँ से भागकर कन्नौज चले गये। फिर द्वितीय अनंगपाल सन् १०५१ में दिल्ली में आया और उसे जीत कर अपनी राजधानी बनाई। उसने नवीन शहर बसाया एवं अनंगपाल प्रथम द्वारा निर्मित प्राचीन किले की दीवार का विस्तार किया। अनंगपाल द्वितीय के लगभग १०० वर्ष पश्चात् अनंगपाल तृतीय हुआ। सन् ११५० के लगभग चौहान वंशी राजा आना के पुत्र विग्रहराज (बीसलदेव चतुर्थ) ने अनंगपाल को पराजित करके दिल्ली को अजमेर का सूबा बना दिया।

इसके पश्चात् अधिकार के लिए संघर्ष होते रहे और इस पर इन आठ शताब्दियों में चौहान, गुलाम, खिलजी, तुगलक, मुगल तथा

अंग्रेजों ने शासन किया। १७वीं शताब्दी के अन्त तक के काल में कला और संस्कृति को भीषण क्षति पहुँची। इस काल में मन्दिरों और मूर्तियों का भयंकर विनाश किया गया।

अनंगपाल तृतीय के काल में यहाँ कई जैन मन्दिरों का निर्माण हुआ था। एक सुन्दर एवं विशाल जैन मन्दिर का तो निर्माण, अनंगपाल के मुख्य मन्त्री अग्रवाल वंशी नट्टल साह ने कराया था। ऐसी धारणा है कि यह मन्दिर भगवान पार्श्वनाथ का था। एक दूसरा मन्दिर भगवान आदिनाथ का था। इन दो जैन मन्दिरों के अतिरिक्त उस समय देहली में जैन मन्दिर थे या नहीं? यदि थे तो कितने और कहां-कहां पर थे? इन सब प्रश्नों का कोई प्रामाणिक उत्तर देने के स्थिति में आज कोई इतिहासकार नहीं है। किन्तु एक प्रमाण है कुतुवमीनार के निकट 'कुव्वतुल इस्लाम' नामक मस्जिद के द्वार पर कुतुवद्दीन द्वारा खुदवाया अभिलेख (फारसी का) इस आशय का है कि यह मस्जिद २७ हिन्दू एवं जैन मन्दिरों को तोड़ कर बनवायी थी। मन्दिर के अवशिष्ट चिन्हों में हाथी-द्वार तथा दो ओर के सभागृह अब भी अछूते से जान पड़ते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कीली के पार्श्वभाग में शिखर-युक्त पीठिका में मुख्य वेदी स्थापित थी तथा इसी के केन्द्र से चारों ओर सभागृह था। प्राचीन शैली के शिखर-युक्त भव्य गुम्बदों की छतों व दीवारों में तीर्थंकरो की मूर्तियां, तीर्थंकर की माता को गर्भावस्था में दिखलाई देने वाले १६ स्वप्नों का दृश्य भगवान के जन्म के पश्चात् इन्द्र द्वारा अभिषेक का दृश्य आदि उत्कीर्ण हैं। मन्दिर के वर्तमान अवशिष्ट चिन्ह देख कर यह विश्वास होता है कि यह सम्पूर्ण मन्दिर एक सरोवर के मध्य में स्थित था और जैसे शीघ्रता में मन्दिर को लीप पोत कर मस्जिद बना दिया गया हो।

दिल्ली क्षेत्र के दि० जैन मन्दिरों की सूची

१. श्री दि० जैन लाल मन्दिर, चांदनी चौक।
२. चैत्यालय गुलावराय मेहरचन्द, गली खजांची दरीवा।
३. चैत्यालय साहिबसिंह, गली खजांची, दरीवा।
४. श्री दि० जैन छोटा मन्दिर, कूचा सेठ, दरीवा।
५. " " " बड़ा मन्दिर, कूचा सेठ, दरीवा।
६. " " " चैत्यालय धर्मपुरा गली अनार, दरीवा।
७. " " " चैत्यालय दिवान मुन्शी रिशकलाल सतघरा।
८. " " " मन्दिर सतघरा।
९. " " " नया मन्दिर धर्मपुरा।
१०. " " " चैत्यालय धर्मपुरा।
११. " " " चैत्यालय २२३४ धर्मपुरा।
१२. " " " पंचायती मन्दिर मस्जिद खजूर।
१३. " " " मेहर मन्दिर मस्जिद खजूर।
१४. " पद्मावती परवाल दि० जैन मन्दिर मस्जिद खजूर।
१५. " महावीर दि० जैन मन्दिर वैद्यवाड़ा।
१६. " शान्तिनाथ दि० जैन चैत्यालय वैद्यवाड़ा।
१७. " दि० जैन मन्दिर (गोधाजी) वैद्यवाड़ा।
१८. " दि० जैन मन्दिर मोहल्ला इमली।
१९. " दि० जैन चैत्यालय वाल आश्रम, दरियागंज।
२०. " हुकमचन्द दि० जैन चैत्यालय ७।३३ दरियागंज।
२१. " अहिंसा मन्दिर जिनालय अन्सारी रोड, दरियागंज।
२२. " दि० जैन मन्दिर दिल्ली गेट।
२३. " दि० जैन महावीर चैत्यालय।
२४. " दि० जैन मन्दिर मोरीगेट।
२५. " भगवान पार्श्वनाथ दि० जैन मन्दिर गली कुम्हारों की।
२६. " दि० जैन मन्दिर आर्यपुरा, सब्जी मण्डी।

२७. श्री दि० जैन मन्दिर शक्ति नगर, सब्जी मण्डी ।
२८. " दि० जैन चैत्यालय जैन ट्रस्ट मैदान डी ब्लाक ।
२९. " आदिनाथ दि० जैन मन्दिर भारत नगर ।
३०. " दि० जैन मन्दिर शान्तिनगर (जखीरे के पास)
३१. " दि० जैन पंचायती मन्दिर गली जैन मन्दिर, पहाड़ी धीरज ।
३२. " महावीर दि० जैन मन्दिर गली नाथनसिंह, पहाड़ी धीरज ।
३३. " दि० जैन चैत्यालय गली जैन मन्दिर, पहाड़ी धीरज ।
३४. " दि० जैन चैत्यालय डिप्टीगंज (महावीर नगर)
३५. " दि० जैन आदिनाथ मन्दिर कुतुबमीनार, महरौली ।
३६. " दि० जैन मन्दिर चिराग दिल्ली ।
३७. " दि० जैन मन्दिर भोगल जंगपुरा, दिल्ली ।
३८. " पार्श्वनाथ दि० जैन मन्दिर ग्रीन पार्क एक्सटैशन ।
३९. " स्वर्ण भद्रकूट चैत्यालय ग्रीन पार्क ।
४०. " दि० जैन चैत्यालय ए११४, नेताजी नगर ।
४१. " दि० जैन मन्दिर सरोजनी नगर, नई दिल्ली ।
४२. " दि० जैन चैत्यालय लोदी कालोनी विनय नगर, नई दिल्ली ।
४३. " दि० जैन पार्श्वनाथ मन्दिर जयसिंहपुरा, नई दिल्ली ।
४४. " दि० जैन अग्रवाल मन्दिर जयसिंहपुरा, नई दिल्ली ।
४५. " जैन निशि मन्दिर नई दिल्ली ।
४६. " दि० जैन मन्दिर मन्टोला, मोहल्ला पहाड़गंज नई दिल्ली ।
४७. " दि० जैन मन्दिर माडल वस्ती, दिल्ली ।
४८. " दि० जैन मन्दिर छप्पर वाला कुंआ, करौलवाग, नई दिल्ली
४९. " दि० जैन मन्दिर ५सी।२९ न्यू रोहतक रोड, नई दिल्ली ।
५०. " दि० जैन मन्दिर देवनगर, करौलवाग, नई दिल्ली
५१. " शान्तिनाथ दि० जैन मन्दिर पालम ग्राम, नई दिल्ली ।
५२. " दि० जैन मन्दिर सदर बाजार (छावनी) दिल्ली कैन्ट ।
५३. " अग्रवाल दि० जैन मन्दिर नजफगढ ।

५४. श्री दि० जैन मन्दिर कैलाश नगर गली नं० २, ३
५५. " दि० जैन मन्दिर गाँधी नगर ३१
५६. " पार्श्वनाथ दि० जैन नया मन्दिर शास्त्री नगर।
५७. " दि० जैन मन्दिर पटपड़गंज
५८. " दि० जैन मन्दिर ब्रह्मपुरी, (शाहदरा के पास)
५९. " दि० जैन चैत्यालय जैन नगर (उसमानपुर) शाहदरा
६०. " दि० जैन मन्दिर शाहदरा जी० टी० रोड।
६१. " दि० जैन मन्दिर गली मन्दिर वाली, शाहदरा।
६२. " दि० जैन मन्दिर कबूल नगर, शाहदरा।
६३. " दि० जैन मन्दिर जी० ई० ५।३७ कृष्णा नगर।
६४. " दि० जैन मन्दिर गौतमपुरी।
६५. " दि० जैन मन्दिर जवाहर मार्ग, वैस्ट लक्ष्मी नगर!
६६. " दि० जैन पार्श्वमाथ मन्दिर ए ब्लाक शक्करपुर।
६७. " दि० जैन मन्दिर शिवपुरी (निकट शाहदरा)

इन मन्दिरों में से तीन का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा जो मूर्तियों की प्राचीनता और अतिशय के कारण अत्याधिक प्रसिद्ध हैं।

दिगम्बर जैन लाल मन्दिर—लाल किले के सामने चांदनी चौक में है। एक प्रकार से दिल्ली के जैन मन्दिरों में सब से प्राचीन है। जहां आज मन्दिर है, वहां और उसके आस-पास के स्थान को बादशाह शाहजहाँ (सन् १६३९) के समय में उर्दू बाजार नाम का बाजार था। कहते हैं शाहीफोज के एक जैन अफसर ने एक टैण्ट में अपने दर्शन पूजन के लिए एक तीर्थंकर प्रतिमा रख ली थी, अन्य जैन अधिकारी भी यहां दर्शन करने आने लगे। एक धारणा के अनुसार सन् १६५६ में यहां एक मन्दिर का निर्माण हुआ। केन्द्रीय स्थान पर होने तथा कुछ देवी चमत्कारों के कारण मन्दिर की मान्यता होने लगी। एक किंवदन्ती प्रचलित है कि बादशाह औरंग-

जेब ने लगभग सन् १६६० में हुक्म निकाला कि मन्दिर में बाजे न बजाये जायें, नगाड़े बजते रहें। आश्चर्य की बात तो यह थी कि बाजे बजाने वाला वहां कोई दिखाई नहीं पड़ता था। बादशाह को खबर की गई, अधिकारियों के कथन पर विश्वास न हुआ अतः वह स्वयं मन्दिर में देखने गये, वे बहुत प्रभावित हुए और इस मन्दिर में बाजे बजाने की छूट दे दी। वर्तमान मन्दिर में आठ वेदियाँ हैं। प्राचीन वेदी में भट्टारक जिनचन्द्र द्वारा सं० १५४८ (सन् १४९१) में प्रतिष्ठित भगवान पार्श्वनाथ की पद्मासन श्वेत पाषाण की प्रतिमा लगभग पौने दो फुट की विराजमान है। उसके अगल-बगल की मूर्तियां भी इसी सम्वत् की हैं। एक वेदी में पद्मावती देवी की प्रतिमा विराजमान हैं। इन दोनों प्रतिमाओं की बड़ी मान्यता है।

मन्दिर के मुख्य द्वार के समक्ष मानस्तम्भ उदासीनाश्रम, धर्मशाला पक्षीचिकित्सालय, जैन साहित्य सदन पुस्तकालय आदि लोकोपयोगी संस्थाएँ हैं।

श्री दिगम्बर जैन नया मन्दिर, धर्मपुरा के मध्य में स्थित है। यह मन्दिर राजा हरसुखराय ने जो शाही खजांची व भरतपुर राजा के दरबारी थे, लगभग आठ लाख रुपये की लागत से सन् १८०७ में बनवाया था। मन्दिर की मूलनायक वेदी जयपुर के स्वच्छ बहुमूल्य मकराने के संगमरमर की बनी हुई है और उसमें पच्चीकारी का काम, वेलबूटे का कटाव किन्हीं अंशों में ताजमहल से भी बारीक एवं अनुपम है। जिस कमल पर श्री आदिनाथ भगवान की प्रतिमा विराजमान हैं उस कमल की लागत उस समय की दस हजार रुपया तथा वेदी की लागत सवा लाख रुपया बताई जाती है। कमल के नीचे चारों ओर सिंहों के जोड़े बने हुए हैं। उनकी कारीगरी अपूर्व और आश्चर्यजनक है। यह प्रतिमा सं० १६६४ की है।

दिगम्बर जैन मन्दिर कूंचासेठ—इस मन्दिर का निर्माण सेठ

इन्द्रराज जी ने २०० वर्ष पूर्व कराया था। ये यहीं सेठ के कूंचे में रहते थे। मुख्य वेदी और उसमें विराजमान मूलनायक भगवान आदिनाथ की प्रतिमा मन्दिर के स्थापना काल से ही है। वेदी तीन कटनी वाली है उसमें गन्धकुटी बनी हुई है जहां कमलासन पर भगवान आदिनाथ की कृष्ण पाषाण की पालिशदार पद्मासन पौने दो फुट अवगाहना वाली प्रतिमा विराजमान है। प्रतिमा के लेख के अनुसार इसकी प्रतिष्ठा सम्वत् १२५३ की है। मन्दिर के सामने छोटा दिगम्बर मन्दिर है, इसमें छः वेदियां हैं। पद्मावती देवी की मूर्ति बहुत भव्य है।

उत्तर प्रदेश के जैन तीर्थ

पूर्वकालीन कुरुजांगल, पंचाल, कौशल, वत्स, काशी, शुरसेन जनपद यह वर्तमान उत्तर प्रदेश के अन्तर्गत हैं। उत्तर प्रदेश में ही मानव की संस्कृति और सभ्यता का बीजारोपण हुआ। पौराणिक और सांस्कृतिक साहित्य के अनुसार उत्तर प्रदेश में १८ तीर्थंकरों के गर्भ, जन्म, दीक्षा और ज्ञान कल्याणक हुए। अयोध्या में भगवान ऋषभदेव, अजित नाथ, अभिनन्दन नाथ, सुमति नाथ और अनन्त नाथ भगवान् का जन्म हुआ। अयोध्या से २४ कि. मी. दूर रतनपुरी में भगवान् धर्मनाथ उत्पन्न हुए। अयोध्या से १०९ कि. मी. दूर श्रावस्ती में भगवान सम्भवनाथ ने, देवरीया से १४ कि. मी. दूर काकन्दी में भगवान पुष्पदंत का जन्म हुआ। काशी भगवान सुपार्श्व-नाथ और पार्श्वनाथ की जन्मभूमि है। काशी से २० कि. मी. दूर चन्द्रपुरी भगवान चन्द्रप्रभु और ९ कि. मी. दूर सिंहपुरी भगवान श्रेयांस नाथ के जन्म से पवित्र हुई। इलाहाबाद से ६० कि. मी. दूर कौशाम्बी में भगवान पद्मप्रभु का जन्म हुआ और हस्तिनापुर में शान्ति नाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ भगवान का जन्म हुआ। कम्पिला भगवान् विमलनाथ की तथा आगरा से ७५ कि. मी. दूर शोरीपुर भगवान् नेमिनाथ की जन्मभूमि है।

गंगा, यमुना, सरस्वती, सरयू, घाघरा, गोमती आदि नदियों से

सिंचित, आदिकाल से लेकर यह प्रदेश विभिन्न राजवंशों का शासन केन्द्र रहा। महाभारत युद्ध के सर्वग्रासी परिणामों को भोग कर यह प्रदेश विपुल काल तक निर्बल रहा। उसके पश्चात् इसपर शिशुनाग, नन्द, मौर्य, शुंग, शक, कुषाण, गुप्त, नाग, मौखरी, प्रतिहार, भार, गाहड़वाल आदि वंशों और जातियों का शासन रहा। उत्तर प्रदेश में जैन मन्दिरों, मूर्तियों, आयागपट्टों, स्तूपों आदि का विपुल संख्या में निर्माण हुआ। इसके पश्चात् धर्मोन्माद से ग्रस्त होकर छठी शताब्दी में हूण सरदार मिहिरकुल ने—सन् १०१७ में महमूद गजनवी ने भारत पर अपने नौवें अभियान में उन्होंने न केवल धन-सम्पदा को ही लूटा बल्कि उन्होंने संस्कृति और कला के केन्द्रों का विध्वंस किया। इस प्रकार यह क्रम औरंगजेब तक बराबर चलता रहा। उन्होंने इस प्रदेश के प्रायः सभी जैन तीर्थों के मन्दिरों की मूर्तियों और स्तूपों को नष्ट कर दिया। इस विनाश के कारण जैन संस्कृति को गहरा आघात लगा।

हस्तिनापुर

हस्तिनापुर मेरठ जिले में अवस्थित है। दिल्ली से मेरठ ६० कि. मी. और मेरठ से मवाना होकर हस्तिनापुर ३७ कि. मी. उत्तर-पूर्व में है। मेरठ से जाने का साधन बसें हैं। आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने ५२ आर्य देशों में कुरुजांगल देश भी था, इसकी राजधानी गजपुर थी। पश्चात् कुरुवंश 'हस्तिन्' नामक एक प्रतापी राजा हुआ। उसके नाम पर इसका नाम हस्तिनापुर हो गया। प्राचीन साहित्य में इस नगरी के कई नाम आते हैं। जैसे गजपुर, हस्तिनापुर, गजसाह्वपुर, नागपुर, आसन्दीवत, ब्रह्मस्थल, शान्ति नगर, कुन्जरपुर आदि।

हस्तिनापुर में तीन तीर्थंकरों के १२ कल्याणकों की पूजा और उत्सव मनाया गया। यहाँ सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ, सत्रहवें तीर्थंकर कुन्थुनाथ और अठारहवें तीर्थंकर अरनाथ का जन्म हुआ था तथा अनेक तीर्थंकरों के समवसरण यहाँ आये थे। संसार में आहार दान देने की प्रथा राजकुमार श्रेयांस कुमार द्वारा ऋषभदेव भगवान को आहार देने के बाद ही प्रचलित हुई। जब भगवान प्रयाग से विहार करते हुए हस्तिनापुर पधारे तो बाहुबली के पुत्र हस्तिनापुर नरेश सोमप्रभु के लघु भ्राता श्रेयान्स ने उन्हें महलों में ले जाकर वैशाख शुक्ला तृतीया को इक्षुरस का शुद्ध आहार दिया।

श्रेयांस को दान के प्रथम प्रवर्तक के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। उसने आहार दान वाले स्थान पर रत्नमय स्तूप का निर्माण कराया।

अन्य एक घटना इस प्रकार है—उज्जयिनी नरेश श्री धर्मा के बली, बृहस्पति, तमुचि और प्रह्लाद चार मन्त्री थे। एक बार महामुनि अकम्पन सात सौ मुनियों के संघ के साथ उज्जयिनी पधारे। राजा उनके दर्शनों को जाने लगा। जैन मुनियों से द्वेष रखने वाले चारों मन्त्रियों ने राजा को रोकना चाहा। फिर भी वह चला गया और मन्त्रियों को भी साथ में जाना पड़ा। आचार्य महाराज ने मुनिसंघ को मौन रखने का आदेश दे रखा था। जब राजा दर्शन करके लौटा तो मार्ग में श्रुतसागर नामक मुनि नगर से आते हुए मिले। मन्त्रियों ने उनसे अनावश्यक विवाद छेड़ दिया। मुनि श्रुतसागर को गुरु की आज्ञा का पता नहीं था। उन्होंने वाद-विवाद में मन्त्रियों को निरुत्तर कर दिया। फलतः उसी दिन रात्रि में गुरु की आज्ञा से मुनि श्रुतसागर उसी स्थान पर आये और प्रतिमायोग धारण कर बैठ गये। अपनी पराजय के कारण मन्त्री उक्त मुनि को मारने के लिए रात्रि में आये और उन्होंने मुनि पर तलवार से जैसे ही वार करना चाहा कि वनदेवता ने उन्हें कीलित कर दिया। राजा ने मन्त्रियों को अपमानित करके राज्य से निकाल दिया। चारों मन्त्री हस्तिनापुर पहुँचे। वहाँ के कुरुवंशी राजा पद्म ने उन्हें अपना मन्त्री बना लिया। एक बार मन्त्रियों की युक्ति से राजा ने अपने शत्रु सिंहबल राजा को पकड़ लिया। राजा ने बलि से 'वर' माँगने को कहा। बलि ने सोचकर कहा—जब आवश्यकता होगी, तब माँग लूँगा। विहार करते हुए अकम्पनाचार्य मुनि संघ के साथ हस्तिनापुर पधारे और वहीं वर्षायोग धारण करके नगर के बाहर विराजमान हो गये। तब बलि ने राजा पद्म से वर माँग लिया, उसके फलस्वरूप बलि ने सात दिन का राज्य प्राप्त कर लिया। राजा महलों में रहने लगा। बलि ने मुनि संघ पर घोर उपसर्ग किया। तब मुनियों ने नियम

ले लिया—उपसर्ग दूर होगा तो आहार-विहार करेंगे, अन्यथा नहीं।

उस समय राजा पद्म के छोटे भाई विष्णुकुमार मुनि बनकर घोर तपस्या कर रहे थे। उन्हें विक्रिया आदि कई ऋद्धियाँ प्राप्त हो चुकी थीं। उनके गुरु मुनि श्रुतसागर उस समय मिथिला में थे। निमित्तज्ञान से उन्हें इस उपसर्ग का पता लग गया। उनके मुख से अकस्मात् 'आज मुनि संघ पर दारुण उपसर्ग हो रहा है' शब्द निकले। पूछने पर उन्होंने बताया—'इस उपसर्ग को केवल विष्णुकुमार मुनि दूर कर सकते हैं।' उन्हें विक्रिया ऋद्धि प्राप्त हो गई है, इसका ज्ञान ही नहीं था। उन्होंने परीक्षा ली तब विश्वास हुआ। वे तत्काल हस्तिनापुर पहुँचे और राजा पद्म से मिले। जब राजा से वरदान की बात ज्ञात हुई तो मुनि विष्णुकुमार वामन ब्राह्मण का रूप धारण कर बलि के पास यज्ञ-मण्डप में पहुँचे। बलि ने कहा—'महाराज आपकी जो इच्छा हो माँग लीजिए।' वामन रूपधारी विष्णुकुमार ने केवल ३ पग धरती माँगी। बलि ने जल लेकर संकल्प किया और कहा कि आप अपने पांवों से नाप लीजिए। विष्णुकुमार ने विद्या से अपना शरीर बढ़ाया। उन्होंने एक पग सुमेरू पर्वत पर रखा, दूसरा मानुषोत्तर पर्वत पर रखा। तीसरे पग के लिए स्थान ही नहीं बचा, कहाँ रखें। तीनों लोकों में क्षोभ व्याप्त हो गया। देवों ने आकर मुनियों का उपसर्ग दूर किया। बलि भय के मारे विष्णुकुमार के चरणों में गिर पड़ा। विष्णुकुमार ने अपने गुरु के पास जाकर प्रायश्चित लिया और घोर तपस्या करके निर्वाण पद को प्राप्त हुए।

भगवान मुनि सुव्रतनाथ (रामायण-काल) के ही समय में हस्तिनापुर में गंगदत्त श्रेष्ठी था। उसके पास सात करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ थीं। एक बार प्रभू हस्तिनापुर पधारे। श्रेष्ठी को भगवान का उपदेश सुनकर वैराग्य उत्पन्न हो गया और दीक्षा लेली। यहीं पर कौरव और पाण्डव हुए थे और राज्य के प्रश्न पर दोनों में महाभारत नामक प्रसिद्ध युद्ध भी हुआ था। वरनाल नामक वह स्थान जहां दुर्योधन ने

लाख के घर में पाण्डवों को जलाने की योजना की थी, इसके पास ही है। महाभारत के पश्चात् यहाँ पाण्डवों का आधिपत्य हो गया। अर्जुन के पौत्र परीक्षित् की मृत्यु नागों के हाथों हुई थी, तथा कुछ समय तक यहाँ नाग जाति का आधिपत्य रहा। परीक्षित् के पुत्र जनमेजय ने इनके साथ सतत युद्ध करके इन्हें परास्त किया। तो भी हस्तिनापुर पर नागों के आक्रमण वरावर होते रहे।

हस्तिनापुर का विनाश—परीक्षित् की पांचवीं पीढ़ी में अधिसीम कृष्ण का पुत्र निचक्षु हुआ। इसके राज्य काल में लाल टिड्डियों का भयानक प्रकोप हुआ, और भीषण अकाल पड़ गया। तभी गंगा में भी भीषण बाढ़ आ गई (लगभग १०-१२वीं शताब्दी पूर्व) और उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचे हस्तिनापुर नगर के सम्पूर्ण वैभव और कला—सभ्यता और सम्पदा सबको गंगा अपने साथ बहा ले गयी और अपने पीछे मीलों में इसके अवशेष छोड़ गई। फलतः निचक्षु राजधानी यहाँ से हटाकर कौशाम्बी ले गया। यह हस्तिनापुर का प्रथम विनाश था। इसके पश्चात् नगर फिर वसा। किन्तु कुरुवंश के स्थान पर नाग जाति का आधिपत्य हो गया। सम्भवतः नाग जाति के आधिपत्य काल में ही भगवान पार्श्वनाथ का समवसरण आया था। भगवान महावीर का समवसरण भी यहाँ आया और दिव्य उपदेशों को सुनकर वहाँ के राजा शिवराज ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया, और स्मृति स्वरूप एक स्तूप का निर्माण कराया। हस्तिनापुर ईसा पूर्व ३०० तक आवाद रहा। फिर किसी भीषण अग्निकाण्ड के कारण दूसरा विनाश हुआ। तीसरी वार—सम्राट अशोक के पौत्र प्रियदर्शी सम्राट सम्प्रति ने यहाँ अनेक जिन मन्दिरों, स्तम्भ और स्तूप का निर्माण कराया। लगभग २०० वर्ष पश्चात् किसी कारण विनाश हो गया। १०-११वीं शताव्दी में भारवंशी राजा हरदत्त राय के समय वसायी गई और १४वीं शताब्दी तक रही। पूरवर्ती काल में निर्मित

मन्दिर एवं स्तूप प्रकृति के प्रकोप से और मुस्लिम शासकों की धर्मान्धता के कारण नष्ट हो गये।

संवत् १८५८-६३ में दिल्ली निवासी एवं मुगल बादशाह शाह आलम के खजांची राजा हरसुखराय ने मन्दिर बनवाया और मूल-नायक भगवान् पार्श्वनाथ की बिना फण वाली प्रतिमा विराजमान कराई। यह मन्दिर उस केन्द्रीय टीले पर बनाया गया था, जहां सम्भवतः पहले कोई प्राचीन मन्दिर था। सन् १८५७ के गदर के समय गूर्जर लोगों ने इस मन्दिर को लूट लिया और मूलनायक प्रतिमा को ले गये। फलतः दिल्ली धर्मपुरा के नये मन्दिर से वि. सं० १५४८ में भट्टारक जिनचन्द्र द्वारा प्रतिष्ठित भगवान शान्तिनाथ की मूर्ति यहाँ लाकर मूलनायक के रूप में विराजमान की गयी। गदर के पश्चात् भी एक बार फिर लुटेरों ने मन्दिर को लूटा। मन्दिर के द्वार के समक्ष ३१ फुट ऊँचा मानस्तम्भ है। मन्दिर में एक ही वेदी ३ दर की काफी विशाल है। मूलनायक प्रतिमा पद्मासन लगभग एक हाथ ऊँची और श्वेत पाषाण की भगवान शान्तिनाथ की है। इसकी प्रतिष्ठा सं० १५४८ की है। इसके बायीं ओर अरनाथ और दायीं ओर कुन्थुनाथ की मूर्ति है। वेदी में पंचबालयति (वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर) का एक शिलाफलक काफी प्राचीन है। बीच की प्रतिमा पद्मासन है तथा बायीं ओर दो प्रतिमाएँ खड्गासन हैं। दायीं ओर की दो प्रतिमाएँ नहीं हैं। सम्भवतः मुस्लिम काल में खण्डित कर दी गयी होंगी। यह शिलाफलक २५ वर्ष पूर्व मुजफ्फर नगर के मारगपुर गाँव के जंगल में मिला था तथा छोटी-छोटी पीतल की प्रतिमाएँ हैं।

इस मन्दिर के पीछे दूसरा मन्दिर है। इसमें बायीं ओर की वेदी में भगवान् शान्तिनाथ की सं० १२३१ की खड्गासन प्रतिमा, हल्के सलेटी रंग की है जिसकी अवगहना ५ फुट ११ इंच है। यह प्रतिमा एक टीले की खुदाई में मिली थी। बीच की वेदी के मध्य में काले

पाषाण की सवा दो फुट अवगाहन वाली पार्श्वनाथ की प्रतिमा है, उसके दायें-बायें शान्तिनाथ और कुन्थुनाथ की प्रतिमाएँ विराजमान हैं। आगे की पंक्ति में १ श्वेत पाषाण की एवं ३ पीतल की प्रतिमाएँ हैं। दायीं ओर की वेदी में भगवान महावीर की ७ फुटी प्रतिमा वीर स० २४६९ की श्वेत पाषाण की है। यहाँ निकट ही में एक स्थान पक्का चबूतरा कहलाता है। वहाँ एक गुफा भी है। सम्भवतः यह मुनियों के ध्यान के लिए प्रयुक्त होती थी।

जैन निशियां जो—मन्दिर से ४।। कि. मी. से दूर टीलों पर जैन निशियां बनी हुई हैं। वन-विभाग की कच्ची सड़क से मार्ग जाता है। सड़क २ कि. मी. तक है उसके पश्चात् रेतीला रास्ता है। सबसे पहले शान्तिनाथ की निशियाँ है, टोंक में स्वस्तिक बना हुआ है। इस निशियाँ से दूसरी निशियाँ जाते समय रास्ते में एक पक्का कुआँ मिलता है, इससे आगे जाने पर एक टेकरी का कम्पाउण्ड है, जिसमें दो निशियाँ भगवान अरहनाथ और भगवान कुन्थुनाथ की हैं। दोनों में स्वस्तिक बने हुए हैं—इससे आगे चलकर एक कम्पाउण्ड में मल्लि-नाथ भगवान की टोंक है और स्वस्तिक बना हुआ है।

क्षेत्र पर वार्षिक मेला कार्तिकी शुक्ला ५ से १५ तक होता है। इसके अतिरिक्त फाल्गुनी अष्टाह्निका और ज्येष्ठ कृष्णा १४ को छोटे मेले होते हैं। कई सुन्दर धर्मशालाएं हैं। क्षेत्र में दिगम्बर जैन गुरुकुल और मुमुक्षु आश्रम स्थित है एवं कुछ मन्दिरों का निर्माण हुआ है और हो रहा है।

पारसनाथ का किला

बिजनौर जिले में नगीना रेलवे स्टेशन से उत्तर-पूर्व की ओर 'वढ़ापुर' कस्बा है। वहाँ से ६ कि. मी. पूर्व की ओर कुछ प्राचीन अवशेष दिखाई पड़ते हैं। इन्हें ही 'पारसनाथ का किला' कहते हैं। यह नामकरण तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के नाम पर हुआ लगता है। एक जनश्रुति के अनुसार 'पारस' नामक किसी राजा ने यहाँ किला बनवा कर कई जैन मन्दिरों का निर्माण कराया था। इस समय यहाँ कोई मन्दिर नहीं है, अपितु प्राचीन मन्दिरों और किले के भग्नावशेष चारों ओर कई वर्गमील के क्षेत्र में बिखरे पड़े हैं। उपलब्ध सामग्री के अध्ययन से ज्ञात हुआ कि प्राचीन काल में यह स्थान जैनों का प्रमुख केन्द्र था। जो सामग्री यहाँ उपलब्ध हुई है, उसमें कुछ का परिचय इस प्रकार है—

भगवान महावीर की पौने तीन फुट की बलुए श्वेत पाषाण पद्मासन प्रतिमा शिलाफलक पर है। उक्त मूर्ति के दोनों ओर नेमिनाथ और चन्द्रप्रभु भगवान् की खड्गासन प्रतिमा हैं। इसका अलंकरण दर्शनीय है। भगवान महावीर अशोक वृक्ष के नीचे विराजमान हैं। प्रतिमा के मस्तक पर छत्रत्रयी सुशोभित है। प्रतिमा के सिंहासन के बीच में धर्मचक्र है और चक्र के ऊपर कीर्तिमुख अंकित है। लेख सं० १०६७ का है। भगवान पार्श्वनाथ की एक विशाल पद्मासन प्रतिमा वढ़ापुर गांव में एक घर से मिली थी, जिसे वह उक्त किले के सबसे ऊँचे टीले से उठा लाया था। खण्डित कर दी गयी है। सर्प कुण्डली के आसन पर भगवान् विराजमान हैं, अगल-

बगल में नाग-नागिन अंकित हैं। जिस सातिशय मूर्ति के कारण इस किले को पारसनाथ किला कहा जाता था, सम्भवतः वही मूर्ति यही रही हो। कुछ मूर्तियों के अलावा—सिरदल स्तम्भ आदि भी मिले हैं, मध्य में पद्मासन मुद्रा में भगवान ध्यानलीन हैं। कुछ द्वार-स्तम्भ में मकरासीन गंगा और दूसरे स्तम्भ में कच्छपवाहिनी यमुना का कलात्मक अंकन है, ऊपर की ओर पत्रावली का मनोरम अंकन है। कुछ स्तम्भ ऐसे भी प्राप्त हुए हैं, जिन पर दण्डधारी द्वारपाल बने हैं। देहली के भी कुछ भाग मिले हैं, जिन पर कल्पवृक्ष, मंगलाकलश लिये हुए दो-दो देवता दोनों ओर बने हुए हैं। किले से कुछ अलंकृत ईंटें भी मिली हैं। यहाँ कुछ अवशेष और मूर्तियां नगीना और बिजनौर के जैन मन्दिरों में रखी हैं। शेष अवशेष यहीं पड़े हैं। इन पुरातत्वावशेषों और अभिलिखित मूर्तियों से इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि ९-१०वीं या उससे पूर्व की शताब्दियों में यह स्थान जैन धर्म का केन्द्र रहा।

यह स्थान नगीने के बिलकुल निकट है। यहां से १२ कि. मी. की दूरी पर नहटौर नामक एक कस्बा है। सन् १९०५ में इस कस्बे के पास तांबे का कलशा निकला था जिसमें २४ तीर्थंकरों की मूर्तियां थीं। सम्भवतः ये मुस्लिम आक्रमणकारियों के भय से जमीन में दबा दी गयी होंगी। यह मूर्तियां नहटौर के जैन मन्दिर में रखी हैं। यहां से ५ कि. मी. की दूरी पर पाड़ला गरिबपुर नाम का एक गाँव है। उस ग्राम के बाहर एक टीले पर पद्मासन जैन प्रतिमा मिट्टी में दबी पड़ी थी। उसका कुछ भाग निकला हुआ था। ग्रामीण लोग इसे देवता मानकर पूजते थे। सन् १९६९-७० में जैनियों ने यहाँ की खुदाई कराई, फलस्वरूप भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा निकली। अब यहाँ मन्दिर बन गया है। बिजनौर हस्तिनापुर से केवल २० कि. मी. गंगा के दूसरे तट पर स्थित है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह सारा प्रदेश हस्तिनापुर का बाहरी भाग या उपनगरी रहा हो।

बड़ा गांव

दिल्ली-सहारनपुर सड़क मार्ग पर खेकड़ा बस-स्टैण्ड है। बस-स्टैण्ड से खेकड़ा का बाजार २ कि. मी. है (स्टैण्ड पर हर समय तांगे और रिक्शे मिलते हैं) बाजार से बड़ा गांव ५ कि. मी. है। मेरठ खेकड़ा वाली बस से बड़ा गाँव जा सकते हैं। सम्भवत: किसी जमाने में यहाँ विशाल मन्दिर रहा होगा। किन्तु प्राकृतिक प्रकोप अथवा मुस्लिम काल में धर्मान्धता के कारण नष्ट हो गया और टीला बन गया। ऐलक अनन्तकीर्ति जी की प्रेरणा से सं० १९७८ में इस टीले की खुदाई कराई गई। खुदाई के फलस्वरूप प्राचीन मन्दिर के भग्नावशेष निकले और बड़ी मनोज्ञ १० जैन प्रतिमाएँ निकलीं, जिनमें ७ पाषाण तथा ३ धातु की थीं। लगभग ५ अंगुल की १ हीरे की खण्डित प्रतिमा थी। अत: यमुना नदी में प्रवाहित कर दी गयी। धातु प्रतिमाओं पर कोई लेख नहीं है। किन्तु पाषाण प्रतिमाओं पर ५ पर १२वीं एवं १६वीं शताब्दी के लेख हैं। संवत् १९७९ में एक विशाल जैन मन्दिर का निर्माण किया गया।

विशाल मन्दिर शिखर बन्द है। वेदी में मूलनायक भगवान् पार्श्वनाथ की श्वेत पाषाण की पद्मासन १ हाथ के अवगाहना की प्रतिमा संवत् १५४७ की विराजमान है। प्रतिमा सौम्य और चित्ताकर्षक है। एक अन्य प्रतिमा पीतल की है। बरामदे के चारों कोनों पर शिखरबन्द लघु मन्दिर हैं। पूर्व वेदी में ऋषभनाथ भगवान की मटमैले वर्ण की डेढ़ हाथ की पद्मासन प्रतिमा १५वीं शताब्दी की है तथा भूगर्भ से निकली थी। दक्षिण की वेदी में भूरे पाषाण की

पद्मासन प्रतिमा है, उंगलियाँ खण्डित हैं। इसका लांछन मिट गया है, किन्तु परम्परागत मान्यता के अनुसार इसे विमलनाथ की मूर्ति कहा जाता है। लेख संवत् ११२७ माघ सुदी १३ का है।—पश्चिम वेदी में भगवान् पार्श्वनाथ की श्वेत पाषाण की एक हाथ अवगाहना वाली पद्मासन प्रतिमा है। वेदी में—चारों दिशाओं में पीतल की चार खड्गासन चतुर्मुखी प्रतिमाएँ हैं। पीतल की दो प्रतिमाएँ और हैं। ये सभी भूगर्भ से निकली थीं।—उत्तर की वेदी में भगवान महावीर की मटमैले वर्ण की पद्मासन प्रतिमा है। अवगाहना डेढ़ हाथ है। यह भी भूगर्भ से प्राप्त हुई थी। इन प्रतिमाओं के अतिरिक्त वेदियों पर आधुनिक प्रतिमाएँ और यन्त्र हैं।

मन्दिर के चारों ओर धर्मशाला हैं। धर्मशाला के दक्षिण की ओर के बीच वाले कमरे में नवीन मन्दिर है। यहां एक मानस्तम्भ भी है। प्रति वर्ष फाल्गुन शुक्ला ८-९-१० को मेला भरता है और असौज कृष्णा १ को जलयात्रा होती है।

अहिच्छत्र

अहिच्छत्र बरेली जिले की आंवला तहसील में स्थित है। चन्दौसी बरेली ब्रांच लाईन पर दिल्ली से अलीगढ़ होकर, आंवला (२६१ कि०मी०) या खेती वहोड़ा खेड़ा उतर कर तांगा मिल जाता है। आंवला से क्षेत्र १२ एवं खेती वहोड़ा खेड़ा से ३।। कि० मी० है। रोड द्वारा देहली से मुरादाबाद, चन्दौसी, वजीरगंज, आँवला, रामनगर क्षेत्र लगभग २४० कि० मी० है। पंचाल जनपद, भगवान ऋषभदेव द्वारा रचित ५२ जनपदों में से है। पूर्ववर्तीकाल में पंचाल जनपद

दो भागों में विभक्त हो गया—उत्तर पंचाल और दक्षिण पंचाल; उत्तर पंचाल की राजधानी अहिच्छत्र रही। महाभारत काल में अहिच्छत्र के शासक द्रोण थे। कहीं-कहीं इस नगरी का नाम संख्यावती भी मिलता है। कौशाम्बी के निकट पभोसा की गुफा के लेख में इसका नाम अधिचक्रा भी मिलता है। यहाँ खुदाई में दूसरी शताब्दी की एक यक्ष-प्रतिमा तथा मिट्टी की गुप्तकालीन मोहर मिली थी, उन दोनों पर अहिच्छत्रा नाम मिलता है।

ईसा से ८वीं शती पूर्व संख्यावती नगरी में भगवान पार्श्वनाथ कायोत्सर्ग धारण कर खड़े हुए थे। पूर्व निवद्ध वैर के कारण असुर संवर (कमठ) ने उन पर नाना प्रकार के उपसर्ग किये। इतना ही नहीं, आंधी, जल, वर्षा, उपल वर्षा आदि द्वारा भी घोर उपद्रव करने लगा। भगवान द्वारा विगत जन्म में किये हुए उपकार का स्मरण कर नागराज धरेणन्द्र अपनी देवी पद्मावती के साथ स्वर्ग से वहां आया और भगवान के ऊपर सहस्र फण फैला कर उपसर्ग निवारण किया। तब से इस नगरी का नाम अहिच्छत्र पड़ गया। किन्तु पार्श्वनाथ तो इन उपद्रवों, रक्षा प्रयत्नों और क्षमाप्रसंगों से निर्पिलप्त रहकर आत्मध्यान में लीन थे। उन्हें तभी चैत्र कृष्ण चतुर्थी को केवल ज्ञान उत्पन्न हो गया। संवर देव क्षमा याचना करने प्रभु के चरणों में जा गिरा। तत्पश्चात् इन्द्र की आज्ञा से धनपति कुवेर ने समवसरण की रचना की और भगवान का प्रथम जगत्कल्याणकारी उपदेश हुआ। राजा वसु पाल एवं निग्रन्थ संघ ने अहिच्छत्र में उत्तंग पार्श्वचैत्यों का निर्माण कराया, जिसके निकट में कई कुण्ड भी थे। इस प्रकार अहिच्छत्र भगवान पार्श्व के तीर्थ काल से जैन धर्म का केन्द्र वन गया।

इसी अहिच्छत्र तीर्थ पर फण मण्डप में पद्मावती देवी रचित अनुमान के लक्षण का श्लोक पढ़कर पात्र केशरी जी का जैन धर्म विषयक संशय निवारण होकर सम्यक्त का पूर्ण उद्योत हुआ। स्वयं

पात्र केशरी ने अपने ५०० शिष्यों को वाद विवाद द्वारा परास्त कर जैन धर्म पर श्रद्धान कराया और बाद में प्रातः स्मरणीय विद्यानन्द आचार्य के नाम से विख्यात हुए। आचार्य पात्र केशरी का समय छठी-सातवीं शताब्दी माना जाता है, उस समय नगर के शासक अवनिपाल या अवन्तीपाल थे। जिस समय राजा दुर्मुख अहिच्छत्र पर शासन कर रहे थे तब हस्तिनापुर के राजमन्त्री का पुत्र सोमदत्त अपने विद्याबल से अहिच्छत्र का राज्यमन्त्री बना। अहिच्छत्र में बहुत से सिक्के मिले हैं, जिन पर अग्निमित्र, सूर्यमित्र, भानुमित्र, विष्णुमित्र, भद्रघोष, ध्रवमित्र, जयमित्र, इन्द्रमित्र, फाल्गुनिमित्र और बृहस्पतिमित्र के नाम अंकित हैं। इन राजाओं ने ईसा पूर्व सन् २०० से १०० तक शासन किया था। इसमें से अधिकांश राजा जैन धर्मनुयायी थे। इन राजाओं का सम्बन्ध संभवतः कौशाम्बी के राजवंश से था। एक राजा के रूप में इसका अस्तित्व गुप्त शासनकाल में समाप्त हो गया।

प्राचीन अहिच्छत्र एक विशाल नगरी थी। उसके भग्नावशेष आज रामनगर के चारों ओर बिखरे पड़े हैं। कुछ इतिहासकारों के अनुसार, अहिच्छत्र नगर अपने वैभव काल में ४८ मील की परिधि में था। वृत्मान आँवला, वजीरगंज, रहटुइया, जहां अनेक प्राचीन मूर्तियाँ और सिक्के प्राप्त हुए हैं पहले इसी नगर में सम्मिलित थे। चीनी यात्री हुव्यानत्सांग के अनुसार इस नगर का विस्तार उस समय तीन मील में था तथा यहां मन्दिर और स्तूप थे। कटारी खेड़ा नामक टीले से एक प्राचीन स्तम्भ मिला है। उस पर एक लेख है। इसमें महाचार्य इन्द्रनींद के शिष्य महादरि के द्वारा पार्श्वपति (पार्श्वनाथ) के मन्दिर में दान देने का उल्लेख है। यह लेख पार्श्वनाथ-मन्दिर के निकट ही मिला है। इस टीले और किले से अनेक जैन मूर्तियां मिली हों अगर यहाँ के टीलों और खण्डरों की खुदाई की जाये तो आशा

है गहराई में पार्श्वनाथ कालीन मन्दिर के चिन्ह और मूर्तियां मिल जायें।

क्षेत्र से ३ कि० मी० दूर प्राचीन किले के खण्डहर है, यह किला महाभारत कालीन कहा जाता है। यहाँ दो टीले उल्लेखनीय हैं, इनके नाम ऐंचुली और ऐंचुआ है। ऐंचुआ टीले पर एक विशाल और ऊँची कुर्सी पर पाषाण का ७ फुट ऊँचा एक स्तम्भ है। नीचे का भाग पौने तीन फुट तक चौकोर फिर पौने तीन फुट तक छह पहलू तथा इसके ऊपर का भाग गोल है। ऊपर का भग्न भाग नीचे पड़ा है। इसकी आकृति से ऐसा प्रतीत होता है कि यह मानस्तम्भ रहा होगा। अज्ञानतावश कुछ लोग इसे भीम की गदा कहते हैं। जन-साधारण में ऐसी भी किंवदन्ती है कि यहीं प्राचीनकाल में कोई सहस्रकूट चैत्यालय था। यहां खुदाई में अनेक जैन मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं।

तिखाल वाले बाबा की वेदी—मन्दिर में सामने बायीं ओर एक छोटे गर्भगृह में वेदी में भगवान पार्श्वनाथ की हरितपन्ना की प्रतिमा पद्मासन मुद्रा में विराजमान है। इसकी अवगाहना ९॥ इंच है। प्रतिमा अत्यन्त सौम्य और प्रभावक है तथा कोई लेख नहीं है, सर्प का लाँछन अंकित है और सिर पर फण-मण्डप है। वेदी के ऊपर लघु शिखर है। प्रतिमा के आगे सौम्य चरण १ फुट ५॥ इंच आकार के स्थापित हैं। प्रतिमा का निर्माण।काल १०-११ वीं शताब्दी अनुमान किया जाता है। इस तिखाल के सम्बन्ध में प्राचीनकाल से एक किंवदन्ती प्रचलित है। कहा जाता है जिस समय इस मन्दिर का निर्माण हो रहा था, उन दिनों एक रात लोगों को ऐसा लगा कि मन्दिर के भीतर चिनाई का कोई काम हो रहा है। ईंटों के काटने-छाँटने की आवाज स्पष्ट सुनाई दे रही थी। लोगों के मन में दुः-शंकाएँ होने लगी और उन्होंने उसी समय मन्दिर खोलकर देखा तो वहां कोई नहीं था। 'एक आश्चर्य दृष्टि में आया वहां एक नयी

दीवार वन गई और उसमें एक तिखाल बना हुआ था।' जो संध्या समय तक नहीं था। अवश्य ही किन्हीं अदृश्य हाथों द्वारा यह रचना हुई थी। तभी से लोगों ने इस वेदी की मूर्ति का नाम 'तिखाल वाले बाबा' रख दिया।

इस वेदी से आगे दायीं ओर दूसरे कमरे की वेदी में मूलनायक पार्श्वनाथ की श्याम वर्ण १ फुट १० इंच अवगाहना की अत्यन्त मनोहर पद्मासन प्रतिमा है—सिर पर सप्त फण वाली का मण्डल है—भामण्डल के स्थान पर कमल की सात लम्वायमान पंक्तियों और कली का अंकन जितना कला पूर्ण है उतना ही अलंकरणमय है। मूर्ति के नीचे सिंहासन पीठ के सामने वाले भाग में २४ तीर्थंकर प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं—इसके बायीं ओर श्वेत पाषाण की १० इंच ऊँची पार्श्वनाथ प्रतिमा है—इससे आगे दायीं ओर गर्भ-गृह में दो वेदियां हैं, जिनमें आधुनिक प्रतिमाएँ हैं—अन्तिम एवं पांचवीं वेदी में तीन प्रतिमाएं विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। लगभग २५ वर्ष पूर्व बूंदी (राजस्थान) में भूगर्भ से कुछ प्रतिमाएं प्राप्त हुई थीं। उनमें से तीन प्रतिमाएँ लाकर यहां विराजमान कर दी गयी थीं। तीनों का रंग हलका कत्थई है और शिलापट्ट पर उत्कीर्ण हैं। मध्य में पद्मासन प्रतिमा भगवान पार्श्वनाथ की ढाई फुट अवगाहना की है बायीं और दायीं ओर साढ़े तीन फुट अवगाहना की खड्गासन प्रतिमाएँ हैं।

मन्दिर के निकट ही रामनगर गांव में एक शिखर बन्द मन्दिर है। इस मन्दिर में फणमण्डित भगवान पार्श्वनाथ की श्याम वर्ण पद्मासन प्रतिमा चार फुट अवगाहना की है। प्रतिमा अत्यन्त मनोज्ञ है। इस मूर्ति की प्रतिष्ठा वि० सं० २४८१ में हुई थी—मन्दिर के बाहर उत्तर की ओर आचार्य पात्र केशरी के चरण हैं। चरणों की लम्बाई ११ इंच है। इसके निकट ही पवित्र कुआं है—क्षेत्र का

वार्षिक मेला: चैत्र कृष्णा ८ से १३ तक होता है। धर्मशाला में व्यवस्था सुन्दर है।

मथुरा

मथुरा—दिल्ली-आगरा (ग्राण्ड-ट्रंक) रोड पर दिल्ली से १४५ कि. मी. और आगरा से ५४ कि. मी. दूर है। उत्तरी रेलवे और पश्चिमी रेलवे की बड़ी और छोटी लाइनों द्वारा दिल्ली, कानपुर, भरतपुर, आगरा, हाथरस से सम्बद्ध है। चौरासी क्षेत्र—मथुरा शहर से लगभग ३ कि. मी. है और दिल्ली आगरा रोड का मथुरा 'बाई पास' चौरासी के बगल में होकर निकला है। मथुरा को जैन साहित्य में सिद्ध क्षेत्र और हिन्दू अनुश्रुति के अनुसार सप्त महापुरियों में माना है।

मथुरा भारत की अत्यन्त प्राचीन सांस्कृतिक नगरी है। प्राचीन भारतीय साहित्य में इसके अनेक नाम मिलते हैं। जैसे—मधुपुरी, मधुपुर, मधुरा, मथुरा, महुरा, मधुला, मधुलिका, मधुपघ्ना। इसका मुख्य नाम मधुरा था। यह नाम हरिवंशी राजा हरिवाहन के तेजस्वी पुत्र और प्रतिअर्ध चक्रेश्वर रावण के जमाता मधु राजा के नाम पर पड़ा। महापुराण, हरिवंशपुराण, आदिपुराण ग्रन्थों के अनुसार कृत-युग के प्रारम्भ में भगवान ऋषभदेव ने ५२ जनपदों की स्थापना की थी। उनमें एक शूरसेन जनपद था। किन्तु ईसा की प्रथम शताब्दी में शूरसेन नाम अप्रचलित हो गया-मथुरा-जनपद के रूप में भी प्रयुक्त होने लगा। और बाद में ब्रज कहलाने लगा। प्राचीन काल में मथुरा में चौरासी वन थे, जिनमें १२ बड़े और ७२ उपवन थे। ये वन

मथुरा के चारों ओर दूर-दूर तक फैले हुए थे। इन ८४ वनों में से कुछ के नाम पर अब नगर बस गये हैं। इन ८४ वनों में एक 'जम्बु-वन' भी था। इसी वन में आकर अन्तिम केवली जम्बूस्वामी ने निर्वाण प्राप्त किया था। जम्बूस्वामी का चरित्र अत्यन्त प्रभावक है। वे राजगृह नगर के प्रसिद्ध श्रेष्ठी अर्हदास के पुत्र तथा उनकी माता का नाम जिनमती था। उन्होंने अनेक युद्धों में विजय प्राप्त की थी। चार श्रेष्ठियों ने अपनी कन्याओं का वाग्दान जम्बूकुमार के लिए कर दिया। एक बार दक्षिण के पराक्रमी विद्याधर नरेश रत्न चूल को जीतकर जम्बूकुमार मगध सम्राट श्रेणिक बिम्बसार के साथ लौट रहे थे। राजगृह के उपवन में सुधर्म स्वामी के दर्शन किये और उनका उपदेश श्रवण कर वैराग्य भावना जागृत हो गई। घर पहुँच कर अपने माता-पिता से मुनि-दीक्षा के लिए अनुमति माँगी। यह समाचार उन वाग्दत्ता कन्याओं के माता-पिता ने सुना और अर्हदास श्रेष्ठी के पास दौड़े आये। जम्बूकुमार को इस बात पर राजी कर लिया कि आज ही चारों कन्याओं के साथ उनका विवाह हो जाये। यदि उन्हें दीक्षा ही लेनी हो तो विवाह के पश्चात् कभी भी ले सकते हैं। चारों कन्याओं का विवाह जम्बूकुमार के साथ हो गया। सम्भवतः उन्हें यह विश्वास था कि देवांगनाओं जैसी रूपवती नव-परिणीता स्त्रियों की मोहिनी के पाश में युवक जम्बूकुमार का मन अवश्य उलझ जायेगा। चारों वधुओं ने रात भर अपने विरागी पति को रिझाने के लिए हाव-भाव विलास के अपने सभी अचूक कहे जाने वाले अस्त्र अजमाये, किन्तु सब व्यर्थ हो गये। दहेज में आई विपुल धनराशी के प्रति आकर्षित होकर उस युग का कुख्यात डाकू विद्युचर अपने साथियों के साथ उसी रात जम्बूकुमार के महलों में चोरी करने घुसा। विद्युचर धन की टोह में राजप्रसाद के उस कक्ष के पास पहुँचा जहाँ वर और वधुओं के बीच वाद-विवाद हो रहा था। राग और विराग के इस हृदय-स्पर्शी वार्तालाप के प्रभाव से विद्युन्चर

इतना अभिभूत हुआ कि प्रकट होकर वह भी उस वाद-विवाद में सम्मिलित हो गया। प्रातः होते ही माता-पिता से आज्ञा लेकर जम्बू-कुमार मुनि-दीक्षा लेने चल दिये और उनके पीछे चारों वधुएँ, माता-पिता, विद्युच्चर और उसके साथी दिक्षा लेने हेतू चल पड़े।

इससे पूर्व भगवान मुनि सुव्रतनाथ के काल में एक अन्य घटना घटित हुई। उस समय मथुरा में रावण के दामाद प्रतापी नरेश मधु का शासन था, चमेरन्द्र ने प्रसन्न होकर उसे शूलरत्न नामक शस्त्र दिया था। जब रावण पर विजय प्राप्त कर रामचन्द्र और लक्ष्मण अपने मित्र राजाओं के साथ अयोध्या लौटे उन्होंने राक्षसवंशी, वानर वंशी और ऋक्षवंशी मित्र राजाओं को विभिन्न देशों के राज्य दिये, अपने लघु भ्राता शत्रुघ्न को उसकी इच्छानुसार मथुरा का राज्य दिया। शत्रुघ्न ने सेना लेकर मथुरा पर चढ़ाई कर दी। इस युद्ध में मधु का पुत्र लवण काम आया। मधु ने युद्ध से विरक्त होकर मुनि-दीक्षा ले ली। राज्य पर शत्रुघ्न का अधिकार हो गया और वह अयोध्या लौट गया। शूलरत्न के अधिष्ठाता चमरेन्द्र को जब इस घटना का ज्ञान हुआ तो उसने क्रूद्ध होकर मथुरा नगर में महामारी फैला दी, नगर में त्राहि-त्राहि मच गई। एक दिन चातुर्मास प्रारम्भ होने से पूर्व सप्तऋषि आकाश मार्ग से मथुरा पधारे और वटवृक्ष के नीचे वर्षा योग का नियम लेकर विराजमान हो गए। ये सातों ऋषि प्रभापुर नरेश श्री नन्दन के पुत्र थे जिन्होंने प्रीति कर केवली से मुनि-दीक्षा ग्रहण की और तपश्चरण द्वारा अनेक ऋद्धियां प्राप्त कर ली थीं। उनके ऋद्धि-प्रभाव से महामारी का प्रकोप शान्त हो गया था। शत्रुघ्न भी सप्तऋषियों के दर्शन करने के लिए अयोध्या से मथुरा आए और नगर में अनेक जैन मन्दिर बनवाकर उनमें जिन-प्रतिमाएँ एवं सप्तऋषियों की भी प्रतिमाएँ विराजमान करायीं। सप्तऋषि जिस स्थान पर ठहरे थे, उस स्थान पर भी मन्दिर का

निर्माण कराया। कालान्तर में वह मन्दिर नष्ट हो गया और वहां टीला बन गया। यह टीला अब भी सप्तऋषि टीला कहलाता है।

मथुरा नगरी से सम्बन्धित कतिपया अन्य पौराणिक घटनाएँ महत्वपूर्ण हैं। नौवें नारायण श्रीकृष्ण का जन्म यहीं हुआ। मथुरा के राजा भोजक वृष्णिकी की रानी पद्मावती से उग्रसेन, माहासेन तथा देवसेन नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए। उग्रसेन से कंस नामक पुत्र और देवकी एवं राजमती नाम की पुत्रियाँ थीं। कंस जव गर्भ में था, तभी से वह उग्र प्रकृति का था। उग्रता से भयभीत होकर माता-पिता ने उसे कांस की मंजूषा में बन्द करके तथा साथ में उसके नाम की मुद्रिका और पत्र रखकर यमुना में बहा दिया। उस मंजूषा को कौशाम्वी में मंजोदरी नामक मदिरा बनाने वाली एक स्त्री ने नदी से निकाल लिया। वह बालक का लालन-पालन करने लगी। कंस ज्यों-ज्यों वड़ा होता गया, उसके उपद्रव बढ़ते गये। अतः मंजोदरी ने उसे घर से निकाल दिया। वह शौरीपुर आया, और कुमार वसुदेव से शस्त्र-विद्या सिखने लगा। एक दिन राजगृह के सम्राट जरासन्ध ने घोषणा की—'सिंहपुर नरेश सिंहरथ को जो मनुष्य उसे जीवित पकड़ कर उपस्थित करेगा, उसे राजकीय सम्मान के साथ अपनी सुन्दरी पुत्री जीवद्यशा भी दूंगा।' यह घोषणा सुनकर कुमार वसुदेव कंस आदि शिष्यों को लेकर राजगुह पहुंचे। वहां से विद्या निर्मित सिंहों के रथ पर आरूढ़ होकर सिंहपुर पहुंचे। पताका कंस को थमायी और सिंहरथ नरेश से युद्ध किया। अवसर मिलते ही कंस ने गुरु की आज्ञा से सिंहरथ को बांध लिया और राजगृह पहुंच कर सम्राट जरासन्ध के समक्ष उपस्थित कर दिया। सम्राट ने कंस से वंशादि का परिचय पूछा तो उसने स्पष्ट कह दिया कि मैं मदिरा बनाने वाली स्त्री का पुत्र हूं। सम्राट को कंस के शौर्य, तेज आदि को देखकर विश्वास नहीं हुआ। उसने कौशाम्वी से मंजोदरी को वुलाया। मंजोदरी ने सत्य घटना सुना दी तथा प्रमाणस्वरूप मुद्रिका

श्रावस्ती में भूगर्भ से प्राप्त भगवान नेमीनाथ की प्रमिता
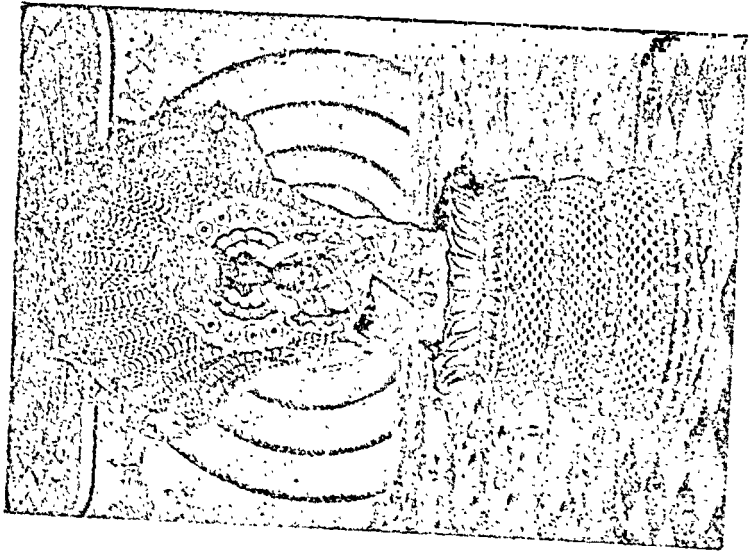
पद्मावती देवी की भव्य मूर्ति वाराणसी
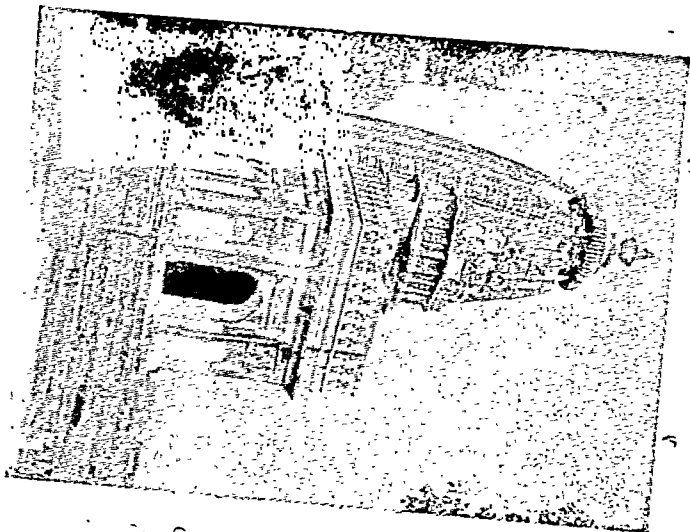
आदिनाथ मन्दिर खजुराहो
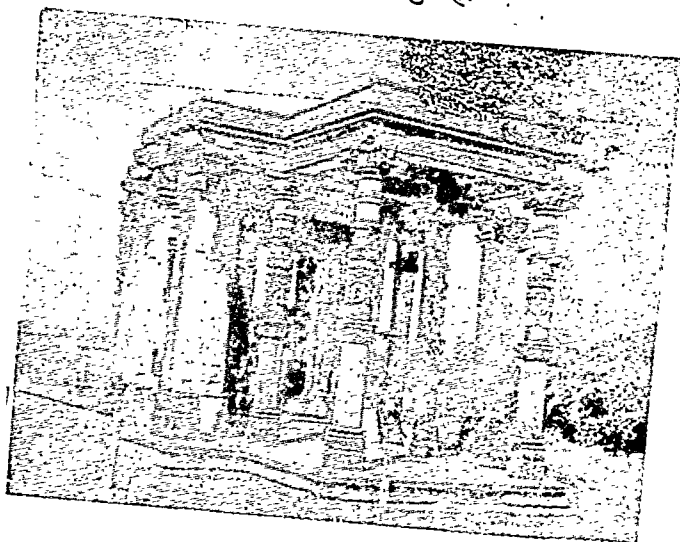
घटाई मन्दिर खजुराहो

एवं पत्र भी उपस्थित कर दिया। जरासन्ध ने कंस का विवाह अपनी पुत्री के साथ कर दिया। कुछ समय पश्चात् सम्राट के पूछने पर कंस ने मथुरा का राज्य माँगा, सम्राट ने अपनी स्वीकृति देदी। कंस सेना सजा कर मथुरा जा पहुंचा। कंस ने अपने पिता उग्रसेन को युद्ध में पराजित करके बन्दी बना लिया और मथुरा का राजा बन गया। कंस अपने गुरू वसुदेव के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ था अतः उसने अपनी बहन देवकी का विवाह कुमार वसुदेव के साथ कर दिया एक अवधिज्ञानी मुनि से जब यह ज्ञात हुआ कि देवकी के गर्भ से उत्पन्न होने वाला पुत्र ही कंस और जरासन्ध को मारने वाला होगा। तब कंस ने वसुदेव से वचन ले लिया कि देवकी की प्रसूति मथुरा में मेरे (कंस) महलों में ही होगी। देवकी के क्रमशः तीन युगल पुत्र उत्पन्न हुए। इन्द्र की आज्ञा से सुनैगम देव ने उत्पन्न होते ही उन पुत्रों को लेकर सुभद्रिल नगर के सेठ सुदृष्टि की स्त्री अलका के यहां पहुँचा दिया और सद्यः जात मृत पुत्रों को लाकर देवकी के पास सुला दिया। कंस ने आकर उन मृत पुत्रों को पैरों से पकड़कर शिला पर पछाड़ दिया। यह छहों पुत्र नृपदत्त, देवपाल, अनीकदत्त, अनीकपाल, शत्रुघन और जितशत्रु—अलका सेठानी के यहां शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भांति बढ़ने लगे।

देवकी के सातवें पुत्र नारायण कृष्ण सातवें माह में उत्पन्न हुए। उस समय घन-घोर वर्षा हो रही थी उस रात में बलदेव और वसु-देव नवजात शिशु को लेकर चल दिये। उन्होंने जाकर नन्द और यशोदा को शिशु सौंप दिया और यशोदा की नवजात कन्या को ले आये तथा लाकर उन्होंने उसे देवकी की बगल में सुला दिया। कंस को प्रसूति का पता चला। उसने कन्या को मारा तो नहीं, सिर्फ दबाकर उसकी नाँक चपटी कर दी। नारायण कृष्ण धीरे-धीरे नन्द के घर बढ़ने लगे। किसी निमित्तज्ञानी ने कंस को बताया कि तेरा शत्रु कहीं आसपास में बढ़ रहा है। एक दिन कंस ने कृष्ण सहित

समस्त गोपों को मल्लयुद्ध के लिए आमन्त्रित किया। अखाड़े से चाणूर और मुष्टिक मल्लों को श्री कृष्ण और वलभद्र ने समाप्त कर दिया। जब कंस तलवार लेकर कृष्ण को मारने दौड़ा तो श्रीकृष्ण ने उसे भी यमलोक पहुँचा दिया। राजा उग्रसेन को कारागार से मुक्त करके उन्हें पुनः मथुरा का शासन सौंप दिया। कंस की मृत्यु का समाचार सुनकर जरासन्ध ने अपने पुत्र कालयवन को विशाल सेना के साथ मथुरा पर चढ़ाई करने के लिए भेजा। किन्तु वह मथुरा से पीठ दिखाकर लौटा। इस प्रकार उसने १७ वार मथुरा में यादवों पर आक्रमण किया अपने अन्तिम आक्रमण में वह श्रीकृष्ण के हाथों अतुल मालावंत पर्वत पर मारा गया। उसके पश्चात् जरासन्ध ने अपने भ्राता अपराजित को भेजा, उसकी मृत्यु भी श्रीकृष्ण के हाथों हुई। सम्राट जरासन्ध के क्रोध का पार नहीं रहा। वह स्वयं विशाल सेना चला, लेकर यादवों को जब यह समाचार मिला तो उन्होंने रणनीति को ध्यान करके—मथुरा शौरीपुर और वीर्यपुर के यदुवंशी पश्चिम दिशा में सागर तट पर जाकर द्वारावती नगरी वसाकर रहने लगे। वहां शासन सूत्र नारायण श्री कृष्ण ने सम्भाल लिया।

सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ के काल में धर्मरुचि और धर्मघोष नामक दो मुनि थे, उस समय मथुरा १२ योजन लम्बी और ८ योजन चौड़ी थी। मुनिओं ने भूतमरण उपवन में चातुर्मास योग धारण कर लिया। उनकी घोर तपस्या से प्रभावित होकर उस वन की अधिष्ठात्री देवी कुवेरा ने उन्हें नमस्कार कर वोली—'भगवान, आपसे मैं प्रसन्न हूं। आप कोई वरदान मांग लीजिए' मुनि वोले—'देवी हम तो निर्ग्रन्थ मुनि हैं, हमें क्या चाहिए।' तव देवी ने वड़ी भक्ति से रात-रात में सोने और रत्नों से मण्डित, तोरणमाला से अलंकृत, शिखर पर तीन छत्रों से सुशोभित एक स्तूप का निर्माण किया। उसके चारों दिशाओं में पंचवर्ण रत्नों की मूर्तियां विराजमान कीं। उसमें मूल-नायक प्रतिमा श्री सुपार्श्वनाथ की थी—मथुरा में एक स्तूप का

पुरातात्विक महत्व असाधारण रहा है। सम्भवः वह यही स्तूप हो।

धर्मायतनों और कला का विनाश—पांचवी शताब्दी के अन्तिम में मथुरा नगर अत्यन्त समृद्ध था। नगर में जैन, हिन्दू और बौद्धों के स्तूप, कलापूर्ण मन्दिर, भव्य मूर्तियां और संघाराम विद्यमान थे। श्रेष्ठियों की अनगिनत हर्म्य और ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ थी। वि. सं. ५८० के लगभग हूण सरदार मिहिर कुल ने कलायतों और कला का विध्वंस कर दिया। इस विध्वंस लीला में कंकाली टीला, सप्तर्षि टीला और जम्बु टीला (चौरासी) के स्तूप, मन्दिर और मूर्ति भी नहीं बच पाये। इन हूणों को सम्राट स्कन्दगुप्त ने भारत से खदेड दिया और लगभग ५०० वर्ष तक मथुरा पर कोई विशाल विदेशी आक्रमण नहीं हुआ। इस अन्तराल में पुनः अनेक मन्दिरों, मूर्तियों और स्तूपों का निर्माण हुआ। किन्तु ११वीं शताब्दी के आरम्भ में भारत पर गजनी के सुलतान गजनों ने १७ बार आक्रमण किया। अपना नौवां आक्रमण सन् १०१७ में उसने मथुरा पर किया। यह लूटमार बीस दिनों तक होती रही। मूर्तियां तोड़ डाली, मन्दिरों में आग लगा दी, स्वर्ण-रत्न और चांदी को कई सौ ऊँटों पर लाद-लाद कर गजनी भेज दिया। इसके पश्चात् विनाश का क्रम चलता रहा। सिकन्दर लोदी (सन् १४८८-१५१६ तक) ने तो विध्वंस लीला का ऐसा आयोजन किया जिसमें तारीखे याऊदी के लेखक अब्दुल्ला के अनुसार मथुरा में मन्दिर पूरी तरह नष्ट कर दिये गये। इन आक्रमणों में सबसे विनाशकारी औरंगजेब और अहमदशाह अब्दाली हुए जिन्होंने खण्डहरों और रहे-सहे मन्दिरों को विस्मार करके मस्जिदें बनवा दीं। इस बर्बर और धर्मान्धितापूर्ण आक्रमणों के कारण जो असंख्य मूर्तियां और स्तूप मन्दिरों के मलबे के नीचे दब गये और वहाँ टीले बन गये। ऐसे प्राचीन टीलों की संख्या कम नहीं है, कुछ की खुदाई के फलस्वरूप प्राचीन कलावैभव भूगर्भ से प्राप्त हुआ है। बहुत टीलों की खुदाई नहीं हो पाई है। अकेले—

कंकाली—क्षेत्र में सात टीलों में से केवल चार को खुदाई हो पाई है, इसमें हजारों कलाकृतियाँ उपलव्ध हुई हैं।

भारत में पिछले १०० वर्ष में जो खुदाई में पुरातत्व सामग्री उपलव्ध हुई है, मथुरा के विभिन्न स्थानों से प्राप्त सामग्री का महत्व और संख्या की दृष्टि में वहुत अधिक है। सवसे अधिक सामग्री—कंकाली टीलासे प्राप्त हुई है। कंकाली देवी का छोटा सा मन्दिर होने से यह कंकाली टीला कहलाने लगा तथा आगरा—गोर्वधन सड़क के कोने में मथुरा के दक्षिण पश्चिमी किनारे पर हैं। सन् १८८८-९१ की खुदाई में केवल इस टीले से ही ७३७ जो जैन हैं कलाकृतियों में अनेक स्तूप, मूर्तियां, सर्वतोभद्र प्रतिमाएँ, शिलालेख, आयागपट्ट, धर्म चक्र, तोरण, स्तम्भ, वेदिका स्तम्भ तथा अन्य वहुमूल्य कलाकृतियाँ हैं। ४७ फुट व्यास का ईंटों का १ स्तूप तथा दो प्राचीन मन्दिरों के अवशेष भी मिले हैं। भगवान मुनि सुव्रतनाथ की एक प्रतिमा भी है। अभिलेखों और प्राचीन साहित्य से स्पष्ट ज्ञात होता है कि ईसा से कई सौ वर्ष पूर्व से ११वीं शताव्दी तक यह जैनों का केन्द्र रहा था। अनेक साहित्य और साहित्यकारों द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि १७वीं शताव्दी के प्रथम पाद में मथुरा में ५१४ भग्न स्तूप मौजूद थे तथा कंकाली से लेकर चौरासी तक का क्षेत्र जैन धर्म का केन्द्र था। सप्तर्षि टीले में से उपलव्ध जैन मूर्तियों को देखकर विश्वास होता है कि प्राचीन काल में कोई जैन मन्दिर रहा होगा।

पुरातत्वविद् विनसेण्ट स्मिथ का विश्वास है कि मथुरा में एक स्तूप निश्चित रूप से भारत में ज्ञात स्तूपों में सवसे प्राचीन है। इस स्तूप का पुरातात्विक महत्व, असाधारण है। सम्भवतः कंकाली टीले की खुदाई के समय फयूरर को जो प्राचीन, स्तूप मिला था वही 'देवीनिर्मित' स्तूप हो। मथुरा में खुदाई में कुषाण काल के अनेक आयागपट्ट एवं सर्वतोभद्र प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। भगवान नेमिनाथ की कई मूर्तियां मिली हैं जिसमें अगल-वगल में नारायण श्रीकृष्ण और

वलराम खड़े हैं—गुप्तकाल की प्रतिमायों के सिर घुंघराले कुन्तलों से अलंकृत हैं। वेदिका के वहुत खण्डित भाग मिले हैं—ईसा की दूसरी शताब्दी की भगवान् मुनि सुव्रतनाथ की एक प्रतिमा भी है। कृष्ण जन्मभूमि तथा अन्य स्थानों से भी जैन पुरातत्व सामग्री मिली हैं। यह सम्पूर्ण सामग्री नई देहली, मथुरा, लखनऊ, कलकत्ता, लन्दन आदि के म्यूजियमों में सुरक्षित रखी हैं।

चौरासी—दिल्ली, मथरा 'वाई-पास' तथा मथुरा गोर्वधन सड़क के किनारे है और प्रायः शहर से ३ कि० मी० है। जैन मन्दिर लग-भग २० फुट ऊँची चौकी पर स्थित है। गर्भगृह काफी विशाल है तथा चारों ओर प्रदिक्षणा पथ है। मुख्य वेदी में भगवान अजितनाथ की तीन फुट अवगाहना की श्वेत पाषाण की पद्मासन प्रतिमा सं० १४१४ की विराजमान है, प्रतिमा की विरागरंजित मुस्कान अत्यन्त प्रभावोंत्पादक है। इस वेदी के सामने इसी वेदी की चौकी पर जम्बू-स्वामी के चरण विराजमान हैं। मुख्य वेदी के पीछे की वेदी में भगवान पार्श्वनाथ की सवा फुट की कृष्ण पाषाण की फणमण्डित प्रतिमा विराजमान है। यह प्रतिमा मथुरा वृन्दावन के वीच धौरैर गाँव के समीपवर्ती अक्रुर घाट के पास दि० १९-६-१९६६ को भूगर्भ से प्राप्त हुई थी। इसके पीठासन पर संवत् १८८८ अंकित है। इसी वेदी में १ प्रतिमा श्वेत पाषाण की सं० १५४८ की है। इसी वेदी के पीछे डेढ़ फुट ऊँचे पाषाण फलक पर नन्दीश्वर द्वीप की रचना है, इसके दायीं ओर की वेदी में भगवान पार्श्वनाथ की श्वेत पाषाण की सर्प-फण से मण्डित पौने दो फुट अवगाहना की सं० ११६८ की विराजमान है। इसी वेदी में पद्मप्रभु भगवान की सवा फुट अवगाहना की एक रक्त वर्ण की पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। दो प्रतिमाएँ भगवान चन्द्रप्रभु और अजितनाथ की सं० १५४८ की हैं श्वेत वर्ण की इसी वेदी में विराजमान हैं। वायीं ओर की वेदी में भगवान पार्श्वनाथ

की श्वेत पाषाण प्रतिमा है, इसके आगे खड्गासन में सात मूर्तियां सप्तर्षि की हैं।

मन्दिर के सामने नवनिर्मित सन् १८६० का मानस्तम्भ है व तीन, ओर विशाल धर्मशाला हैं। सवारी, नल, बिजली, टेलीफोन आदि सभी सुविधाएँ उपलब्ध हैं। क्षेत्र के निकट ही राधानगर में ऋषभदेव दि० जैन ब्राह्मचर्याश्रम (गुरूकुल), जैन इन्टर कालिज आदि है। चौरासी क्षेत्र मन्दिर के अतिरिक्त घियामण्डी, घाटी और जयसिंह पुरा में मन्दिर हैं तथा सेठ जी की हवेली में एक चैत्यालय है एक जैन मन्दिर वृन्दावन में है (६ कि० मी०)।

हिन्दू तीर्थ—मथुरा भगवान श्री कृष्ण की लीला भूमि रहा है। यह हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थ है। कृष्ण जन्म भूमि, द्वारकाधीश जी का मन्दिर, वृन्दावन में रंगजी का मन्दिर, बांकेबिहारी जी का मन्दिर मुख्य स्थान हैं। इसके अतिरिक्त गोकुल, नन्दगाँव, बरसाना, दाऊजी, गोर्वधन, राधाकुण्ड आदि को जो श्री कृष्ण से किसी भी रूप से सम्बन्धित रहे हैं, तीर्थ मानते हैं।

आगरा

आगरा एक ऐतिहासिक एवं पुरातत्व नगर दिल्ली से १६२ कि० मी० तथा मथुरा से ५४ कि० मी० है। मि० टाड़ आदि पुरातत्व वेत्ताओं के विचार में इसका नामकरण अग्रवाल जाति के कारण पड़ा, जैन साहिन्य में संस्कृत में 'अर्गलपुर' और प्राकृत भाषा में 'अग्गलपुर' नाम मिलता है। कृष्ण-साहित्य में चौरासी वनों का उल्लेख आता है। उनमें एक अग्रवन भी था, किसी समय नगर वस गया। उसका नाम अग्रवनपुर अग्रपुर या अर्गलपुर पड़ गया। किन्तु सर्व-साधारण में इसका नाम आगरा प्रचलित हो गया।

आगरा में स्थानीय और बाहर के जैन बन्धुओं ने यहां अनेक जैन मन्दिरों का निर्माण कराया, इस समय आगरा में लगभग ३६ मन्दिर और चैत्यालय हैं। किन्तु इन मन्दिरों में से तीन मुख्य मन्दिरों का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा, जो मूर्तियों की प्राचीनता और अतिशय के कारण अत्यधिक प्रसिद्ध हैं।

मन्दिर भगवान शीतलनाथ जी—यह मन्दिर जामामस्जिद के समीप रोशन मुहल्ले में अवस्थित है। भगवान शीतलनाथ की प्रतिमा कृष्ण वर्ण की है और लगभग साढ़ेचार फुट अवगाहना पद्मासन मुद्रा में आसीन है। ऐसी भुवन मोहन रूप वाली प्रतिमा अन्यत्र मिलना कठिन है। इसका सौन्दर्य अनिन्द्य है। वितरागता प्रभावोत्पादक है। इसके अतिशयों की अनेक किंवदन्तियाँ वहु प्रचलित हैं। जैन ही नहीं, अनेक अजैन भी मनोकामनाएँ लेकर इसके दर्शन को आते हैं। इस मन्दिर में दिगम्वर प्रतिमा केवल शीतलनाथ भगवान की है। वाकी सब श्वेताम्वर प्रतिमाएँ हैं भगवान शीतलनाथ की पूजा प्रक्षाल दोनों ही सम्प्रदायवाले अपनी ही आम्नाय के अनुसार करते हैं।

ताजमहल के सनोपताजगज में चिन्तामणि पार्श्वनाथ की प्रतिमा जैन मन्दिर में विराजमान है। यह मूलनायक प्रतिमा पालिशदार कृष्ण पाषाण की अवगाहना सवा दो फुट एवं पद्मासन मुद्रा में है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १६७७ फागुन सुदी ३ को की गई थी। उस काल में इसकी बड़ी ख्याति थी। वस्तुतः यह प्रतिमा इतनी मनोरम है कि इसके दर्शन करने मात्र से मन में भक्ति की तरंगें आन्दोलित होने लगती है।

मोती कटरा का पंचायती दिगम्बर वड़ा मन्दिर—यह आगरा का वड़ा मन्दिर कहलाता है। यह मन्दिर जैसा ऊपर वना है इसका भोंयरा भी उसी समान वना हुआ है। संकटकाल में प्रतिमाएँ भोंयरे में पहुँचा दी जाती थी। इसमें मूल वेदी भगवान सम्भवनाथ की है। गन्धकुटी में कमलासन पर विराजमान सम्भवनाथ भगवान की

प्रतिमा श्वेत पाषाण की एक फुट की है। भगवान पद्मासन में विराजमान है। मूर्ति लेख के अनुसार इस प्रतिमा की प्रतिष्ठा सं० ११४७ में हुई थी। इस प्रतिमा में बड़े अतिशय हैं। देवलोग रात्रि में इसकी पूजा के लिए आते हैं। बायीं ओर की पहली वेदी में भगवान पार्श्वनाथ की सवा तीन फुट अवगाहना, पद्मासन मुद्रा की श्वेत पाषाण की फणमण्डित प्रतिमा है यह सं० १२७२ में प्रतिष्ठित हुई थीं। बायें हाथ की वेदी में मटमैले पाषाण की दो भव्य चौवीसी हैं। एक शिलाखंड के बीच में एक भव्य तोरण में पार्श्वनाथ मूर्ति है। इधर उधर दो-दो पंक्तियों में १०-१० प्रतिमाएँ हैं। इनके ऊपर एक-एक प्रतिमा विराजमान है। यहाँ का हस्तलिखित शास्त्र-भण्डार अत्यन्त समृद्ध है। इसमें लगभग दो हज़ार हस्तलिखित ग्रन्थ हैं। यहाँ पाषाण एवं धातु की मूर्तियों की संख्या लगभग ६०० है।

आगरा के दर्शनीय स्थान—आगरा का किला, ताजमहल, इतमा-दौला की समाधी, अकबर की समाधी, दयालबाग और फतेहपुर सीकरी (आगरा से ३७ कि० मी० है)। आगरा नगर के पांच रेलवे स्टेशन हैं। आगरा फोर्ट, राजा की मण्डी, आगरा छावनी, ईदगाह और आगरा सिटी।

शोरीपुर-बटेश्वर-हस्तिकान्तपुर

आगरा से बटेश्वर ७० कि० मी० है और बटेश्वर से शोरीपुर लगभग ४ कि० मी० कच्चा रास्ता है, जीप एवं कार जा सकती हैं। आगरा से बटेश्वर के लिए बसें बराबर चलती हैं। शोरीपुर या शौर्यपुर कुशल देश की राजधानी और सर्वाधिक समृद्ध नगरी थी।

शोरीपुर नरेश अन्धक वृष्णि की महारानी सुभद्रा से दस पुत्र और दो पुत्रियां हुई। अन्धकवृष्णि के मुनि दीक्षा धारण करने पर शोरीपुर का शासन उनके बड़े पुत्र समुद्र विजय ने संभाला इनके नेमिनाथ हुए और समुद्र विजय के सबसे छोटेभाई के वसुदेव बलराम और कृष्ण हुए। नेमिनाथ बाईसवें तीर्थंकर थे। बलराम और कृष्ण क्रमशः अन्तिम बलभद्र और नारायण थे। जब जरासन्ध की ओर से मथुरा पर आक्रमण होने लगे तो मथुरा और शोरीपुर के यादवों ने पश्चिम समुद्र तट पर जाकर द्वारका नगरी बसायी। इन निष्क्रमण के समय नेमीनाथ भगवान बालक ही थे। गये हुए यादव पुनः शोरीपुर या मथुरा नहीं लौटे। शोरीपुर सम्भवतः इतिहास पर समय-समय अपना प्रभाव अंकित करता रहा।

यहाँ भगवान नेमीनाथ के गर्भ और जन्म कल्याणकों के अतिरिक्त अन्य मुनियों को केवल ज्ञान और निर्वाण प्राप्त हुआ। कुछ इस प्रकार हैं—श्रीपुर में गन्ध मादन नामक पर्वत पर रात्रि के समय सुप्रतिष्ठित नामक मुनिराज ध्यान मुद्रा में विराजमान थे। सुदर्शन नामक एक यक्ष ने पूर्व जन्म के विरोध के कारण मुनिराज पर घोर उपसर्ग किया अनन्तर उन्हें केवल ज्ञान की प्राप्ति हो गई। कुछ समय पश्चात् शोरीपुर नरेश अन्धकवृष्णि और मथुरा नरेश भोजक वृष्णि ने जो दोनों भाई थे, इन्हीं केवली भगवान के निकट मुनि-दीक्षा ले ली अमलकण्ठपुर के राजा निष्ठसेन के पुत्र धन्य ने भगवान नेमी नाथ से मुनि दीक्षा धारण कर ली। एक दिन मुनि धन्य शोरीपुर पधारे वहाँ यमुना तट पर वे ध्यानारूढ़ हो गये। शोरीपुर का राजा यमुनापंक ने वैर या शंका के कारण वीतराग मुनि को तीक्ष्ण बाणों से बींध दिया। मुनि धन्य शुक्ल ध्यान द्वारा कर्मो को नष्ट कर सिद्ध पद को प्राप्त हुए—उज्जयिनी नरेश प्रजापालका रत्नपारखी सुदृष्टि का पुत्र अलसत्कुमार था, उसने मुनि अभिनन्दन के निकट दीक्षा ले ली। मुनि अलसत्कुमार नाना तप करते हुए शोरीपुर के उत्तर भाग

में आये। वहाँ यमुना के पश्चिम तट पर ध्यानलीन हो गये और निर्वाण प्राप्त किया। भगवान महावीर के समय यम नामक एक केवली भी यहीं से मोक्ष को गये। शोरीपुर में राजा वसुदेव थे। उनकी महादेवी का नाम रोहिणी था। उनका पुत्र वलभद्र था। बड़ा होने पर सदा अपनी माता के पास रहता था। किन्तु कुछ पनिहारिनों में चर्चा चल पड़ी कि महादेवी अपने पुत्र में ही अनुरक्त है। यह बात महाराज वसुदेव सुनकर स्तब्ध रह गये। वसुदेव ने महारानी के शील की परीक्षा लेने का निश्चय किया—यमुना में छोड़ दिया जाये, यदि वह सती होगी तो नहीं डूबेगी, अन्यथा डूब जायेगी' रानी की परीक्षा ली। महारानी रोहिणी के सतीत्व के प्रभाव से यमुना जल का स्तम्भन हो गया और वह जल नगर की ओर बहने लगा, नगर में हाहाकार मच गया, सब लोगों ने रोहिणी से प्राण-भिक्षा माँगी। महासती रोहिणी का हृदय करुणा से भर गया उन्होंने यमुना को आज्ञा दी कि वह दक्षिण की वजाय उत्तर की ओर वहना प्रारम्भ कर दे। यमुना का प्रवाह तब से आज तक यहाँ उत्तर की ओर है— यह स्थान दानी कर्ण की जन्मभूमि भी है।

प्राचीन शोरीपुर धीरे-धीरे उजड़ गया और अब केवल उसके ध्वंसावशेष ही बचे हैं, प्राचीनता के स्मारक केवल जैन मन्दिर रह गये हैं बरुवामठ प्राचीनतम मन्दिर के दो खण्ड यमुना के अन्दर हैं। मन्दिर कुछ सीढ़ियां चढ़ कर है और यहाँ की कुछ प्रतिमाएँ चोरी चली गयीं और कुछ मध्य मन्दिर में विराजमान कर दी हैं। वीर सं० २४८० को यहाँ भगवान नेमीनाथ की काले पाषाण की आठ

अवगाहना की प्रतिमा विराजित है। शंखध्वज मन्दिर यह मन्दिर दूसरे खण्ड में है, सामने वाले गर्भगृह में चार वेदियां हैं। मूलनायक भगवान नेमीनाथ मध्य की वेदी में विराजमान हैं। उसके पीछे वायीं ओर की वेदी में एक खड्गासन प्रतिमा ३ फुट अवगाहना की है। इसके निकट पाँच इन्च की शिलाफलक में उत्कीर्ण मूर्ति हैं।

दायीं ओर दो वेदियों में आधुनिक प्रतिमाएँ हैं। वायीं ओर के गर्भालय में एक वेदी में श्वेत पाषाण की ढाई फुट अवगाहना की भगवान विमलनाथ की प्रतिमा है, इसके इधर उधर पार्श्वनाथ और चन्द्रप्रभु भगवान विराजमान हैं। दायीं ओर के गर्भगृह में एक वेदी श्वेत पाषाण की ढाई फुट अवगाहना की विराजमान है। इसके आगे चन्द्रप्रभु भगवान की आधुनिक प्रतिमा है। उक्त वेदी के दायीं ओर एक वेदी में दो प्राचीन प्रतिमाएँ हैं। ये दोनों प्रतिमाएँ वाह (जिला आगरा) से आगे नदगवां गांव के निकट हतकान्त (हस्तिकान्तपुर) के जैन मन्दिर से सन् १९३८ में ऊँट पर रखकर लाई गई थी। शंख-ध्वज मन्दिर के वायीं ओर प्राचीन टोंकें और छतरियां वनी हुई हैं। यह स्थान पंचमठी कहलाता है। यहां तीन मूर्तियां मैदान में रखी हुई हैं। तीनों का आकार लगभग साढ़े तीन फुट है। छतरियों में मुनियों के चरण अंकित हैं।

शोरीपुर वटेश्वर का जैन मान्यतानुसार इतिहास महाभारत काल से कुछ पूर्व प्रारम्भ होता है। पुरातत्व सर्वेक्षण के फलस्वरूप जो अवशेष खुदाई से यहाँ प्राप्त हुए हैं वह महाभारतकाल और मौर्यकालीन हैं। नगर का प्राचीन वैभव और उसकी सांस्कृतिक समृद्धि टीलों के नीचे दवी पड़ी है. कालाईल को खुदाई करते समय एक मन्दिर के निचले भाग में उन्हें तीन विशाल पद्मासन जैन मूर्ति मिली जो मिट्टी में गर्दन तक दवी हुई थीं। ये मूर्तियाँ उन्होंने वाहर निकलवायीं। वड़ी मूर्ति जो भगवान आदिनाथ की थी उस पर सं० १०८२ या ९२ पढ़ा गया था। उन्हें यहां पांच फुट चार इंच मोटी प्राचीन दीवार, सुरंग वड़ी छोटीं अनेक प्रतिमाएँ और अनेकों सामग्री मिली थी। कहा जाता है कि यहाँ कोई तहखाना है जहां वड़ी संख्या में प्राचीन मूर्तियाँ और पुरावशेष रखे हैं। नाले में तथा आस-पास खुदाई में जैन मन्दिर एवं अनेक मूर्तियों के भाग इधर-उधर दवे मिले

जिनसे विश्वास होता है कि प्राचीनकाल में यहाँ अनेक मन्दिर रहे होंगे।

बटेश्वर—जब शोरीपुर यमुना नदी के तट से अधिक कटने लगी, तब भट्टारक जी ने बटेश्वर में विशाल मन्दिर और धर्मशाला बनवायी। मन्दिर में महोबा से लायी हुई भगवान अजितनाथ की पाँच फुट ऊँची कृष्ण पाषाण की पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। मूर्ति अत्यन्त प्रभावक और सातिशय है। इसकी प्रतिष्ठा सं० १२२४ में परिमाल राज्य के आल्हा-उदल के पिता जल्हड़ ने करायी थी। इस मुख्य वेदी के बायीं ओर के गर्भगृह में एक वेदी के मध्य में शिला फलक पर भगवान शान्तिनाथ की चार फुट ऊँची प्रतिमा है। इसके परिकर में बायीं ओर एक खड्गासन और दायीं ओर एक पद्मासन तीर्थकर प्रतिमा सं० ११५० की है। इस मूर्ति के अतिरिक्त इस वेदी में सं० १६८८ की एक कत्थई रंग की सं० १८३८ की एक श्वेत पाषाण की प्रतिमाएं है। २० अन्य छोटी-छोटी पाषाण प्रतिमाएँ और चरण हैं। मुख्य वेदी के दायीं ओर बायीं ओर की वेदियों पर तीन-तीन पाषाण प्रतिमाएं हैं। दायीं ओर के कमरे की वेदी में काले पाषाण की पौने तीनफुट की भगवान नेमीनाथ की पद्मासन प्रतिमा है एवं लगभग १५० धातु प्रतिमाएँ हैं। बटेश्वर में कार्तिक शुक्ला ५ से मंगसिर वदी २ तक मेला भरता है।

हतकान्त (हस्तिकान्तपुर)—एक ऐतिहासिक, धन धान्यपूर्ण और श्री सम्पन्न नगर था, प्राप्त उल्लेख से यहां ५१ प्रतिष्ठाएँ हुई हैं। सन् १३८९ में सुलतान फिरोजशाह ने इस नगर पर आक्रमण करके भारी क्षति पहुँचायी। यह इलाका नितान्त दस्यु-प्रभावित है। वहां की कुछ प्रतिमाएं इटावा के जैन धर्मशाला वाले मन्दिर में ले जाकर विराजमान कर दी हैं। हतकान्त में अभी भी कुछ मूर्तियाँ विद्यमान हैं।

चन्दवार

चन्दवार फीरोजाबाद से ६ कि० मी० दूर दक्षिण में यमुना नदी के वायें किनारे पर आगरा जिले में अवस्थित है। मार्ग कच्चा है, सुविधा हेतु किसी परिचित को ले जावें। यह एक ऐतिहासिक नगर है, आज मीलों तक खण्डहर दिखाई पड़ते हैं। वि० सं० १०५२ में यहाँ का शासक चन्द्रपाल जैन पल्लीवाल था। कहते हैं उसी के नाम पर चन्दवार या चन्द्रपाठ था १०वीं शताव्दी से लेकर लगभग १५-१६वीं शताव्दी तक जैन नरेशों का ही शासन रहा। उन्होंने अनेकों विशाल मन्दिरों का निर्माण कराया। चन्दवार में एक दुभर्द्य किला था। सन् ११६४ में मुहम्मद गोरी और कन्नौज नरेश जयचन्द के बीच यहाँ भीषण युद्ध हुआ था। जिसमें जयचन्द मारा गया। गौरी की फौजों ने चन्दवार को खूव लूटा। सन् १३८९ में फीरोजशाह तुगलक और उसके पोते ने चन्दवार को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया कुछ मूर्तियाँ यमुना की धारा में छिपाकर वचा ली गयीं। जो रह गयीं नष्ट कर दी गयीं। १५वीं शताव्दी के अन्त तक चन्दवार नगर दुर्भाग्य—चक्र में फंसकर खण्डहर बन गया।

यमुना नदी के निकट ग्राम के एक कोने में जैन मन्दिर, अवशिष्ट है। मन्दिर में प्रवेश करते ही सहन के आगे विशाल गर्भालय है। मुख्य वेदी प्रतिमा रहित है। इस वेदो के अतिरिक्त दो वेदियों दायें और वायें दालान में हैं। वायीं ओर की वेदी में वलुआ भूरे पाषाण की पद्मासन प्रतिमा तीन फुट अवगाहन की है, लेख एवं लांछन अस्पष्ट है। वायीं वेदी में वलुआ भूरे पाषाण की ढाई फुट पद्मासन प्रतिमा, आदिनाथ भगवान की है। पृष्ठ भाग की दायीं वेदी में हल्के कत्थई पाषाण की ढाई फुट अवगाहना की पद्मासन

आदिनाथ भगवान की प्रतिमा है, प्रतिष्ठा सं० १०५६ की है। दायीं और वरामदे की वेदी में सवा तीन फुट अवगाहन की भगवान ऋषभ-देव की प्रतिमा है। इन वे॥ प्रतिमाओं के अतिरिक्त एक सर्वतो-भद्रिका प्रतिमा है। भग्न।।ष नगर के चारों ओर बिखरे पड़े हैं। अवशेषों के नीचे से मल्लाहों की बस्ती के आसपास अब भी कभी-कभी जैन प्रतिमाएँ निकलती हैं।

फीरोजाबाद

यह आगरा से ४५ कि० मी० और उत्तर-रेलवे के दिल्ली-हावड़ा मुख्य लाईन पर प्रसिद्ध स्टेशन है। पूर्व समय में यह चन्दवार से ही सम्बधित रहा होगा। चन्दवार के विनाश के पश्चात् ५ कि० मी० हटकर एक नया नगर बस गया और (लगभग ४०० वर्ष पूर्व) किसी फीरोजशाह सूबेदार ने अपने नाम पर फीरोजाबाद नाम रख लिया इस नगर में कुल २१ दिगम्बर जैन मन्दिर और चैत्यालय हैं। मुहल्ला वडा में बड़ा मन्दिर है तथा मुहल्ला चन्द्रप्रभु में विख्यात चन्द्रप्रभु मन्दिर है। चन्द्रप्रभु भगवान की मूर्ति स्फटिक की है। सिंहासन सहित इस मूर्ति की अवगाहन डेढ़ फुट है। मूर्ति के पीछे दर्शनीय भामण्डल लगा हुआ है। स्फटिक की इतनी बड़ी मूर्ति अन्यत्र कहीं नहीं है। छोटी छिपैटी के मन्दिर में भी कुछ प्रतिमाएँ उल्लेख योग्य हैं। मुख्य वेदी में भगवान ऋषभदेव की मूलनायक प्रतिमा सिंहासन समेत दो फुट की कृष्ण पाषाण पद्मासन मूर्ति सं० १४३८ की है। यह प्रतिमा चन्दवार से लाकर यहां विराजमान की गई है। एक शिला फलक में १२० प्रतिमाएँ अंकित हैं। दो अन्य वेदियों में चन्दवार से लाई हुई कुछ मूर्तियां विराजमान है। एक शिला फलक में पांच बालयति की मूर्तियाँ हैं।

भगवान चन्द्रप्रभु की स्फटिक मूर्ति के वारे में किंवदन्ती प्रचलित है। लगभग दो सौ वर्ष पहले यमुना में भीषण वाढ़ आने के कारण चन्दवार मन्दिर की मूर्तियां वह गयीं। यह स्फटिक मूर्ति भी वह गई थी। तभी फिरोजावाद के पंचों को रात में इस सम्वन्ध में स्वप्न हुआ। प्रातःकाल होते ही पंचों ने अपने स्वप्न की चर्चा की। सवको एक सा ही स्वप्न सुनकर सारे नगर में सनसनी व्याप्त हो गयी। तव उत्सुक जनसमूह के साथ पंच लोग चन्दवार पहुँचे। स्वप्न के अनुसार उन्होंने सावन-भादों की घहराती हुई यमुना में फूलों की एक टोकरी छोड़ी। वह टोकरी जहाँ रुक गयी, वहां धीरे-धीरे पानी उतरता गया। कुछ भक्तजन शुद्ध वस्त्र पहन और णमोकार मन्त्र का स्मरण कर—जहाँ फूलों की टोकरी स्थिर हो गई थी, वहाँ पानी में तलाश करने पर मय सिंहासन के चन्द्रप्रभु भगवान की मूर्ति मिली। मूर्ति को फिरोजावाद ले जाकर मन्दिर में विराजमान किया। तभी से यहां उस प्रतिमा की वड़ी मान्यता है, यह चतुर्थकाल की मानी जाती है।

जैन नगर में एक विशाल और कलापूर्ण जैन मन्दिर का निर्माण किया गया है। सम्पूर्ण मन्दिर संगमरमर का वना हुआ है। यहां के प्रसिद्ध उद्योगपति सेठ छदामीलाल जी ने निर्माण कराया था। खुली हुई वेदी में भगवान महावीर की सात फुट अवगाहना वाली श्वेत पाषाण की पद्मासन प्रतिमा कमलासन पर विराजमान है। यह मन्दिर मोती पार्क में वना हुआ है। मन्दिर के दोनों पार्श्वों में सरस्वती भवन, धर्मशाला, कानजी स्वामी पुस्तकालय, औषधालय वने हुए हैं। मन्दिर के पृष्ठ भाग में पुष्प-वाटिका और जैन म्यूजियम वना है। म्यूजियम के सामने तीस फुट ऊँची वाहुवली स्वामी की संगमरमर को प्रतिमा स्थापित है। फिरोजावाद नगर अव तो काँच की चूड़ी के व्यवसाय के कारण सारे भारत में प्रसिद्ध है।

———

मरसलगंज

मरसलगंज आगरा जिले में फीरोजावाद से २२ कि० मी० दूर है वस द्वारा फरिहा उतरना चाहिए। यहाँ से क्षेत्र १ कि० मी० है। पहले यहां छोटा सा मन्दिर था। पन्द्रहवीं शताव्दी में वावा ऋषभदास नामक एक क्षुल्लक यहां पधारे। उनकी प्रेरणा और प्रयत्न से छोटे से मन्दिर के स्थान पर वर्तमान विशाल मन्दिर का निर्माण हुआ। वावा जी के सम्वन्ध में उस समय की अनेक चमत्कारिक घटनाएँ अव तक आसपास में प्रचलित हैं। उन्होंने स्वयं कहीं से भगवान ऋषभदेव की एक मनोज्ञ और सातिशय प्रतिमा लाकर मुख्य वेदी में विराजमान करायी। धीरे-धीरे प्रतिमा के चमत्कारों और अतिशयों की चर्चा चारों ओर फैलने लगी। इसी प्रकार मरसलगंज अतिशय क्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध हो गया।

क्षेत्र पर एक ही मन्दिर है। मुख्य वेदी में भगवान ऋषभदेव की श्वेत पाषाण की पद्मासन प्रतिमा पौने दो फुट अवगाहना की वि० सं० १५४५ की विराजमान है। मूलनायक प्रतिमा के अतिरिक्त ५ पाषाण और ११ धातु प्रतिमाएँ हैं। दो अन्य वेदीयां हैं। वायीं वेदी में मूलनायक शान्तिनाथ भगवान के अतिरिक्त ८ पाषाण प्रतिमाएँ तथा वेदी के दोनों ओर पांच फुट अवगाहना की दो खड़गासन आधुनिक प्रतिमाएँ हैं। दायीं ओर की वेदी में भगवान नेमीनाथ की कृष्ण वर्ण मूलनायक तथा अन्य प्रतिमाएँ हैं, सव आधुनिक है। आचार्य सुर्धमसागर जी आचार्य महावीर कीर्ति और आचार्य विमलसागर जी की पाषाण प्रतिमाएँ ध्यान मुद्रा में विराजमान हैं। फरिहा में दो मन्दिर हैं। वड़ा मन्दिर दर्शनीय है। प्राचीन मन्दिर के नीचे वावा ऋषभदास की ध्यानगुफा है। प्रति तीसरे वर्ष मेला होता है।
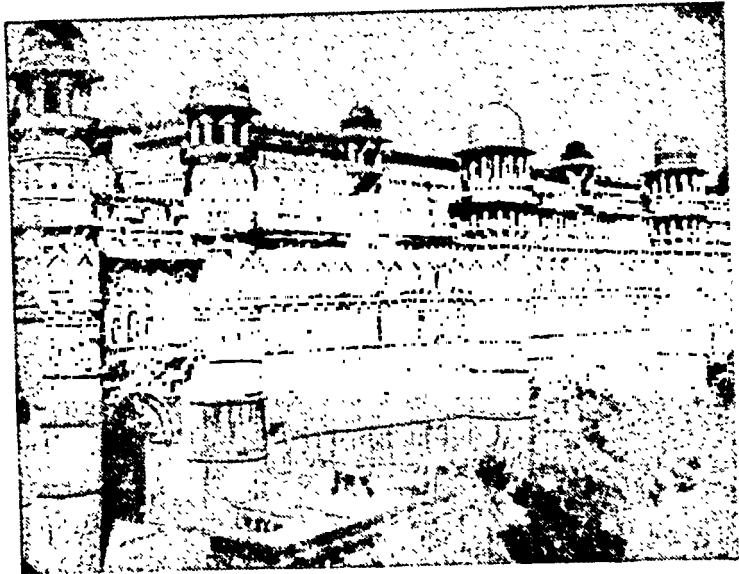
गवालियर दुर्ग, गवालियर
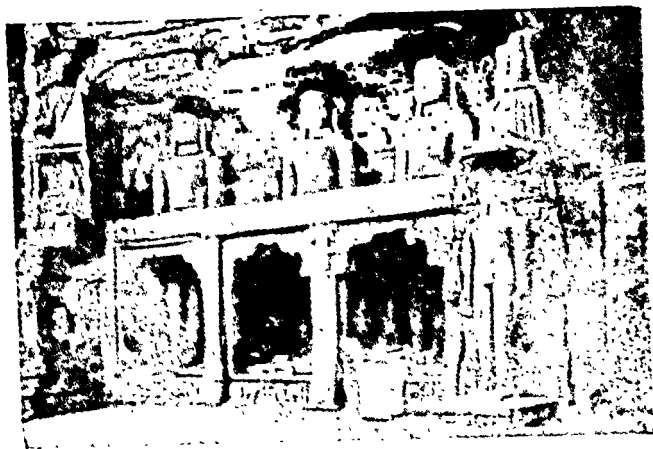
गवालियर दुर्ग में जैन मूर्तियां
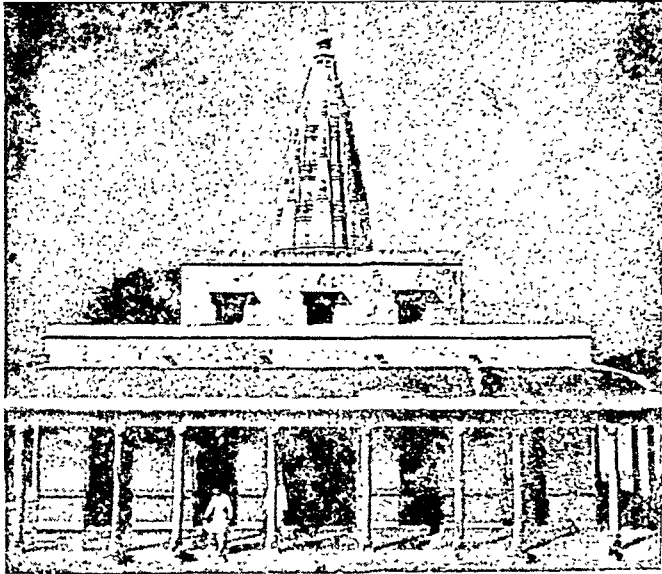
जैन मन्दिर सारनाथ वाराणसी

पार्श्वनाथ मन्दिर की कला खजुराहो

कम्पिला

भारत की अत्यन्त प्राचीन सांस्कृतिक नगरी है कम्पिला उत्तर प्रदेश के फरुखावाद जिले की कायमगंज तहसील में एक छोटा सा गाँव है। उत्तर रेलवे की अछनेरा कानपुर शाखा के कायमगंज स्टेशन से ८ कि० मी० दूर है। स्टेशन से गांव तक पक्की सड़क है। वस ताँगे मिलते हैं। कम्पिला में तेरहवें तीर्थकर भगवान विमलनाथ के गर्भ, जन्म, दीक्षा और केवल ज्ञान ये चार कल्याणक हुए थे। अतः यह स्थान उनके समय से ही तीर्थ माना जाता था। पंचाल जनपद में भगवान आदिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर के विहार और समवसरण का उल्लेख मिलता है। साहित्य में इस नगरी के कई नाम मिलते हैं—कम्पिला, काम्पिल्य और कहीं कहीं इसका नाम भोगपुर और माकन्दी भी आया है।

प्राचीन भारत में भगवान ऋषभदेव ने ५२ जनपदों की रचना एवं भगवान महावीर से पूर्व १६ महा जनपदों का उल्लेख जैन साहित्य में मिलता है। उन दोनों में पंचाल जनपद भी था। महाभारत युद्ध से पूर्व सम्पूर्ण पंचाल जनपद पर राजा द्रुपद का आधिपत्य था। उनकी रानी का नाम भोगवती अथवा दृढ़ता थी। द्रोपदी उनकी अनुपम सुन्दरी पुत्री थी। वाद में वह अर्जुन को व्याही गई। उस समय अखण्ड पंचाल की राजधानी कम्पिला थी। इस काल में राजप्रसाद से गंगा नदो तक एक कलापूर्ण सुरंग वनाई गई, जिसमें ८० वड़े द्वार और ६४ छोटे द्वार थे। कहते हैं उसमें एक ऐसी मशीन लगी थी जिसमें एक कीला ठोकते ही सभी द्वार स्वतः वन्द हो जाते थे। अनन्तर उत्तर पंचाल पर द्रोणाचार्य का आधिपत्य हो गया था दक्षिण पंचाल द्रुपद के शासन में रहा। उत्तर पंचाल की राजधानी अहिच्छत्र और दक्षिण की कम्पिला थी। उस समय कम्पिला राज्य की सीमा गंगा से लेकर दक्षिण में चर्मण्वती (चम्वल) तक थी।

चीनी यात्री फाह्यान ने संकाश्य को और उसके पश्चात् ह्वेंसांग ने कपित्थिक को कम्पिला का सन्निवेश वताया है। इस समृद्ध और विशाल नगरी में इक्ष्वाकु वंशी राजा हरिकेतु और रानी वप्रा के हरिषेण दसवां प्रसिद्ध चक्रवर्ती हुआ। उसने अपने राज्य की समस्त पृथ्वी को जिन प्रतिमाओं से अलंकृत किया था। इसी प्रकार वारहवाँ चक्रवर्वी ब्रह्मदत्त भी यहीं पर हुआ था।

प्राचीन मन्दिर—प्रागैतिहासिक काल का कोई मन्दिर वर्तमान में उपलब्ध नहीं है। एक प्राचीन मन्दिर बस्ती के बीच पश्चिमोत्तर भाग में है। इसका निर्माण विक्रम सं० ५४६ (ई० सन् ४६२) बताया जाता है। मन्दिर का शिखर विशाल है। मूलनायक प्रतिमा भगवान विमलनाथ की हैं। इसकी अवगाहना दो फुट वर्ण खाकी पाषाण की पद्मासन मुद्रा में है। छाती पर श्रीवत्स और हथेली पर श्री वृक्ष का चिन्ह हैं। पहले यह मन्दिर के गर्भ भाग में विराजित थी। वहां से अब नई वेदी में विराजमान कर दी है। प्रतिमा पर लेख काफी घिस गया हैं। इसकी बनावट शैली और पाषाण आदि का सूक्ष्म निरीक्षण करने पर तथा श्रीवस्त से लगता है कि यह गुप्तकालीन है। प्रतिमा भावांकन अत्यन्त सजीव है। यह प्रतिमा गंगा से निकाली गई थी, पानी में पड़े रहने से इसके मुख पेट और छाती पर दाग से पड़ गये हैं। मुख्य वेदी पर ५ पाषाण एवं १३ धातु की प्रतिमाएं है। बायीं ओर की वेदी में १ फुट १० इन्च अवगाहना की पद्मासन प्रतिमा है इस पर लाछन या लेख नहीं है। दो अन्य प्रतिमाएँ सं० १५४८ की और तीसरी कृष्ण वर्ण प्रतिमा सं० १९६० की है। बायीं ओर बरामदे में एक सर्वतोभद्रिका प्रतिमा रखी है। बीच में से इसके दो भाग हो गये हैं। दोनों भागों में दो-दो प्रतिमाएँ हैं सभी खण्डित अवस्था में हैं। यहां २ धर्मशालायें हैं एक मन्दिर के सामने दूसरी विशाल दो मंजिली धर्मशाला बस्ती के दूसरे सिरे पर

है। क्षेत्र पर मेला ११ चैत्र कृष्णा अमावस्या से चैत्र शुक्ला तृतीया तक तथा आश्विन कृष्णा द्वितीया को होता है।

प्रयाग (इलाहाबाद)

दिल्ली-कलकत्ता लाईन पर (प्रयाग) इलाहाबाद जंकशन है दिल्ली से ६२७ तथा कलकत्ता से ८१४ कि० मी० है। टैक्सी-ताँगा-रिक्शे मिलते हैं। नेनी में हवाई अड्डा है। मुहल्ला चाहचन्द में धर्मशाला—३ मन्दिर—२ चैत्यालय हैं। इनके अतिरिक्त ५ मन्दिर और चैत्यालय अन्य मुहल्लों में हैं।

आद्य तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने जिन ५२ देशों की रचना की थी, उसमें कौशल देश भी था। उसके अन्तर्गत ही पुरिमताल नामक एक नगर था। भगवान ने दीक्षा लेने से पूर्व अपने सौ पुत्रों को विभिन्न नगरों के राज्य दिये थे। वृषसेन नामक पुत्र को पुरिमताल नगर का राज्य दिया। भगवान राजपाट त्याग कर दीक्षा लेने अयोध्या से वन (पुरिमताल) पहुँचे और दीक्षा लेते ही भगवान को मनः पर्ययज्ञान उत्पन्न हो गया। प्रजा ने भगवान् की पूजा की। उस स्थान का पूजा के कारण 'प्रयाग' नाम को प्राप्त हुआ। और फिर पुरिमताल नगर भी प्रयाग कहलाने लगा। प्रयाग प्राचीन काल में काफी समय तक कौशल राज्य के अन्तर्गत रहा, पश्चात् यह पाटलिपुत्र साम्राज्य का एक अंग बन गया। मुगलकाल में प्रयाग एक सूबा था। शासन की दृष्टि से मुगलों ने एक किला भी बनवाया और अकबर ने प्रयाग का नाम बदलकर इलाहाबाद कर दिया। लगभग १५०-२०० वर्ष पूर्व किले की खुदाई में कुछ जैन तीर्थ कर

और यक्ष-यक्षिणियों की मूर्तियां निकली थी। जैन समाज ने सरकार से मूतियां लेकर दोनों मन्दिरों में विराजमान कर दी। मूर्तियां पुरातत्व एवं कला की दृष्टि से बड़ी मूल्यवान है।

पार्श्वनाथ पंचायती मन्दिर—चाहचन्द मुहल्ला सरावगियान में अवस्थित है। ऐसा अनुमान है कि इस मन्दिर का निर्माण नौवीं शताब्दी में हुआ था। मूलनायक सिलेटी वर्ण की प्रतिमा भगवान पार्श्वनाथ की साढ़े चार फुट की है। किंवदन्ती है कि यह प्रतिमा किले में खुदाई करते समय निकली थी। अधिकारी ने एक शर्त रखी 'जैनों की प्रतिमा है तो इसे एक ही व्यक्ति उठाकर कर ले जाये।' ऐसा चमत्कार हुआ की एक धार्मिक सज्जन ने इसे आसानी से उठा लिया और किले के बाहर गाड़ी में रखकर ले आये। मूलनायक प्रतिमा चतुर्थ काल की कही जाती है। इसके बायीं ओर शिलाफलक पर भगवान् आदिनाथ की खड्गासन १ फुट ९ इन्च की प्रतिमा है। दोनों ओर दो-दो तीर्थंकर मूर्तियां पद्मासन विराजमान हैं। एक शिलापट्ट पर पंचबालयति खड्गासन प्रतिमा अंकित है। भगवान पार्श्वनाथ की एक फणावलि मण्डित प्रतिमा है। इससे आगे भगवान आदिनाथ की खड्गासन प्रतिमा है। बायीं ओर की वेदी में श्वेत पाषाण की अम्बिकादेवी की १ फुट ३ इन्च की मूर्ति सं० १४३३ की है। धातु की ६ इन्च की चतुर्भुजी पद्मावती की मूर्ति है। इसके आगे हंसवाहिनी देवी की धातु मूर्ति है। दो चतुर्भुजी देवी की मूर्तियाँ सं० १५३७ व १५४१ की हैं।

पंचायती बड़ा मन्दिर—पार्श्वनाथ मन्दिर से सट्टा हुआ जैन धर्मशाला के फाटक के अन्दर है। बायीं ओर से एक शिलाफलक में भगवान आदिनाथ की खड्गासन प्रतिमा है—सिर पर जटाएँ हैं जो पीठ की ओर गई हैं—नीचे यक्ष-यक्षिणी हैं—परिकर में चौबीस तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं। कृष्ण पाषाण की २ फुट ६ इन्च की भगवान पद्मप्रभु की खड्गासन-प्रतिमा है। एक अन्य प्रतिमा भगवान आदि-

नाथ की है जो मूर्ति न० १ के अनुकूल है। आगे की पंक्ति में १३ इन्च की भगवान पार्श्वनाथ की एक कृष्ण पाषाण की ११ इन्च की जिसमें लाँछन नहीं है तथा दायीं ओर कृष्ण पाषाण की १३ इन्च की दो प्रतिमाएँ भगवान पार्श्वनाथ की हैं। यह सभी प्रतिमाएँ लगता है छठी से दसवीं शताब्दी तक की हैं जो पुरातत्व एवं कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

अक्षयवट—प्राकृतिक सुषमा से समृद्ध, गंगा, यमुना और सरस्वती का यह संगम स्थल है। इन तीन नदियों की श्वेत, नील और रक्त धाराएँ मिलकर एक दूसरे में समाहित हो गई हैं। यह अक्षयवट इस त्रिवेणी संगम के तट पर खड़े हुए किले के भीतर हैं। मूल अक्षयवट तो समाप्त हो गया, किन्तु उसकी वंश परम्परा के द्वारा अब तक एक अक्षयवट विद्यमान है। भगवान ऋषभदेव को वटवृक्ष के नीचे अक्षय-ज्ञान लक्ष्मी प्राप्त हुई, वह वटवृक्ष 'अक्षयवट' कहलाने लगा। जनश्रुति के अनुसार यही वह अक्षयवट है। प्राचीन काल में यहाँ भगवान के चरण विराजमान थे और यहां जैन मन्दिर भी विद्यमान रहा है, क्योंकि खुदाई के समय किले में अनेकों जैन मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। यहां एक प्राचीन स्तम्भ है जिसे मौर्य सम्राट् प्रियदर्शी सम्प्रति ने भगवान की कल्याणक भूमि पर निर्माण कराया था। इस स्तम्भ को भूल से अशोक स्तम्भ कहने लगे हैं। इसके ऊपर प्रियदर्शी, उसकी रानी, सम्राट् समुद्रगुप्त, बीरबल और जहाँगीर के लेख खुदे हुए हैं। हिन्दू प्रयाग को अपना तीर्थराज मानते हैं। त्रिवेणी संगम में स्नान करने को पुण्यप्रद मानते हैं। हर छः वर्ष उपरान्त अर्ध कुम्भ और बारह वर्ष पर कुम्भ होता है।

प्रयाग म्युजियम में जैन पुरातत्व—यहाँ जैन पुरातन कलाकृतियों का सुन्दर संग्रह है। यह कलाकृतियां कौशाम्बी, पभौसा, गया, जसो आदि विभिन्न स्थानों से प्राप्त हुई हैं। प्राचीनता एवं कला दोनों ही दृष्टियों से इनका विशेष महत्व है।

कौशाम्बी

इलाहबाद से बस द्वारा कौशाम्बी रेस्ट हाउस ६० कि० मी० है। यहाँ से ४ कि० मी० कच्चा मार्ग है। रेल द्वारा मेन लाईन पर भखारी स्टेशन ३७ कि० मी०, यहां से क्षेत्र ३२ कि० मी० है। आज कल प्राचीन वैभवशाली कौशाम्बी के स्थान पर गढ़वा कौशल इनाम और कौशल इनाम और कोसम खिराज नामक छोटे-छोटे गांव जमुना के तट पर अवस्थित हैं। क्षेत्र से गढ़वा इनाम गांव १ कि० मी० है। यहां से जल मार्ग द्वारा पभोसा गिरि १० कि० मी० है। कहते हैं, वर्तमान पाली, सिंहबल, कोसम, पभोसा यह सब गांव पहले कौशाम्बी के अन्तर्गत थे। आज तो वह खण्डहर के रूप में पड़ी हुई है।

प्राचीन कौशाम्बी की प्रसिद्धि छठे तीर्थंकर भगवान पद्मप्रभु के कारण है। वास्तव में कौशाम्बी में भगवान के गर्भ और जन्म कल्याणक हुए थे और पभोसा में जो कौशाम्बी का उद्यान था, दीक्षा और केवल ज्ञान कल्याणक हुए थे। आजकल इस वन को अरथवन कहते हैं। कौशाम्बी की स्थापना चन्द्रवंशी राजा कुशाम्बुने की थी। जैन ग्रन्थों के अनुसार ईसा पूर्व ७वीं शताब्दी में जो १६ बड़े जनपद थे, उनमें एक वस्तदेश था, जिसकी राजधानी कौशाम्बी थी। गंगा की बाढ़ के कारण जब हस्तिनापुर का विनाश हो गया, उसके बाद चन्द्रवँशी नरेश कुशाम्बु ने इस स्थान का नाम कौशाम्बी रखा और इसे अपनी राजधानी बनाया था। उनके वंश ने यहाँ २२ पीढ़ी तक राज्य किया।

भगवान महावीर के समय में शतानीक वत्स देश का राजा था। वैशाली गणतन्त्र के अधिपति चेतक की पुत्री मृगावती का विवाह शतानीक के साथ हुआ था। इस प्रकार वस्तराज शतानीक साँसारिक सम्बन्ध के कारण भगवान महावीर के मौसा थे और मृगावती

उनकी मौसी थी। राजा शतानीक का दुर्ग ६ कि० मी० के घेरे में था। उसमें ३२ द्वार थे। उसी के अन्दर कौशाम्वी नगरी वसी हुई थी। अव भी अनेक स्थानों पर दुर्ग की ध्वस्त दीवारें ३० से ३५ फुट ऊँची स्पष्ट दिखाई देती हैं यहां के प्राचीन नगर के भग्नावशेप मीलों में विखरे पड़े हैं।

कौशाम्वी में एक कुशल चित्रकार था. किसी कारण वंश राजा ने उसे निकाल दिया, चित्रकार के मन में प्रतिशोध की भावना जागृत हो गई। वह अवन्ती नरेश चण्ड प्रद्योत के दरवार में पहुँचा और उसे मृगावती रानी का चित्र दिखाया। प्रद्योत मृगावती पर मोहित्त हो गया। उसने शतानीक के पास सन्देश भेजा कि या तो महार.नी मृगावती को मुझे दे दो या फिर युद्ध के लिए तैयार हो जाओ। वीर शतानीक ने युद्ध पसन्द किया। भयंकर युद्ध हुआ, किन्तु शतानीक की युद्ध के समय सम्भवतः विसूचिका रोग से मृत्यु हो गई। प्रद्योत उस समय वापिस लौट गया। मृगावती ने राज्य का शासन-सूत्र सम्भाल लिया। राजकुमार उदयन की अवस्था उस समय ६-७ वर्प की थी। प्रद्योत ने मृगावती के पास पुनः विवाह का प्रस्ताव भेजा। मगावती ने चतुराई से उदयन के राज्यारोहण तक का समय मांग लिया। प्रद्योत ने पुनः कौशाम्वी पर आक्रमण कर दिया। भयानक युद्ध हुआ। अन्त में सन्धि हुई। प्रद्योत के हाथों से उदयन का राज्य-भिपेक हुआ और राजमाता मृगावती भगवान महावीर के पास दीक्षित हो गयीं। उदयन के कोई सन्तान नहीं थी, उसकी मृत्यु के पश्चात् रानी वासवदत्ता ने अपना भतीजा गोद ले लिया। राज्य-भिषेक के पश्चात् उसने अवन्ती पर अधिकार कर लिया। इसके कुछ समय पश्चात् मगध सम्राट् नन्दिवर्धन ने उससे वत्स-राज्य छीन लिया।

यहाँ सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना 'कुमारी चन्दना' की घटित हुई। केवल्य-प्राप्ति से पूर्व भगवान महावीर पारण के लिए नगर में पधारे

संयोगवश उस समय भारत की सर्वाधिक शक्तिशाली गणराज्य वैशाली के अधिपति चेटक की पुत्री चन्दना (चन्दन वाला) दुर्भाग्य के चक्र में पड़कर सेठ वृषसेन की सेठानी द्वारा वन्धन में पड़ी हुई थी। झूठे सापत्न्य द्वेष से सेठानी ने उसे जंजीरों में बांध रखा था। चन्दना ने ज्यों ही प्रभु महावीर को देखा त्यों ही उसके सारे वन्धन खुल गए। सेठानी ने उसे निराभरण कर रखा था, उसे खाने के लिए 'उड़द का बांकला' मिट्टी के सकोरे में दे रखा था। भगवान के चरणों में झुकी और नवधा भक्ति पूर्वक भगवान को 'उड़द के बाँकलों' से पड़गाहा। देवों ने आकर आकाश से रत्न वर्षा की, पुष्प वृष्टि हुई, देवों ने दुन्दभि घोष किये।

चन्दन वाला धन्य हो गई। इसी चन्दन वाला ने भगवान महावीर का केवल ज्ञान होने पर दीक्षा ग्रहण कर ली और विशाल आर्यिकाओं के संघ की सर्वप्रमुख गणिनी के पद पर प्रतिष्ठित हुई। प्राचीन साहित्य के अनुसार धवल सेठ यहीं के थे, वस्तुतः यह नगरी उस समय अत्यन्त समृद्ध थी। मौर्य, शुंग, कुशाण और गुप्त काल में यह नगरी कला और वाणिज्य का केन्द्र रही। शताब्दियों तक मृण-मूर्तियों तथा मनकों के निर्माण का प्रसिद्ध केन्द्र रहा। किन्तु मुस्लिम काल में इसकी समृद्धि समाप्त हो गई। कला का विनाश कर दिया; मन्दिर, मूर्तियाँ, स्तूप शिलालेख तोड़ दिये गये। उससे कौशाम्बी का स्वर्णित अतीत खण्डहरों के रूप में बिखर गया।

भग्नावशेषों के मध्य में एक स्तम्भ है। भगवान पद्मप्रभु का जन्म स्थान होने के कारण जिसे सम्राट् सम्प्रति ने निर्मित कराया था। खुदाई में यहां एक विहार निकला था, जो मंखलीपुत्र गोशालक का कहलाता है। कहा जाता है, इस विहार में गोशालक के सम्प्रदाय के पांच हजार साधु रहते थे। प्रारम्भ में गोशालक भगवान महावीर का शिष्य था किन्तु वाद में भगवान से द्वेष और स्पर्द्धा करने लगा और नया आजीवक सम्प्रदाय चलाया। कौशाम्बी में खुदाई के

फलस्वरूप हजारों कलापूर्ण मूर्तियाँ और मनके प्राप्त हुए थे, जो प्रयाग संग्रहालय में सुरक्षित है।

यहाँ एक दिगम्बर जैन मन्दिर और एक धर्मशाला है। मन्दिर में दो वेदियाँ हैं। एक में भगवान् पद्मप्रभु की प्रतिमा और चरण हैं। एक शिलाफलक में प्रतिमा अंकित है। यह मूर्ति भूगर्भ से निकली थी। आगे ८ इंच के भगवान के चरण है, लेख संवत् ५६७ का है। बायीं ओर कमरे में सर्वतोभद्रिका २ फुट ८ इंच की श्वेत पाषाण की प्रतिमा विराजमान है। गर्भगृह के बाहर एक आले में क्षेत्रपाल की स्थापना की गयी है। प्रतिवर्ष फागुन कृष्ण ४ को निर्वाणोत्सव मनाया जाता है।

पभोसा

यमुना के तट पर कौशाम्बी से प्रायः १० कि० मी० यमुना के रास्ते नाव द्वारा है। भगवान पद्मप्रभु के दीक्षा और ज्ञान कल्याणक यहीं हुए। पभोसा कौशाम्बी का ही एक भाग था और यहां उस समय वन था। इसलिए पभोसा का अपना कोई स्वतन्त्र इतिहास नहीं है। नारायण श्री कृष्ण का निधन जरत्कुमार के बाण से यहीं पर हुआ था। इस कल्पकाल के अन्तिम नारायण श्री कृष्ण के अन्तिम काल का इतिहास पभोसा की मिट्टी में लिखा गया। पभोसा में शुंगकाल (ई० पू० १०० से १८५) के समय के कई शिलालेख प्राप्त हुए हैं। शुंग वंश के बाद मित्रवंशी नरेशों का आधिपत्य रहा। उत्तर पंचाल नरेश आषाढ सेन के समय के दो लेख मिले हैं। एक लेख में राजा आषाढ़ सेन को बृहस्पतिमित्र का मामा बताया है। बृहस्पतिमित्र मथुरा का मित्रवंशीय नरेश था।

धर्मशाला में ही कमरे में मन्दिर है। यहां भूगर्भ से निकाली कुछ प्राचीन जैन मूर्तियाँ भी विराजमान हैं। एक ४ फुट के शिलाफलक में भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा है, इसके दोनों ओर दो-दो खड्गासन अरिहंत प्रतिमा हैं। मूर्ति खण्डित हैं, किन्तु गुप्तकाल की प्रतीत होती है। एक सर्वतोभाद्रिका खण्डित प्रतिमा है। धर्मशाला के निकट छोटी सी पहाड़ी है, ऊपर जाने के लिए १६८ सीढ़िया हैं, ऊपर चबूतरे पर एक कमरा है जो मन्दिर के रूप में काम देता है। पहले यहां पर मन्दिर था, किन्तु वीर सं० २४५७ में यकायक पर्वत का कुछ भाग टूट कर मन्दिर के ऊपर गिर पड़ा जिससे मन्दिर तो समाप्त हो गया पर प्रतिमाएँ बच गयीं। प्रतिमाएँ निकाल कर वर्तमान कमरे में विराजमान कर दी गयीं हैं। कहते हैं पहले पहाड़ पर तीन मन्दिर, मानस्तम्भ और भट्टारक ललित-कीर्ति की गद्दी थी। उत्कापात होने से यह सब नष्ट हो गये।

कमरे में चबूतरे पर प्रतिमाएँ विराजमान हैं। इनमें मूलनायक भगवान पद्म प्रभु की प्रतिमा हलके बादामी वर्ण की पद्मासन मुद्रा में ढाई फुट, अवगाहना की है। ऐसी मान्यता है, कि प्रतिमाएँ चतुर्थ काल की हैं। प्रतिमा पर गूढ़लास्य और वीतराग शान्ति का सामंजस्य अत्यन्त प्रभाविक है। किन्तु पाषाण एवं कला से यह ईसा पूर्व द्वितीय-प्रथम शताब्दी की प्रतीत होती है। जैसा अद्भुत आश्चर्य इस प्रतिमा में है, वैसा सम्भवतः अन्यत्र कहीं देखने में नहीं आया। प्रतिमा यद्यपि बादामी वर्ण की है, किन्तु सूर्योदय के पश्चात् इसका रंग बदलने लगता है। ज्यों-ज्यों सूर्य आगे बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों प्रतिमा का रंग लाल होता जाता है। लगभग १२ बजे प्रतिमा लोहित वर्ण की हो जाती है। इसके पश्चात् यह वर्ण हलका पड़ने लगता है, और लगभग ३ बजे कत्थई रंग की हो जाती है। और फिर घटते घटते शाम को वह अपने असली रूप में, आ जाती है। प्रतिमा का रंग-परिवर्तन एक दैवी चमत्कार माना जाता है।

दूसरा चमत्कार यह है कि यहाँ केशर की वर्षा होती है, विशेषतः कार्तिक सुदी १३ और चैत्र सुदी १५ को।

मूलनायक प्रतिमा के वायीं ओर भगवान नेमीनाथ की भूरे पाषाण की पद्मासन २ फुट ७ इंच अवगाहना वाली प्रतिमा है। लेख के अनुसार सं० १५०८ की है।—इससे आगे वायीं ओर सं० १८५२ की कृष्ण वर्ण मूर्ति है—एक भूरे वर्ण की पद्मासन प्रतिमा है। सबसे अन्त में मूर्तियों के चार भग्न खण्ड रखे हुए हैं। मन्दिर (कमरे) के और पहाड़ की एक विशाल शिला में डकेरी हुई चार प्रतिमाएँ हैं जो ध्यानमग्न मुनियों की हैं। ऊपर दो गुफाएँ भी है, जिनमें संस्कृत में लिखित शिलालेख हैं। डा० फयूरर ने इन शिलालेखों का काल द्वितीय या प्रथम ईसवी पूर्व निश्चित किया है।—आस-पास के जैन मन्दिर यह क्षेत्र शताब्दियों तक जैन धर्म का प्रमुख केन्द्र रहा है। अतः यहां आस-पास में जैन पुरातत्व सामग्री और मूर्तियां बहुतायत में मिलती हैं।—चम्पहा में मन्दिर है: एक सर्वतोभद्रि का खण्डित प्रतिमा जो ई० सन् पूर्व की प्रतीत होती है, रखी है।—शहजादपुर में एक मन्दिर है। एक अनुश्रुति के अनुसार प्राचीन काल में यहाँ २०० जैन मन्दिर थे यह स्थान भरवारी से २७ कि० मी० है।—दारानगर में भी एक प्राचीन मन्दिर है।—पाली में एक प्राचीन मन्दिर था। किन्तु यमुना की वाढ़ में वह गया नया मन्दिर वन गया है। प्रतिमाएँ प्राचीन है उसके भग्नावशेष वचे हैं। पभोसा में वार्षिक उत्सव चैत सुदी पूर्णमासी को होता है।

लखनऊ

पभोसा से इलाहाबाद वापस आकर वहाँ से लखनऊ २८५ कि० मी० है। इलाहाबाद से ट्रेनें और बसें सीधी अयोध्या जाती हैं (१६० कि० मी०) तथा लखनऊ से अयोध्या १३९ कि० मी० है। लखनऊ ऐतिहासिक नगर गौमती नदी के किनारे पर अवस्थित है। ४ बाग स्टेशन के पास ही मुन्नेलाल कागजी की जैन धर्मशाला एवं मन्दिर है। इसके अतिरिक्त चौंक बाजार की चूड़ी वाली गली में दो मन्दिर और धर्मशाला है, धर्मशाला वाला मन्दिर पंचायती मन्दिर कहलाता है। चौंक से थोड़ी दूर यहियागंज में धर्मशाला के बीच में एक विशाल मन्दिर है। सयादतगंज में तथा डालोगंज में भी एक-एक मन्दिर है। अन्य दर्शनीय स्थान छोटा-बड़ा इमामबाड़े, रेजीडैन्सी, शहीद स्मारक, विधान सभा भवन, चिड़िया घर आदि। म्यूजियम, इसे जैन म्यूजियम भी कहते हैं केसर बाग में स्थित है, जैन सामग्री का कक्ष अलग बना हुआ है।

अयोध्या

अयोध्या फैजाबाद जिले में सड़क मार्ग से फैजाबाद से ५ कि० मी० लखनऊ से १३९ कि० मी० इलाहाबाद से १५० कि० मी० और वाराणसी से १९२ कि० मी० है। यह प्राचीन इतिहासिक नगरी सरयू नदी के तट पर स्थित है। अयोध्या स्टेशन से कटरा मुहल्ला ३ कि० मी० और राटागंज मुहल्ला १॥ कि० मी० है। घोड़ा तांगा तथा साईकिल रिक्शे मिलते हैं। शहर में दो धर्मशाला हैं।

जैन साहित्य में अयोध्या के अनेकों नाम मिलते हैं, जैसे अयुध्या, अयोध्या, साकेत, कोसला, रामपुरी, विनीता और विशाखा। जैन मान्यता के अनुसार यह शाश्वत नगरी है। प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के गर्भ और जन्म कल्याणक तथा दूसरे तीर्थंकर भगवान् अजितनाथ. चौथे तीर्थंकर भगवान् अभिनन्दननाथ, पांचवें तीर्थंकर भगवान सुमतिनाथ और चौदहवें तीर्थंकर भगवान अनन्तनाथ इन चारों तीर्थंकरों के गर्भ, जन्म, दीक्षा और केवल ज्ञान कल्याणक मनाने का सौभाग्य इस पुण्य नगरी को प्राप्त हुआ है। अयोध्या नगरी में—ऋषभदेव का जन्म, माता मरुदेवी और पिता नाभिराय से चैत्र कृष्णा ९ को उत्तराषाढ़ नक्षत्र में हुआ—अजितनाथ जिन्देन्द्र का जन्म माता विजया और पिता जितशत्रु से माघ शुक्ल १० को रोहिणी नक्षत्र में हुआ। अभिनन्दननाथ माता सिद्धार्था और पिता सँवर यहां माघ शुक्ला १२ को पुनवसु नक्षत्र में उत्पन्न हुए।—सुमतिनाथ तीर्थंकर का जन्म माता मंगला और पिता मेघप्रभू से श्रावण शुक्ला ११ मघा नक्षत्र में हुआ—साकेतपुर में माता सर्वयशा और पिता सिंहसेन से ज्येष्ठ कृष्णा १२ को रेवती नक्षत्र में अनन्तनाथ जिनेश्वर का जन्म हुआ।

आचार्य जिनसेन कृत हरिवंश पुराण के अनुसार जव भोगभूमिका अन्त हुआ, उस समय कल्पवृक्ष नष्ट हो गये। केवल एक कल्पवृक्ष अवशिष्ट रह गया, जिसमें चौदहवें कुजकर अथवा मनु नाभिराय रहते थे। जव प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव गर्भ में आने वाले थे, तव इन्द्र ने कुवेर को भगवान के उपयुक्त नगरी की रचना का आदेश दिया। इन्द्र ने शुभ मुहूर्त नक्षत्र में प्रथम ही माँगलिक कार्य किया। भावी तीर्थंकर के माता के गर्भ में आने से ६ माह पूर्व और गंभावस्था में नौ माह तक ११९ इन्द्र द्वारा रत्न और स्वर्ण वृष्टि होती है। इसी नगरी में भगवान ऋषभ देव ने आषाढ कृष्ण प्रतिपदा को कृतयुग अथवा कर्मयुग का प्रारम्भ किया। उन्होंने यहीं पर सवसे

पहले असि-मोस कृषि, विद्या, शिला और वाणिज्य इन छह कर्मों का ज्ञान समाज को दिया था। यहीं पर उन्होंने ब्राह्मी और सुन्दरी पुत्रियों के माध्यम से लिपि और अंक विद्या का आविष्कार किया था। अपने भरत आदि सौ पुत्रों को वहत्तर कलाओं का शिक्षण भी यहीं दिया था। सामाजिक व्यवस्था के लिए क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण की स्थापना उन्होंने यहीं की। उन्होंने सारे राष्ट्र को ५२ जन-पदों या देशों में विभाजित किया। उनके ज्येष्ठ पुत्र भरत ने सम्पूर्ण भरत खण्ड पर विजय प्राप्त कर सम्पूर्ण साम्राज्य का केन्द्र अयोध्या को बनाया। वे भरत क्षेत्र के प्रथम चक्रवर्ती सम्राट हुए। उनके नाम पर ही। इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। चक्रवर्ती भरत ने अयोध्या के बाहर चारों दिशाओं में तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ और स्तूप निर्मित कराये। इस प्रकार संसार में सर्वप्रथम मूर्तिकला तथा स्तूपों का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। इसके पश्चात् मर्यादा पुरुषोतम रामचन्द्र के कारण अयोध्या को विशेष ख्याति प्राप्त हुई अयोध्या हिन्दुओं के अनुसार सप्तपुरियों में प्रथम पुरी है। मर्यादा पुरुषोतम भगवान श्रीराम के भी पूर्ववर्ती सूर्यवंशी राजाओं की यह राजधानी रही है।

प्राचीन काल में अयोध्या सांस्कृतिक एवं राजनीतिक केन्द्र रही है। अन्तिम मनु से लेकर इक्ष्वाकुवंशी ११२ पीढ़ियों ने इस नगर पर शासन किया। इक्ष्वाकुवँशी पश्चाद्वर्ती काल में सूर्यवंशी और पूरु-वंशी कहलाने लगे। अयोध्या का राज्य कौशल कहलाता था। भगवान महावीर के काल में कौशल राज्य दो भागों में बंट गया—उत्तर कौशल और दक्षिण कौशल। सरयू नदी इन दोनों की सीमा बनाती थी। दक्षिण कौशल की राजधानी अयोध्या रही और उत्तर कौशल की श्रावस्ती। गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के काल में अयोध्या साहित्य और कला की केन्द्र बन गई। चीनी यात्री ह्वेनत्सांग के समय में इस नगर का विस्तार १० ली (६ कि० मी०)

था। बारहवीं शताब्दी के बाद भार जाति के राजाओं का इस पर अधिकार हो गया। ये राजा जैन धर्मावलम्बी थे। इन राजाओं के मुसलमानों ने परास्त किया।

प्राचीन दि० जैन मन्दिर, कटरा मुहल्ले में स्थित है। मन्दिर की मुख्य वेदी में भगवान अदिनाथ की श्वेत पाषाण की पद्मासन प्रतिमा सं० २००६ की प्रतिष्ठित है। इसके बायीं ओर भगवान अजितनाथ और दायीं ओर भगवान सुमति नाथ की प्रतिमाएं विराजमान हैं। भगवान अजितनाथ की प्रतिमा पर सं० १५४८ का अभिलेख है इसके अतिरिक्त वेदी में १८ धातु और पाषाण प्रतिमाएँ हैं।—इस वेदी के निकटस्थ दूसरी वेदी में तीन प्रतिमाएं हैं। मुख्य प्रतिमा भगवान अभिनन्दन नाथ की कही जाती है, इसकी प्रतिष्ठा सं० १२२४ की है।—इस वेदी के आगे शहन में एक टोंक में भगवान सुमतिनाथ के सिलेटी वर्ण के चरण बने हुए हैं। तीसरी वेदी भगवान आदिनाथ की है। भगवान आदिनाथ की ८ फुट की खड्गासन मनोज्ञ प्रतिमा है। इसके दोनों ओर भरत और बाहुबली की कायोत्सर्ग मुद्रावली प्रतिमाएँ आसीन हैं। इन तीनों प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा सं० २००६ की है। अन्तिम वेदी में मुख्य प्रतिमा भगवान पार्श्वनाथ की है दूसरी प्रतिमा भगवान चन्द्र प्रभु की है।

अनन्तनाथ की टोंक—सरयूनदी के तट पर अवस्थित है। कटरा मोहल्ले से पक्का मार्ग है। एक कमरे में चबूतरे पर भगवान अनन्तनाथ के जन्मस्थान पर साढ़े सात इंच के चरण बने हुए हैं। जीर्णोद्धार सम्बन्धी लेख लिखा है। इस टोंक के बाहर टीले हैं और एक नाला है पुरातत्व विभाग की ओर से खुदाई हुई थी। कनिंघम ने उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर इसे जैन टीला कहा है।

अभिनन्दन नाथ की टोंक—यह टोंक कटरा स्कूल के पास है। चरण मार्बल के हैं तथा शिखर है। जीर्णो: लेख लिखा है।

शीतलनाथ की टोंक—पूर्वोक्त टोंक के पास ही यह टोंक है।

इसमें साढ़े चार इंच लम्बे चरण, किन्हीं शीतल नाथ नामक मुनि के हैं।

अजित नाथ की टोंक—यह टोंक वेगम-पुरा मुहल्ले में है। चरण मार्वल के हैं। ऊपर शिखर है। जीर्णो लेख लिखा है।

आदिनाथ की टोंक—वक्सरिया टोला, पुराना थाना मुहल्ला में स्थित यह टोंक १९ सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर के खण्ड में है। अनुमानतः भगवान आदिनाथ की पवित्र जन्मभूमि यहीं थी। इस टोंक का अदभुत इतिहास है। कहते हैं, भगवान आदिनाथ के जन्मस्थान पर बने हुए प्राचीन जैन मन्दिर को तुड़वाकर नवावी शासन में मस्जिद वनवाई जा रही थी। शाही खजांची केशरीमल जी देहली वालों ने नवाव फैजउद्दीन से फरियाद की—"यह स्थान तो भगवान आदिनाथ का जन्मस्थान है।" इसपर नवाव ने उनसे प्रमाण माँगा। तव उन्होंने जवाब दिया "अमुक स्थान पर खुदवा कर देख लिया जाये। वहीं घी का एक चौमुखा दीपक, स्वस्तिक और नारियल मिलेंगे" नवाव के हुक्म से वह स्थान खोदा गया तो ये चीजें उसी प्रकार मिलीं। नवाव ने प्रभावित होकर मस्जिद का काम रुकवा दिया और जैनों को अपना मन्दिर पुनः बनाने की आज्ञा देदी। जैनों ने मूर्ति के स्थान पर केवल चरण विराजमान किये। इस टोंक के पास भग्नावशेषों से प्रतीत होता है उस काल में यह मन्दिर बहुत विशाल रहा होगा।

रायगंज मुहल्ला में एक विशाल मन्दिर कुछ वर्ष पूर्व निर्मित हुआ है। इसके भू-भाग में पुष्प-वाटिका वनी हुई है। वाहर वहुत ऊँचा फाटक है, इसके दोनों ओर धर्मशाला है। मन्दिर में २८ फुट अवगाहनावाली श्वेत पाषाण की भगवान आदिनाथ की कायोत्सगासन प्रतिमा विराजमान है। इस प्रतिमा के दायें-वायें दो-दो वेदियां हैं, जिनमें एक वेदी पर भगवान अजितनाथ अभिनन्दननाथ तथा दूसरी वेदी पर सुमितनाथ और अनन्तनाथ भगवान की पांच-

पांच फुट ऊँची मूर्तियाँ खड्गासन मुद्रा में विराजमान हैं। एक वेदी पर भगवान चन्द्रप्रभु की प्रतिमा विराजमान है।

त्रिलोक पुर

श्री नेमिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र त्रिलोकपुर तहसील फतहपुर जिला वारा वंकी में अवस्थित है। अयोध्या से बारावंकी सड़क मार्ग द्वारा १६७ कि० मी० है। बारावंकी से बिन्दौरा नहर १८ कि० मी० पक्का मार्ग है। सड़क के बायीं ओर को कच्चे रास्ते में उतर कर लगभग ६ कि० मी० है। उत्तर पूर्व छोटी लाईन के बिन्दौरा स्टेशन से ५ कि० मी० कच्चा मार्ग है।

दो दिगम्बर जैन मन्दिर हैं। एक 'भगवान नेमिनाथ का मन्दिर' जो अतिशय क्षेत्र कहलाता है तथा दूसरा पार्श्वनाथ मन्दिर। नेमिनाथ मन्दिर में मूलनायक भगवान नेमिनाथ की कसौटी के पाषाण की २२ इंच अवगाहना की पद्मासन प्रतिमा है। अभिलेख के बीच में शंख चिन्ह अंकित है, और सं० ११८७ का है। इस प्रतिमा की प्राप्ति का भी एक इतिहास है। यह स्थानीय तालाब में पड़ी हुई थी। एक अजैन बन्धु को यह मिल गई, जैन प्रतिमा ज्ञात होने पर उसने उसे जैनों को दे दी। जैन समाज ने मन्दिर बनवा कर मूर्ति वेदी में विराजमान करदी। इस प्रतिमा की कुछ अपनी विशेषताऐं हैं, जिनमें एक है प्रतिमा का भाव परिवर्तन। प्रातः भगवान के मुख पर बालक के समान भोलापन टपकता है। मध्याह्न में यौवन के अनुरूप तेज झरता है। सन्ध्या के बाद मुखपर प्रौढ़ और बुजुर्ग की तरह गम्भीरता प्रतीत होती है। इस प्रतिमा के अतिशयों और

चमत्कारों को लेकर नाना किंवदन्तियां प्रचलित हैं। कहते हैं, कभी-कभी रात में झांझ और खडताल की ध्वनि होती है। इसी प्रकार अनन्त चतुर्दशी, दीपावली और जिस दिन रथयात्रा होती है, मन्दिर में चारों ओर सुगन्ध मिलती है। कभी-कभी वेदी पर हरी लोंग और रुपये मिलते थे। कहते हैं वे रुपये अबतक स्थानीय एक जैन बन्धु के पास सुरक्षित हैं।

पार्श्वनाथ मन्दिर—गांव के एक कोने पर बना हुआ है। इस मन्दिर में केवल एक वेदी में मूलनायक पार्श्वनाथ की प्रतिमा श्वेत-वर्ण, २० इंची पद्मासन सं० १५४८ में प्रतिष्ठित हुई है। हलका बादामी वर्ण पाषाण फलक में चन्द्रप्रभू भगवान विराजमान हैं। अनुमानत १२वीं शताब्दी की लगती है। इस वेदी में १०६ प्रतिमाएं हैं, जिनमें १५ पाषाण की तथा ८२ धातु की हैं। यहां प्रतिवर्ष कार्तिक सुदी ९ को मेला लगता है। मन्दिर के बाहर धर्मशाला है।

रतन पुरी

क्षेत्र रतनपुरी जिला फैजाबाद में अयोध्या से बाराबंकी वाली सड़क पर २४ कि० मी० दूर है (लखनऊ से अयोध्या जाते हुए अयोध्या से २४ कि० मी० पहले है) सड़क से लगभग २ कि० मी० कच्चा मार्ग है। सोहावल स्टेशन से भी २ कि० मी० है। रौनाही गांव के बीच में सरयू के निकट दो मन्दिर दिगम्बर समाज के तथा नगर के बाहर दो मन्दिर श्वेताम्बर समाज के तथा एक धर्मशाला है। 'विविधतीर्थकल्प' नामक ग्रन्थ में रतनपुर को रत्नवाहपुर कहा है। रतनपुर में भगवान धर्मनाथ के चार कल्याणक हुए थे—गर्भ, जन्म दीक्षा, केवल ज्ञान, एक पुरानी अनुश्रुति के आधार पर इस

गांव में चाक द्वारा आजीविका करने वाला कोई कुम्हार नहीं रहता।

वस्ती में दो दिगम्वर जैन मन्दिर हैं। एक ही मन्दिर में प्रतिमाएं हैं, यहां भगवान धर्मनाथ का जन्मकल्याणक हुआ था। मूलनायक भगवान् धर्मनाथ की श्वेत पाषाण की ३ फुट उत्तुंग पद्मासन प्रतिमा सं० २००७ की है। वादामी वर्ण की भगवान् महावीर की पद्मासन प्रतिमा वीर नि० संवत् २४६३ की है। एक धातु प्रतिमा १ फुट अवगाहना की धर्मनाथ स्वामी की है। एक अन्य धातु प्रतिमा ८ इंच की भगवान पार्श्वनाथ की है। अभिलेख के अनुसार इसकी प्रतिप्ठा सं० ११६० की गयी है। एक अष्टकोण पीतल की प्लेट में भगवान के चरण अंकित है। इस मन्दिर से कुछ चलकर दूसरा मन्दिर है। यहां भगवान का गर्भकल्याणक होना वताया जाता है। तथा संगमरमर निर्मित भगवान के चरण सं० २००६ के विराजमान हैं। नागमूर्ति से वेष्टित भगवान् धर्मनाथ की पूजा की जाती है, और जव वर्षा नहीं होती, तव अजैन ग्रामीण लोग धर्मनाथ को धर्मराज मानकर दूध से उनका अभिषेक करते हैं। उनकी मान्यता है कि ऐसा करने से तत्काल वर्षा होने लगती है।

श्वेताम्वर मन्दिर—नगर के वाहर एक ही कम्पाउण्ड में दो मन्दिर तथा चारों कोनों पर चार टोंकें हैं। रोड पर रिक्शा मिल जाते हैं।

श्रावस्ती

श्रावस्ती उत्तर प्रदेश के वलरामपुर वहराइच रोड पर स्थित है। सड़क मार्ग से अयोध्या से १०६ कि० मी० है—'अयोध्या से

गोंडा ५ कि० मी०—बलरामपुर ४२ कि० मी०—श्रावस्ती १७ कि० मी०। रेलमार्ग--उत्तर-पूर्वी रेलवे के गोंडा गोरखपुर लाईन के बलराम पुर स्टेशन से बहराइच जाने वाली सड़क के किनारे पर है। एक छोटी सड़क श्रावस्ती के खण्डहर जो 'समेर-महेर' नाम से बिखरे पड़े हैं जाती है। श्रावस्ती में तीसरे तीर्थंकर भगवान् सम्भवनाथ के गर्भ जन्म, तप, और केवल ज्ञान कल्याणक तथा प्रथम समवसरण यही हुआ। कुछ लोगों का विश्वास है कि चन्द्र प्रभु का भी जन्मस्थान था। श्वेताम्बर आगमों के अनुसार भगवान महावीर के कई चतुर-मास भी यहां हुए थे। प्राचीन काल में यहाँ पर अनेक जैन मन्दिर एवं स्तूप बने हुए थे। भगवान सम्भवनाथ का एक विशाल मन्दिर रत्ननिर्मित था। इस सुन्दर जिन भवन को सुलतान अलाउद्दीन ने बहराइच की विजय के समय तोड़ दिया।

५२ जनपदों में एक कौशल देश भी था जिसकी राजधानी श्रावस्ती थी। भगवान महावीर से पहले जिन छह महानगरियों की चर्चा प्राचीन साहित्य में मिलती है, उनमें श्रावस्ती का भी नाम है। भगवान महावीर के समय में प्रसेनजित यहां का राजा था। भगवान महावीर की दीक्षा लेने से प्राय: आठ मास पूर्व भयंकर बाढ़ से श्रावस्ती को बहुत क्षति पहुँची। यह बाढ़ कुरुण और उत्कुरुण नामक दो मुनियों के शाप का परिणाम थी। किन्तु कुछ समय बाद यह नगरी पुन: धनधान्य से परिपूर्ण हो गयी। इस नगर में ऐसे सेठ भी थे, जिनके भवनों पर स्वर्णमण्डित शिखर थे और उनपर छप्पन ध्वजाएँ फहराती थी। जो इस बात की प्रतीक थी कि उस सेठ के पास इतने करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ हैं। वास्तव में अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण श्रावस्ती अत्यन्त समृद्ध नगरी थी। इसका व्यापा-रिक सम्बन्ध सुदूर देशों में था।

श्रावस्ती की स्वतन्त्रता और समृद्धि १२-१३वीं शताब्दी तक ही सुरक्षित रही। और उसकी अन्तिम सफल प्रयत्न जैन नरेश सुहलदेव

ने किया, कनिंघम तथा स्मिथ ने इसका समर्थन किया है। महमूद गजनवी ने अपने भानजे सालार गाजी को अवध--विजय के लिए भेजा। सालार कूटनीतिज्ञ था, उसने अनेक हिन्दू नरेशों को फूट डाल कर अथवा गायों को आगे करके पराजित किया। किन्तु वहराइच के समीप कौडियाला के मैदान में दृढ़ संकल्पी जैन नरेश सुहलदेव से सन् १०३४ में युद्ध में सालार और उसके सैनिक मारे गये। किन्तु इस घटना के कुछ समय पश्चात् किसी दैवी विपत्ति के कारण श्रावस्ती का पतन हो गया। उसके वाद अलाउद्दीन खिलजी ने यहां के मन्दिरों, विहारों, स्तूपों और मूतियों का वुरी तरह विनाश किया और श्रावस्ती 'सहेट-महेट' खण्डहरों के रूप में परिवर्तित हो गयी।

पुरातत्त्व—भारत सरकार की ओर से यहाँ सन् १८६३ में पुरातत्ववेता जनरल कंघिम, वेनेट, होय, फागल, दयाराम साहनी, मार्शल आदि की देखरेख में कई वार खुदाई हुई, जिसके फलस्वरूप ई० पूर्व चौथी शताव्दी से लेकर १२वीं शताव्दी के अन्त तक की सामग्री प्राप्त हुई। एक ताम्र-पत्र के अनुसार सहेट जेतवन (वौद्ध विहार) तथा महेट प्राचीन श्रावस्ती है। महेट के पश्चिम में जैन अवशेष प्रचुर मात्रा में मिले हैं। यहीं पर भगवान सम्भवनाथ का जीर्ण-शीर्ण मन्दिर है जो अव सोमनाथ मन्दिर कहलाता है। इसके नीचे प्राचीन जैन मन्दिर के अवशेष हैं, गुम्वद सावुत है किन्तु दो तरफ की दीवारें गिर चुकी हैं। लगता है मन्दिर तीन कटनियों पर वना था, खुदाई के समय वहुत सी जैन मूर्तियाँ मिली थी। मन्दिर के उत्तर-पश्चिमी कमरे में भगवान ऋभदेव की एक भव्य मूर्ति मिली थी। पुरातत्व विभाग के अनुसार भी यह एक जैन मन्दिर है। सोमनाथ भगवान् सम्भवनाथ का अपभ्रंश ज्ञात होता है। कनिंघम आदि पुरातत्ववेत्ताओं की मान्यता है कि इस मन्दिर के आस पास

१८ जैन मन्दिर थे। इन अवशेषों पर पेड़ और झाड़ियां उग आई हैं।

वर्तमान जैन मन्दिर—सड़क के किनारे शिखरवद्ध नवीन दिगम्बर जैन मन्दिर सन् १९६६ का निर्मित है। मूलनायक भगवान् सम्भवनाथ की भव्य प्रतिमा पौने चार फुट श्वेत पाषाण की विराजमान है। इसके अतिरिक्त ३ और धातु प्रतिमाएँ तथा भगवान् के चरण युगल हैं। यहीं सामने जैन धर्मशाला है। सहेट—भाग बौद्ध तीर्थ रहा है। महात्मा बुद्ध ने यहां कई चातुर्मास किये थे, उनके निवास हेतु सेठ सुदत्त ने विहार का तथा सम्राट अशोक ने एक स्तूप का निर्माण कराया था। यहाँ बोद्धों के तीन नवीन मन्दिर हैं।

वाराणसी (काशी)

काशी मध्यवर्ती जनपद था और चारों ओर मार्ग जाते थे, उत्तर की ओर श्रावस्ती दक्षिण की ओर कौशल, पूर्व में मगध और पश्चिम में वत्स थे। केन्द्र के होने के कारण अन्य वड़े-वड़े नगरों के साथ जल और स्थल के द्वारा सम्बन्ध था। व्यापारिक केन्द्र होने के कारण इसकी गणना भारत की समृद्ध नगरियों में की जाती थी। कानपुर एवं अयोध्या से अनेक रेलें वाराणसी अथवा मुगलसराय जाती हैं। मुगलसराय से वाराणसी १६ कि० मी० है, टैक्सी-बसें चौबीसों घंटे मिलती हैं।—श्री दि० जैन धर्मशाला मैदागिन चौराहा पर तथा श्री दि० जैन धर्मशाला भेलुपुर मन्दिर के पास हैं।

जैन—सूत्रों में वाराणसी (काशी) के इतिहास का विचित्र विवरण मिलता है कि प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने वाराणसी की स्थापना की थी। तीर्थ क्षेत्र के रूप में इसकी प्रसिद्धि सातवें

तीर्थङ्कर भगवान सुपार्श्वनाथ के काल में हो गई थी। जब यहाँ उनके गर्भ, जन्म, तप और केवलज्ञान कल्याणक मनाये गये। उस समय काशी के नरेश महाराज सुप्रतिष्ठ थे। पृथ्वी उनकी महारानी थी। ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी के दिन सुपार्श्वकुमार का जन्म उनके गर्भ से हुआ—इसके पश्चात् तेईसवें तीर्थकर श्री पार्श्वनाथ के गर्भ, जन्म और दीक्षा कल्याणक का श्रेय भी पुण्य भूमि व.राणसी को है। उस समय महाराजा अश्वसेन वाराणसी के राजा थे तथा वामादेवी उनकी महारानी थी। पौष कृष्णा ११ के दिन भगवान का जन्म हुआ। पार्श्वकुमार जब किशोर थे तभी कुशस्थल (कन्नौज) के महाराज रविकीर्ति का एक दूत आया और निवेदन किया कि यमुना के तट पर एक शक्तिशाली यवन नरेश का राज्य है उसने महाराज से उनकी सुन्दरी कन्या माँगी थी। महाराज रविकीर्ति ने जब अपनी कन्या देने से इन्कार कर दिया तो यवन ने कुशस्थल पर बड़े वेग से आक्रमण कर दिया है। कुशस्थल नरेश आपसे सैनिक सहायता की प्रार्थना करते हैं। पिता की आज्ञा से पार्श्वकुमार सेना लेकर कुशस्थल पहुँचे। रविकीर्ति ने उनका प्रेम पूर्वक स्वागत किया. दोनों ओर की सेनाओं में भीषण युद्ध हुआ। पार्श्वकुमार ने यवनराज को बन्दी बना लिया।—एक दिन क्रीड़ा के लिए कुमार नगर से बाहर गये, वहाँ उन्होंने एक वृद्ध तापस को देखा जो पंचाग्नि तप कर रहा था। वह महीपाल नगर का राजा था, अपनी रानी के वियोग से वह तापस बन गया था उसके ७०० तापस शिष्य थे। पार्श्वकुमार नमस्कार किये बिना उसके पास खड़े हो गये। तापस ने बुझती हुई अग्नि में लकड़ी डालने के लिए एक बड़ा लक्कड़ उठाकर कुल्हाड़ी से काटने के लिए वह ज्यों ही तैयार हुआ कि अवधिज्ञान से भगवान पार्श्वनाथ ने जानकर उसे रोका 'इसे मत फाड़ो, इसमें सांप है।' उसने लकड़ी काट ही डाली। लकड़ी में बैठे हुए साँप-साँपिनी दोनों के दो टुकड़े हो गये। कुमार ने उस सर्प-युगल को णमोकार मन्त्र

सुनाया। मन्त्र सुनकर अपनी शुभ भावनाओं के कारण मरकर धरणेन्द्र और पद्मावती बने। तापस कमठ का घोर तिरस्कार और अपमान हुआ तथा मरकर संवर नाम का ज्योतिषी देव हुआ।— पार्श्वकुमार जब तीस वर्ष के हुए तो जातिस्मरण ज्ञान हो गया। तत्काल लौकान्तिक देवों ने भगवान के वैराग्य की अनुमोदना की। भगवान ने दीक्षा ग्रहण करके घोर तप करते हुए वे भीमाटवी (अहिच्छत्र) में पहुँचे और कायोत्सर्ग की अवस्था धारण कर ली। तभी कमठ का जीव सँवर नाम का असुर आकाशमार्ग से जा रहा था कि अकस्मात् उसका विमान रुक गया। क्रोधित होकर उसने अपनी सामर्थ्य के अनुसार पार्श्वनाथ को घोर कष्ट देने लगा। अवधि ज्ञान से यह उपसर्ग जानकर नगा कुमार देवों का इन्द्र धरणेन्द्र अपनी इन्द्राणी सहित भगवान के पास आया। धरणेन्द्र ने भगवान के ऊपर फणा-मण्डप तान लिया। इस प्रकार घन-घोर वर्षा का उपसर्ग निवारण हुआ। भगवान आत्म-ध्यान में विचरण करते हुए निरंतर शुक्ल-ध्यान में आगे बढ़ रहे थे। सारे उपसर्ग स्वतः समाप्त हो गये। देवों और इन्द्रों के आसन कम्पित हुए और उन्हें ज्ञात हुआ कि भगवान पार्श्वनाथ को केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई। और 'अहिच्छत्र' धन्य हो गया। इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने समवशरण की रचना की। भगवान ने लोक-कल्याणकारी उपदेश दिया। संवर असुर ने जिनेन्द्रदेव के चरणों में नमस्कार कर अपने अपराधों की क्षमा-याचना की। वहाँ से विहार करते हुए वे वाराणसी पधारे। वहाँ महाराज अश्वसेन और महारानी वामा देवी ने दीक्षा ग्रहण की। अन्त में भगवान सौ वर्ष की आयु में पर्वतराज सम्मेद शिखर से निर्वाण प्राप्त हुए।

वाराणसी नगर में प्राचीन काल में अनेक धार्मिक और ऐतिहासिक घटनाएँ घटित हुई है। जैन पुराण-साहित्य में सर्वप्रथम इस नगर का उल्लेख राजकुमारी सुलोचना के प्रसंग में आया है। काशी

नरेश अकंपन ने अपनी पुत्री सुलोचना का स्वयंवर किया। राज-कुमारी के सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर भारत के वहुत से नरेश और राजकुमार वाराणसी आये। उसमें भारत के प्रथम चक्रवर्ती सम्राट भरत के ज्येष्ठ पुत्र युवराज अर्ककिर्ति, महाराज भरत के प्रधान से-नापति और हस्तिनापुर के राजकुमार तथा वाहुवली स्वामी के पौत्र जयकुमार जैसे विख्यात पुरुष भी सम्मिलित हुए थे। भाग्य लक्ष्मी राजकुमार जयकुमार के ऊपर प्रसन्न हो उठी। राजकुमारी ने वरमाला जयकुमार के गले में डाल दी। कुछ हताश और ईर्ष्यालु राजकुमारों ने कुमार अर्ककिर्ति को भड़का दिया। जयकुमार ने अन्याय की इस चुनौती को स्वीकार किया। उन्होंने काशी के विस्तृत मैदान में युवराज अर्ककिर्ति और उनके साथी राजकुमारों को परा-जित कर न्याय और नैतिकता को धूमिल होने से वचा लिया—एक अन्य पौराणिक उल्लेख के अनुसार भगवान् मल्लिनाथ के तीर्थ में यहां नौवाँ चक्रवर्ती इक्ष्वाकु वंशी पद्म हुआ। उसने सम्पूर्ण भरत क्षेत्र को जीतकर काशी को राजधानी वनाया।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना स्वामी समन्तभद्र की है। मुनि समन्तभद्र घोर तपस्वी थे और प्रकाण्ड विद्वान् भी। किन्तु अशुभो-दय से इन्हें भस्मक रोग हो गया। पौष्टिक भोजन से ही यह रोग शान्त होता है। अतः वे गुरु की आज्ञा से वहां से चल दिये। उस समय वह मणुवकहल्ली (मैसूर से ६४ कि० मी० दूर) में विराजमान थे। वहाँ से चलकर दिगम्वर अवस्था में कांची में पहुंचे। फिर भस्म रमाकर लाम्वुश में पहुंचे। वहां से वौद्धभिक्षु का वेश वनाकर पुण्ड्र (वंगाल), उण्ड्र (उड़ीसा) में घूमे। तदनन्तर परिव्राजक का वाना धारण करके देशपुर (मन्दसौर) जा पहुँचे। फिर श्वेतवस्त्रधारी योगी वनकर वाराणसी आये-किन्तु यथेष्ट पौष्टिक आहार की व्यवस्था नहीं वन सकी। उस समय वाराणसी के नरेश शिवकोटि थे। सम्भवतः उसके भीमलिंग शिवालय में,

जाकर राजा को आशीर्वाद दिया। राजा ने अपनी शिवभक्ति, मन्दिर का निर्माण और भीमलिंग मन्दिर में प्रतिदिन बाहर खंडुक परिमाण तण्डुलान्न विनियोग करने का हाल उनसे निवेदन किया। समन्तभद्र सुनकर बोले – 'मैं तुम्हारे इस नौवेद्य शिवापर्ण करुँगा' यह कहकर उन्होंने मन्दिर बन्द कर लिया और सम्पूर्ण भोजन समाप्त कर दिया। इतना विपुल भोजन समाप्त देखकर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। दूसरे दिन कुछ भोजन बचने पर राजा का सन्देह बढ़ गया। इस प्रकार प्रतिदिनभोजन बचने लगा और राजा का सन्देह उसी मात्रा में बढ़ता गया। पांचवें दिन मन्दिर को सैनिकों से घिरवाकर मन्दिर को राजा ने खोलने की आज्ञा दी। समन्तभद्र ने उपसर्ग समझकर चतुर्विध आहार का त्याग कर दिया और तीर्थंकरों की स्तुति करना प्रारम्भ कर दिया। इस स्तुति-पाठ का नाम 'स्वयम्भू स्तोत्र' है। जब वे आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभु स्वामी की स्तुति कर रहे थे तो उन्होंने भीमलिंग को ओर देखा तो उन्हें वहाँ किसी दिव्य शक्ति के प्रताप से चन्द्रलांछन युक्त अर्हन्त भगवान का एक जाज्वल्य-मान स्वर्णमय विशाल बिम्ब विभूति सहित प्रकट होता हुआ दिखाई दिया उन्होंने द्वार खोल दिया और स्तुति में लीन हो गये। राजा ने यह आश्चर्य देखा। और स्वामी समन्तभद्र ने, राजा शिवकोटि सहित पुनः जैन मुनि की दीक्षा लेली।

भदैनी घाट जैन मंदिर—भदैनी घाट भगवान् सुपार्श्वनाथ का जन्मस्थान माना जाता है। यह तीर्थ स्थान गंगा तट पर अवस्थित है। वेदी में भगवान सुपार्श्वनाथ की श्वेत पाषाण की| सं० १९१३ में प्रतिष्ठित पद्मासन प्रतिमा १५ इंच अवगाहना की विराजमान है। गर्भगृह के बाहर के कमरे में एक खाली वेदी है तथा एक आले में चरण बने हैं।—घाट दक्षिण की ओर दो घाट छोड़कर बाबा छेदी लाल का घाट है। पूर्वजों के अनुसार इस घाट के निर्माण से पहले यहां भगवान सुपार्श्वनाथ के चरण-चिन्ह स्थापित थे। गंगा में बाढ़

आने के पश्चात् पानी में जाकर चरण-चिन्ह की पूजा किया करते थे। वावा छेदो लाल ने इस जगह घाट वनवा कर मन्दिर का निर्माण कराया और वि० सं० १६५२ में उनकी प्रतिष्ठा करायी। इसी मन्दिर में प्राचीन चरण या उनकी प्रतिकृति प्रतिष्ठित हैं। गर्भगृह में दो वेदियां तीन दरवाली हैं। मुख्य वेदी में मूलनायक भगवान् सुपार्श्वनाथ की कृष्ण वर्ण पद्मासन डेढ फुट अवगाहना की भव्य प्रतिमा है। इसके अतिरिक्त ८ पाषाण की तथा ५ धातु की प्रतिमाएँ विराजमान हैं। दूसरी वेदी में मुख्य प्रतिमा भगवान् सुपार्श्वनाथ २० इंच अवगाहना की कृष्ण वर्ण कायोत्सर्गासन में स्थिति है। तथा ८ पाषाण प्रतिमाएँ और हैं। स्याद्वाद महाविद्यालय शिक्षा सँस्था यहीं है।

भेलूपुर जैन मन्दिर—मान्यता है कि भगवान् पार्श्वनाथ का यह जन्म स्थान है। उनके जन्मस्थान पर दो मन्दिर वने हुए हैं। प्रवेश करते ही सामने जो मन्दिर है वह दिगम्वर और श्वेताम्वर समाज का सम्मिलित मन्दिर है तथा इनकी वेदियों पर दोनों सम्प्रदायों की प्रतिमाएँ विराजमान हैं और दोनों ही सम्प्रदाय वाले अपनी अपनी मान्यतानुसार पूजा-प्रक्षाल करते हैं। मुख्य वेदी में दिगम्वरी चार प्रतिमाएँ हैं। एक प्रतिमा कृष्ण वर्ण, पद्मासन १५ इंच अवगाहना वाली है, लेख और चिन्ह नहीं है और गुप्तकाल की प्रतीत होती है।—दूसरी प्रतिमा श्वेत पाषाण की पद्मासन ११ इंच अवगाहना की है इसपर भी लाँछन या लेख नहीं है, प्राचीन है।—तीसरी प्रतिमा भगवान् पार्श्वनाथ की है। यह पद्मासन मुद्रा में १५ इंच ऊंची श्वेत पाषाण की है। सिर पर सर्प-फण है सं० १५६८ की है—एक प्रतिमा पद्मावती माता की है। इसी वेदी में श्वेताम्वर सम्प्रदाय की ८ पाषाण की और २ धातु की प्रतिमाएं हैं। वेदी के पीछे वायें आले में २४ प्रतिमाएं हैं, सं० ११५३ का लेख है।—एक दूसरे आले

में श्वेताम्बर सम्प्रदाय की दो धातु और एक पाषाण-प्रतिमा है तथा एक चरण-युगल विराजमान है।

उक्त मन्दिर के वगल में दायीं ओर दिगम्बर जैन मन्दिर है। इस मन्दिर में ३ वेदियां हैं। मुख्य वेदी में मूलनायक प्रतिमा भगवान् पार्श्वनाथ की है। यह श्वेतवर्ण पाषाण की पद्मासन में १५ इंच अवगाहना में है। लेख १६६४ का है। इस वेदी में २२ पाषाण की और ४ धातु प्रतिमाएं विराजमान हैं। वि० सं० १०२८ वाली प्रतिमा भगवान् चन्द्रप्रभु की श्वेतवर्ण की पद्मासन ११ इंच की है। दायीं ओर की वेदी में मुख्य प्रतिमा भगवान् पार्श्वनाथ की है। यह कृष्ण वर्ण पद्मासन और २ फुट १० इंच अवगाहना की है। इस वेदी में कुल १७ प्रतिमाएं हैं जिनमें ६ पाषाण की और ८ धातु की हैं।—वायी वेदो में मूल नायक चन्द्रप्रभु भगवान् की श्वेत पाषाण की पद्मासन प्रतिमा है, १५ इंच ऊँची सं० १६६० की है। चार शिलाफलक में उकेरी चौवीसी मूर्तियाँ हैं।—उक्त मन्दिरों के कम्पा-उण्ड के वाहर नवीन दिगम्बर जैन मन्दिर है, जो सेठ खड्गसेन उदयराज का वनवाया हुआ है। इस मन्दिर और मूर्तियों की प्रतिष्ठा सं० १६२५ में हुई थी। यहाँ को तीन वेदियों में तीर्थंकर प्रतिमाएं विराजमान हैं। इनके अतिरिक्त तीन वेदियों में पद्मावती देवी विराजमान है। वायीं ओर के कक्ष में पद्मावती देवी की श्वेत पाषाण की ३ फुट ऊँची मूर्ति है। नीचे अजगर की कुण्डली वनी हुई है। कुण्डली के ऊपर कमलासन, जिसपर देवी बैठी हैं और सिर के ऊपर फण-मण्डप है। पद्मावती माता को इतनी सुन्दर मूर्ति अन्यत्र मिलना कठिन है।

स्थानीय भारत कला भवन—में पुरातत्व सम्वन्धी वहुमूल्य सामग्री संग्रहीत है। यहाँ राजघाट तथा अन्य स्थानों एवं नगरों में खुदाई में जो पुरातत्व सामग्री उपलब्ध हुई थी, वह यहां सुरक्षित

है। इसमें पाषाण एवं धातु की अनेक जैन प्रतिमाएं कुषाण काल से लेकर मध्य काल तक की हैं।

हिन्दू तीर्थ—सात महापुरियों में काशी मुख्य मानी गयी है। यह पुरी शंकर भगवान के त्रिसूल पर वसी है तथा यह नगर शिवजी का नगर कहलाता है। अतः यहाँ शिव और उनके गणों के अनेक मन्दिर हैं। काशी में मरने से मुक्ति प्राप्त होती है। काशी का सम्वन्ध महाराज हरिश्चन्द्र और तुलसी से भी रहा है।

दर्शनीय स्थान—अनेक मनमोहक घाट, श्री विश्वनाथ मन्दिर, दुर्गा मन्दिर, तुलसी मानस मन्दिर, भारत माता मन्दिर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, आदि।

सिंहपुरी (सारनाथ)

वाराणसी से ६ कि० मी० दूर उत्तर में अवस्थित है। भगवान श्रेयान्सनाथ के चार कल्याणकों के कारण यह अत्यन्त प्रागैतिहासिक काल से जैन तीर्थ रहा। श्रेयान्सनाथ के नाम पर ही इस स्थान का नाम 'सारनाथ' पड़ा। इस क्षेत्र पर एक दिगम्वर जैन मन्दिर है। एक वेदी में २ फुट ५ इन्च अवगाहना वाली श्रेयान्सनाथ भगवान की श्यामवर्ण पद्मासन मूलनायक प्रतिमा है। यह प्रतिमा अत्यन्त मनोज्ञ है। प्रतिष्ठा लेख वि० सं० १८८१ का है। मूलनायक प्रतिमा के आगे भगवान श्रेयान्सनाथ की श्वेत वर्ण प्रतिमा है। एक सिंहासन में भगवान पार्श्वनाथ की श्याम वर्ण प्रतिमा विराजमान है—जैन मन्दिर के निकट ही एक स्तूप है। इसकी ऊँचाई १०३ फुट है। मध्य में इसका व्यास ९३ फुट है। इसका वेदी वन्ध अठकोण है और लग-

भग २२०० वर्ष पूर्व इसका निर्माण सम्राट् प्रियदर्शी ने भगवान श्रेयान्सनाथ की जन्म नगरी होने के कारण भगवान की स्मृति में निर्मित कराया होगा। सम्प्रति ने अपने लिए प्रियदर्शी शब्द का ही सर्वत्र प्रयोग किया है, लेकिन कहीं-कहीं पर देवानांप्रिय प्रियदर्शी शब्द भी प्रयुक्त हुआ है। 'देवानां प्रिय' यह जैन परम्परा का शब्द है। यहां धर्मशाला है और फागुन कृष्ण ११ और श्रावण शुक्ला १५ को मेला भरता है।

अन्य दर्शनीय स्थान—मूलगन्ध कुटी विहार, अशोक स्तम्भ, अनेक बौद्ध मन्दिर, संग्रहालय आदि।

चन्द्रपुरी

चन्द्रपुरी (चन्द्रौटी) क्षेत्र सिंहपुरी से १७ कि० मी० है। बस-मोटर द्वारा वाराणसी-गोरखपुर रोड पर वाराणसी से २० कि० मी० है तथा रेल द्वारा २४ कि० मी० पड़ता है। बस गांव के बाहर तक जाती है वहाँ से क्षेत्र थोड़ी दूर गंगा के किनारे अवस्थित है। यह आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभु भगवान का जन्म स्थान है। इस स्थान पर भगवान चन्द्रप्रभु के गर्भ, जन्म, तप और केवल ज्ञान ये चार कल्याणक हुए थे। इसलिए यह प्राचीन तीर्थ क्षेत्र है। सन् १६१३ में बना दिगम्बर जैन मन्दिर साधारण है तथा दूसरे खण्ड में है गर्भगृह की वेदी में पाषाण के सिंहासन पर मूलनायक भगवान चन्द्रप्रभु की श्वेत पाषाण की पौने दो फुट ऊँची प्रतिमा विराजमान है। इसके आगे पीतल के सिंहासन पर भगवान पार्श्वनाथ की ८ इन्च की कृष्ण वर्ण प्रतिमा है। गर्भगृह के द्वार के दोनों ओर यक्ष विजय और अष्टभुजी यक्षिणी ज्वालामालिनी की मूर्तियाँ हैं। इसी प्रकार सामग्री वाली वेदी के

इधर-उधर क्षेत्रपाल तथा दूसरे में चरण विराजमान है। यहाँ चैत्र कृष्ण ५ को मेला भरता है।

काकन्दी

वाराणसी से देवरीया जाना चाहिए, वहाँ से टैक्सी द्वारा देवरीया सलेमपुर मार्ग पर १४ कि० मी० पक्का व १॥ कि० मी० कच्चा मार्ग पर काकन्दी क्षेत्र अवस्थित है। काकन्दी का ही नाम पश्चाद्वर्ती कला में किष्किन्धापुर और वह भी बदलते-बदलते खुखुन्दू हो गया है। काकन्दी में नौवें तीर्थंकर भगवान पुष्पदन्त का रामा माता और सुग्रीव पिता के यहां जन्म हुआ। भगवान के गर्भ, जन्म कल्याणक यहीं हुए तथा दीक्षा कल्याणक इसी नगरी के पुष्पक वन में हुआ था। यह पुष्पक वन किसी काल में कुकुभग्राम कहलाने लगा। भगवान महावीर का समवशरण कई वार आया था। पश्चात् दुर्धर्ष काल प्रवाह में पड़ कर न काकन्दी बची और न कुकुभग्राम, स्थानीय लोग इन्हें देउरा कहते हैं।

यहाँ भग्नावशेषों के तीस टीले हैं, जो मीलों में विखरे पड़े हैं। खुदाई के फलस्वरूप जो पुरातत्व सामग्री उपलब्ध हुई है, उसमें गुप्त-काल की या उसके पूव की हैं। तीर्थंकर प्रतिमाएँ सेवक यक्ष, सिद्धार्थ यक्ष, चैत्यवृक्ष और स्तूपों के भग्न भाग मिले हैं! टीला नम्बर ११ में ८९ फुट का चोकोर फर्श मिला, जिसमें फूलदार ईंटें लगी हुई हैं। कनिंघम ने इसे जैन मन्दिर वताया है। अन्य कुछ टीलों में हिन्दू मूर्तियां भी मिली हैं जो वहुत आधुनिक प्रतीत होती हैं। निश्चय ही यह स्थान अनेक शताब्दियों तक जैन संस्कृति का केन्द्र रहा है। अतः यहां विपुल परिमाण में जैन पुरातत्व मिला है।

यदि सब टीलों की गहराई तक खुदाई की जाये तो कला संस्कृति और इतिहास के अनेक रहस्यों पर प्रकाश पड़ सकेगा।

जैन मन्दिर—खुखुन्दू कस्बे के एक किनारे पर भगवान पुष्पदन्त के जन्म स्थान पर दिगम्बर जैन मन्दिर बना हुआ है। मूलनायक भगवान नेमीनाथ की २ फुट ३ इन्च की कृष्ण पाषाण की पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। श्वेत पाषाण की पुष्पदन्त भगवान की ११ इन्च की प्रतिमा सं० १५४८ की एवं धातु की एक चौबीसी सं० १५५६ की है। भूगर्भ से ८ इन्च की देवी मूर्ति प्राप्त हुई थी जो यहाँ रखी हुई है। बाहर एक छतरी में सन् १९५१ के विराजित पाषाण चरण हैं। काकन्दी के कई प्रत्यक्षदर्शियों के अनुसार यहां भूगर्भ से सवा तीन फुट आकार की भगवान नेमीनाथ की कलापूर्ण और सुन्दर प्रतिमा निकली थी और वह मूलनायक के रूप में वेदी पर विराजमान थी, प्रतिमा का कान कुछ खण्डित था। कुछ वर्ष पहले खण्डित मानकर प्रतिमा को घाघरा नदी में प्रवाहित कर दिया। इस प्रकार गुप्तकाल अथवा उससे भी प्राचीनकाल की एक कलापूर्ण प्रतिमा से समाज वंचित हो गया है।

कुकुम ग्राम

इस स्थान को आजकल 'कहाऊं' कहते हैं। काकन्दी से १६ कि० मी० है। मार्ग कच्चा है मगर बस एवं जीप जा सकती है। यहां भगवान पुष्पदंत के तप और ज्ञान कल्याणक हुए थे। इसलिए अति प्राचीन काल में ही यहाँ जैन मन्दिर, मानस्तम्भ और स्तूपों का निर्माण होने लगा था। श्रावस्ती आदि निकटवर्ती तीर्थों की तरह
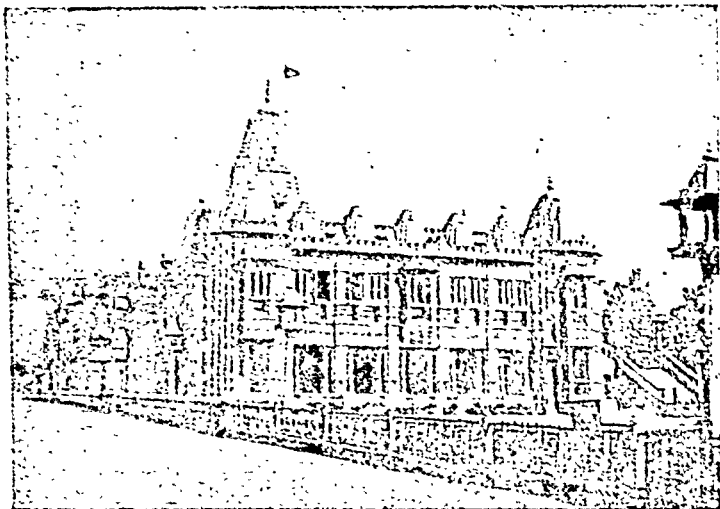
जैन मन्दिर वल गच्छीया कलकत्ता

सम्मेद शिखर पर डोली का दृश्य
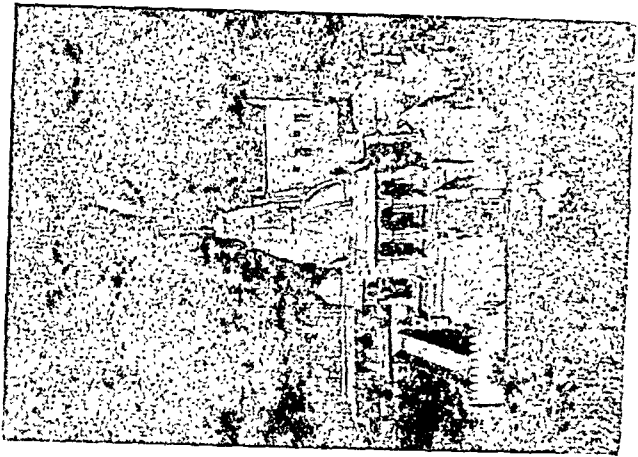
जल मन्दिर शिखर जी
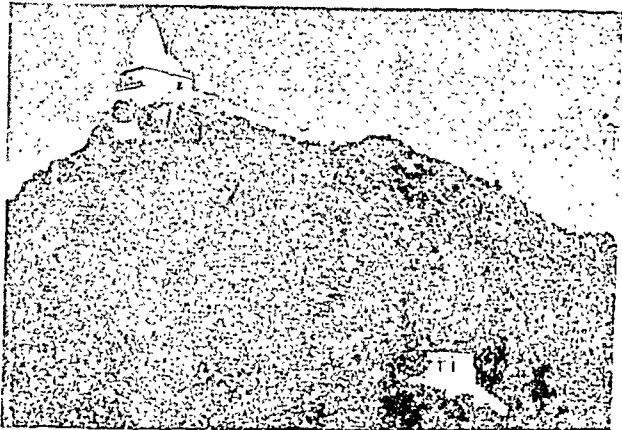
पार्श्वनाथ टोंक सम्भेद शिखर

अलाउद्दीन खिलजी के सिपहसालार मलिक हव्वास ने इसका भी विनाश कर दिया। इन भग्नावशेषों पर एक छोटे से गांव का निर्माण हो गया। अवशेष काफी बड़े क्षेत्र में बिखरे पड़े हैं। एक छत रहित टूटे-फूटे कमरे में एक ५ फुटी सिलेटी वर्ण की खण्डित प्रतिमा अवस्थित है। इस कमरे के बाहर एक भग्न चबूतरे पर एक सिलेटी वर्ण की चार फुट की खड्गासन मूर्ति रखी है। इतनी घिस चुकी है कि इसका मुख तक पता नहीं चलता।

इन मूर्तियों से उत्तर दिशा में गांव की ओर प्राचीन मानस्तम्भ मिलता है। इसके चारों ओर प्राचीन भग्नावशेष बिखरे पड़े हैं। मानस्तम्भ सदा मन्दिर के सामने होता है सो अवश्यमेव यह भग्नावशेष भगवान पुष्पदन्त के प्राचीन जैन मन्दिर के हैं। मानस्तम्भ भूरे पाषाण का २४ फुट ऊंचा ई० सन् ४६० का है। स्तम्भ में नीचे के भाग में सवा दो फुट अवगाहना की पार्श्वनाथ प्रतिमा है तथा स्तम्भ के शीर्ष पर पाँच तीर्थंकर प्रतिमाएं हैं। इसका निर्माण ई० सन् ४६० में सम्राट स्कन्द गुप्त काल में हुआ था।

पावा (नवीन)

कुछ इतिहासकारों के अनुसार सठि-यांव गाँव को पावा मानते हैं। यह देवरीया से कसिया (कुशीनारा) होते हुए ५६ कि० मी० है। यहाँ एक छोटा सा गांव टीलों पर बसा हुआ है। चारों ओर टीले और खण्डहर दिखाई पड़ते हैं। अभी तक यहां कोई प्राचीन जैन मूर्ति या मन्दिर नहीं निकला है।

जैन दृष्टि में विहार प्रदेश

श्रमण संस्कृतिक का केन्द्र विहार प्रदेश जहां से चौवीस तीर्थंकरों में से वाईस तीर्थंकरों ने निर्वाण प्राप्त किया, छह तीर्थंकरों का जन्म देने का सौभाग्य प्राप्त हुग्रा। भगवान् शीतल नाथ का जन्म भीद्दलपुर में, भगवान् वासुपूज्य का चम्पा, भगवान् मल्लिनाथ ग्रौर नमिनाथ ने मिथिलापुरी में जन्म लिये। भगवान् मुनि सुव्रतनाथ की जन्मभूमि राजगृह तथा वैशाली का कुण्डग्राम भगवान् महावीर के जन्म से पवित्र हुग्रा था। विहार के जैन तीर्थ वज्जिविदेह जनपद, ग्रंग जनपद, मगध जनपद भंगी जनपद में ग्रवस्थित थे। प्राचीन भारत के इतिहास में शिशुनाग वंश से लेकर गुप्त वंश तकके सभी प्रभावशाली सम्राट इसी प्रदेश में हुए ग्रौर उन्होंने यहीं रहकर सारे भारत पर शासन किया। इसी प्रदेश में सर्वप्रथम विदेह वैशाली, कपिलवस्तु कुशीनारा ग्रौर पावा में जनतन्त्र की स्थापना करके उसका सफल परिक्षण किया।

गया

गया हिन्दुग्रों का प्रधान तीर्थ-स्थान है जहाँ सहस्त्रस हिन्दू सम्पूर्ण भारत से प्रतिवर्ष विशेष कर पितृपक्ष में पिड्दान करने के हेतु ग्राते हैं। यहाँ ग्रनेक हिन्दू-मन्दिर, फल्गू नदी तथा पवित्र पर्वतों पर हैं। यहां घंटाघर से थोड़ी दूर पर एक विशाल जैन मन्दिर एवं धर्मशाला हैं।—गया से १२ कि० मी० पर वौद्ध गया है जो वौद्ध संसार के पवित्रतम् स्थानों में से एक माना जाता है। यहां एक

छोटा सा जैन मन्दिर है। तथा अन्य बौद्ध मन्दिर हैं, मुख्य मन्दिर तिव्वत मन्दिर, चाईना मन्दिर विड़ला मन्दिर, नौलखा थाई मन्दिर जापान मन्दिर देखने योग्य हैं :

भद्रिकापुर-[भोदल गांव]

कुलुहा पहाड़ विहार प्रान्त के हजारीवाग जिले में चतरा तहसील में है। यहां पहुंचने के लिए ग्राण्ड ट्रंक रोडपर डोभी से या चतरा से सड़क है। चतरा के लिए हजारीवाग से ग्राण्ड ट्रंक रोड पर स्थित चोपारन से सड़कें हैं इनके अतिरिक्त गया से सेरघाटी हण्टरगंज होकर मार्ग सीधा है। गया से डोभी ३२ कि०मी० डोभी से हण्टरगंज १५ कि० मी०, हण्टरगंज से घंघरी ८ कि० मी० है। यहां तक सड़क पक्की है। घंगरी से दन्तार गाँव कच्ची सड़क से ८ कि० मी० है। दन्तार गांव में जैन धर्मशाला है। घंघरी से यहां तक के लिए रिक्शे मिलते हैं। पक्की सड़क पर बसें मिलती हैं।—भद्दल पुर (भद्रिकापुरी) कहाँ था, इसके सम्वन्ध में इतिहासकारों का काफी मतभेद है। कुछ लोग विदिशा (मध्य प्रदेश) के निकट उदयगिरि को शीतल नाथ भगवान् की जन्म-भूमि मानते हैं। इस मान्यता के क्या स्रोत अथवा आधार हैं, स्पष्ट नहीं हो पाया। दूसरा मत भोंदल (विहार) के पक्ष में है। भद्रिकनगर का संकेत किसी जैन पुराण या कथाग्रन्थ में नहीं मिलता है।

इस शताव्दी में सर विलियम हण्टर, डा० स्टेन आदि इतिहास कारों ने कुलहा पहाड़ तथा उसके आस पास निरीक्षण और शोध करके यह सिद्ध किया कि कुलहा पर्वत जैन तीर्थ है, तथा उसका निकटवर्ती भोदल गांव (भद्धिल ग्राम) ही शीतलनाथ तीर्थंकर की

जन्मभूमि है। यहाँ प्राचीनता के चिन्ह तथा प्रचुर परिणाम में जैन सामग्री बिखरी हुई पड़ी है।

भद्रिकापुरी अथवा भद्दलपुर में दसवें तीर्थंकर शीतलनाथ के गर्भ, जन्म तथा कुलुहा पहाड़ पर दीक्षा और केवल ज्ञान कल्याणक हुए थे। अतः यह कल्याणक क्षेत्र है। पिता दृढरथ और माता सुनन्दा के गर्भ से माघ कृष्ण द्वादशी के दिन पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में उत्पन्न हुए। ये इक्ष्वाकुवंशी थे। जब यह यौवन अवस्था को प्राप्त हुए तो इनका विवाह हो गया, और इनका राज्य-भिषेक करके उनके पिता ने दीक्षा धारण कर ली। एक समय वे वन-विहार के लिए गये, उन्हें कुछ प्राकृतिक दृश्य देखकर वैराग्य हो गया। अपने पुत्र का राजतिलक करके शुकप्रभा नामक पालकी में बैठकर चल दिये। देवों, इन्द्रों और प्रजा का अपार-समूह साथ में था। सबने सहेतुक वन में भगवान् का दीक्षा समारोह उत्साह के साथ मनाया। भगवान् छद्मस्थ दशा में तीन वर्ष रहे, विहार करते हुए वे पुनः सहेतुक वन में पधारे और दो दिन का उपवास करके बेल वृक्ष के नीचे ध्यान लगाकर बैठ गये, वहीं उन्हें केवल ज्ञान रूपी रत्न प्राप्त हो गया।

कुलुहा पहाड़ एवं कोलगिरि

कुलुहा पहाड़, सघन वृक्षों और हरियाली से आच्छादित समुद्री सतह से १५९५ फुट ऊंचा है, ऊपर जाने के दो मार्ग हैं।—पश्चिम की ओर से हटवरिया होकर अथवा पूर्व की ओर से दन्तार गाँव से घाटी में होकर इसी पर्वत पर भगवान् शीतलनाथ के दीक्षा और केवल ज्ञान कल्याणक मनाये गये थे। दन्तार गाँव से डेढ़ कि० मी० चलने पर पहाड़ की चढ़ाई शुरू हो जाती है, यह चढ़ाई लगभग तीन

कि० मी० पड़ती है। और पगडन्डी बनी हुई है। ऊपर जाकर कुछ दूर शिला के नीचे एक देवी की खण्डित मूर्ति रखी है, मस्तक के ऊपर खण्डित चक्र बना हुआ है जिससे यह मूर्ति प्रथम तीर्थंकर ऋषभ देव की यक्षिणी चक्रेश्वरी देवी की है—४०० फुट ऊपर चढ़ने पर पहाड़ी पे ईंटों का एक ध्वस्त प्राकार और दक्षिणी द्वार मिलता है यह प्रकार ५३ ऐकड़ में फैला हुआ है, प्राकार में बुर्जियों और कंगूरों के चिन्ह भी मिलते हैं। और इनसे प्रतीत होता है कि यह दुर्ग रहा होगा।—कुछ आगे चलकर बायीं ओर एक विशाल पद्य सरोवर ३०० गज लम्बा चौड़ा और ३० फुट गहरा है, एक किंवदन्ती प्रचिलत है कि आद्य शंकराचार्य के काल में अनेक जैन स्मारकों और मूर्तियों को इस सरोवर में फेंक दिया था।—पुरातत्व वेत्ताओं को सरोवर में सहस्त्रकुट चैत्यालय का एक खण्डित भाग, जिसपर ढाई-ढाई इंच की ५० जैन प्रतिमाएं बनी थी तथा एक ८ इंची प्रतिमा मिली थी। दायीं ओर कुछ ऊंचाई पर पार्श्वनाथ दि० मन्दिर है। मन्दिर छोटा है तथा शिखरबन्द है, वेदी के स्थान पर दीवार में ही भगवान पार्श्वनाथ की सलेटी वर्ण की २२ इंची पद्मासन प्रतिमा प्लास्टर से जड़ी हुई है। रचना-शैली से यह ईसा की २-३ शताब्दी की प्रतीत होती है। यह मूर्ति सामने सरोवर से मिली थी।

मन्दिर के ८० गज उत्तर-पूर्व में एक चौरस चट्टान है जिसे मढवा मढई' कहते हैं। इस चट्टान के ऊपर चारों ओर आठ छेद हैं तथा एक छेद मध्य में है। मध्य में हवनकुण्ड जैसा गड्ढा है। यहां एक तीन पंक्तियों का शिलालेख, जो घिस गया है, रखा है, उसमें संवत् १३३ स्पष्ट पढ़ने में आता है—उपर्युक्त प्रकोष्ठ दुर्ग का पर्यवेक्षण प्रकोष्ठ रहा होगा। कुछ विद्वानों की धारणा है कि यह जैन मन्दिर से सम्बंधित रहा होगा। इस धारणा का समर्थन कोलेश्वरी देवी के मन्दिर के निकट बनी पाण्डुक शिला, जिसे कोटि शिला भी कहते है। प्रस्तुत शिला से नीचे उतरकर फिर कुछ चढ़ाई

आती है। कुछ दूर चलने पर खुली हुई गुफा की खड़ी दीवार में तीर्थंकरों की १० पद्मासन मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। आकार १० इंच है और नीचे लाँछन भी बना हुआ है।—इस दीवार से आगे एक मोड़ आता है, जिसके बगल की दीवार पर ५ पद्मासन १-१ फुट की और ५ खड्गासन सवा दो फुट अवगाहना की प्राचीन मूर्तियां हैं। इस गुहा मन्दिर से निकल कर पगडण्डी से इस पहाड़ी पर कुछ चढ़कर सामने ही ३५-४० फुट ऊँची एक विशाल गोलाकार सपाट चिकनी शिला दिखाई देती है। स्थानीय लोग इसे आकाशलोचन कहते हैं। चढ़ने के लिए शिला में एक ओर बने हुए २-३ इंची कुछ गड्ढों को छोड़कर अन्य कोई साधन नहीं है। शिला के शीर्ष भाग पर अति प्राचीन आठ इंच के चरण चिन्ह बने हुए हैं। सर विलियम हण्डर एवं डा० स्टेन आदि इतिहासकारों के अनुसार भगवान् शीतलनाथ इसी स्थान से मोक्ष पधारे हैं। इस गुफा के सामने पाण्डुक शिला है। यहां से उतर कर मार्ग सीधा कोलेश्वरी देवी मन्दिर को गया है।

सरोवर के तट पर कोलेश्वरी देवी का मन्दिर है। मूर्ति सवा दो फुट ऊँची चतुर्भुजी है। यह मन्दिर मूलतः जैन मन्दिर था डा० एम० ए० स्टेन ने स्पष्ट लिखा हैं "यह दिगम्बर जैन तीर्थ स्थान है तथा कोलेश्वरी देवी की नवीन मूर्ति के अतिरिक्त पर्वत पर प्राप्त प्रत्येक पाषाण-रचना तथा पर्वत में निर्मित प्रतिमाएँ दिगम्बर जैन तीर्थंकरों की हैं।"—देवी के मन्दिर से कुछ आगे जाकर एक छोटी सी प्राकृतिक गुफा में पार्श्वनाथ भगवान् की श्यामवर्ण पद्मासन २ फुट अवगाहना की मूर्ति रखी है। मूर्ति के सिर पर नौ फणावली सुशोभित है और अनुमानतः १२वी शताब्दी की है और किसी प्राचीन जैन मन्दिर की है। हिन्दू लोग इसपर सिन्दूर का लेप करते हैं तथा इसे 'द्वारपाल' के नाम से प्रसिद्ध कर रखा है।—यहाँ से सरोवर के किनारे होते हुए वापस लौटते हैं।

श्री सम्मेद शिखर

श्री सम्मेद शिखर सम्पूर्ण तीर्थ क्षेत्रों में सर्वप्रमुख तीर्थक्षेत्र है। इस प्रकार इसे तीर्थराज कहा जाता है। ऐसी अनुश्रुति है कि श्री सम्मेद शिखर और अयोध्या ये दो तीर्थ अनादि निधन शाश्वत हैं। अयोध्या में सभी तीर्थंकरों का जन्म होता है और सम्मेदशिखर में सभी तीर्थंकरों का निर्वाण होता है। किन्तु हुण्डावसर्पिणी काल-दोष से इस शाश्वत नियम में व्यतिक्रम हो गया। अयोध्या में केवल पाँच तीर्थंकरों का जन्म हुआ और सम्मेद-शिखर से केवल बीस तीर्थंकरों ने निर्वाण लाभ किया। किन्तु इनके अतिरिक्त भी अन्य मुनियों ने यहीं पर तपश्चरण करके मुक्ति प्राप्त की। दिगम्बर परम्परा में इस प्रकार की मान्यता प्रचलित है कि तीर्थंकर भगवान् जिस स्थान से मुक्त होते हैं, उस स्थान पर सौधर्मेन्द्र, चिन्ह स्वरूप स्वस्तिक बना देते थे इस सम्मेद रूपी वृक्ष पर भव्य जन कष्ट उठाकर भी पुण्योदय से उन प्रतिमाओं के दर्शन करते थे।

भट्टारक ज्ञानकीर्ति ने 'यशोधर चरित' की रचना संवत् १६५९ में की थी।—चम्पापुर नगरी के निकटवर्ती अकबरपुर में महाराज मानसिंह, जिन्होंने शत्रुओं का विनाश किया, और बड़े-बड़े राजाओं से अपने चरणों में मस्तक झुकवाया है, उनके महामन्त्री का नाम नान है। उन्होंने सम्मेदशिखर के ऊपर वहाँ से सिद्धगति को प्राप्त करने वाले बीस तीर्थंकरों के मन्दिरों (टोकों) का निर्माण कराया। सौधर्मेन्द्र द्वारा निर्मित मन्दिरों का वर्णन आया है, लगता है कि ये मन्दिर नहीं, बल्कि टोकों के रूप में थे और इन्हीं में मूर्ति विराजमान होंगी। पश्चात असुरक्षा आदि कारणों से इन मूर्तियों के स्थान पर चरण विराजमान कर दिये होंगे और जीर्ण होने पर नान ने इनके स्थान पर बीस टोंके बनवा दी होंगी। प्राचीन काल से ही भक्तजन

सिद्ध क्षेत्र की पुण्य-प्रदायिनी की यात्रा के लिए जाते रहे हैं। इन यात्राओं के विवरण पुराण ग्रन्थों, कथाकोषों और विविध भाषाओं में निवद्ध यात्रा-विवरण-काव्यों तथा ग्रन्थ-प्रशस्तियों में मिलते हैं। निर्वाण क्षेत्र-पूजा में कविवर द्यानतराय जी ने सत्य ही लिखा है "एक बार वन्दे जो कोई। ताहि नरक-पशुगति नहीं होई॥" इसकी भाव सहित वन्दना-यात्रा करने से कोटि-कोटि जन्मों से संचित कर्मों का नाश हो जाता है।

श्री सम्मेद शिखर की यात्रा

ईसरी—पारसनाथ रेलवे स्टेशन के सामने लगभग एक फर्लांग पर दो दि० जैन धर्मशालाएँ हैं। एक तेरा-पन्थी और दूसरी वीस-पन्थी। तेरा-पन्थी धर्मशाला के मुख्य द्वार के अन्दर दायीं ओर एक शिखरबन्द मन्दिर है। सभा मण्डप के भीतर गर्भगृह में मूलनायक प्रतिमा भगवान चन्द्रप्रभु की श्वेत पाषाण की आसन सहित अव-गाहना लगभग तीन फुट की पद्मासन है। इसके अतिरिक्त दो पाषाण तथा आठ धातु प्रतिमाएँ हैं। मुख्य वेदी की परिक्रमा के पीछे एक अन्य वेदी है, जिसमें भगवान महावीर की रक्ताभवर्ण पद्मासन प्रतिमा के अतिरिक्त तीन श्वेत पाषाण प्रतिमाएँ हैं।

वीस-पन्थी कोठी में विशाल कम्पाउण्ड में धर्मशाला और मन्दिर है, गर्भगृह में श्याम वर्ण पाषाण की मूलनायक पार्श्वनाथ की तथा तीन पाषाण की और धातु की तीन प्रतिमाएँ विराजमान है। इस मन्दिर के वायीं ओर एक अन्य मन्दिर में जयसेन मुनिराज की आदमकद मूर्ति है तथा एक छतरी में उनके चरण हैं। दोनों कोठियों के वीच में उदासीनाश्रम है। इसकी स्थापना पूज्य क्षुल्लक गणेश

प्रसाद जी वर्णी ने की थी। सरस्वती भवन में २००० ग्रन्थ हैं, संस्था के प्रांगण के मध्य में लगभग २५ फुट ऊँचा वर्णी जी का समाधि स्तूप है। इसकी रचना शैली अत्यन्त मनोज्ञ है। स्तूप के आगे पार्श्वनाथ जिनालय है। गर्भगृह में मूलनायक भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा है। इसके अतिरिक्त ३ पाषाण की तथा १० धातु की प्रतिमाएँ हैं। मन्दिर की बगल में मुमुक्षु महिलाश्रम है तथा जिनालया में साढ़े सात फुट अवगाहना की कृष्ण वर्ण में भगवान पार्श्वनाथ की मूलनायक तथा ७ पाषाण की अन्य प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

मधुवन—ईसरी से मधुवन २२ कि० मी० है। यहाँ से गिरीडीह रोड पर १६ कि० मी० चलकर मधुवन के लिए सड़क मुड़ती है और ६ कि० मी० चलकर मधुवन अवस्थित हैं गिरीडीह से मधुवन २५ कि० मी० है। गिरीडीह तथा ईसरी से टैक्सी और बस मिलती हैं। मन्दिर की मिन्नी बस मधुवन से भी आती जाती रहती है। मधुवन पहुँच कर सबसे पहले दिगम्बर जैन तेरापन्थी कोठी मिलती है। फिर श्वेताम्बर कोठी और सबसे अन्त में दि० जैन बीस पन्थी कोठी है।

तेरापन्थी कोठी—में पांच आहाते और पाँच ही धर्मशाला हैं। प्रथम आहाते में अतिथि सत्कार कक्ष, धर्मशाला, भोजनालय, बस-कार व टैक्सी आदि ठहरने का स्थान है—अहाता नं० दो में धर्मशाला तथा विशाल एवं अति भव्य चन्द्रप्रभु जिनालय है। गर्भगृह में संग-मरमर की उन्नत वेदी में चन्द्रप्रभु भगवान की पद्मासन श्वेत वर्ण लगभग पाँच फुट अवगाहना की भव्य प्रतिमा विराजमान है। मन्दिर के चारों ओर से मार्ग है और मनोरम पुष्पवाटिका लगी है। तीनों ओर के द्वार सांची के द्वारों के अनुरूप बनाये गये हैं। इस जिनालय से चलकर और सुल्तानसिंह प्रवेश द्वार से निकल कर कटक मन्दिर मिलता है, इसमें चार वेदियां हैं।—तीसरे आहाते में मानस्तम्भ

वना हुआ है, यह ५१ फुट ऊँचा श्वेत पाषाण का है। इसी चौक में दायीं ओर मुख्य मन्दिर है इसके द्वार में क्षेत्र कार्यालय एवं वर्तन भंडार है। अन्दर १३ वेदियाँ हैं। ये सभी शिखरवन्द स्वतन्त्र जिनालय हैं। जिनालय क्रमशः निम्न प्रकार हैं :—

(१) श्री शान्तिनाथ जिनालय—वेदी में सवा फुटी पीतल की शान्तिनाथ भगवान की मूलनायक प्रतिमा के अतिरिक्त एक पाषाण तथा चार धातु प्रतिमाएँ हैं। पीतल के एक-एक फुट ऊँचे दो मानस्तम्भ हैं।

(२) श्री समवसरण मन्दिर—तीन उन्नत कटनियों पर गन्धकुटी है। उसमें चारों ओर चार प्रतिमाएँ भगवान पार्श्वनाथ की विराजमान हैं।

(३) श्री नेमिनाथ चैत्यालय—मूलनायक भगवान नेमिनाथ की कृष्ण वर्ण तीन फुटी पाषाण प्रतिमा है। दो श्वेत पाषाण की खड्गासन, दो पद्मासन तथा एक सिद्ध प्रतिमा है।

(४) श्री पुष्पदंत जिनालय—मुख्य मन्दिर के रूप में माना जाता है। भगवान पुष्पदंत की संवत् १८७८ में प्रतिष्ठत श्वेत वर्ण पद्मासन सवा तीन फुट अवगाहना वाली मूलनायक प्रतिमा है। इसके अतिरिक्त १० पीतल की, एक सिद्ध भगवान की प्रतिमाएँ हैं। संगमरमर के फलक पर २४ चरण हैं।

(५) श्री अजितनाथ जिनालय—मुख्य मन्दिर के बायीं ओर है। यहाँ अजितनाथ भगवान की श्वेत वर्ण, पद्मासन दो फुटी प्रतिमा विराजमान है तथा ६ पद्मासन १ खड्गासन, २ पद्मावती, २ सिद्ध भगवान की प्रतिमाएँ हैं।

(६) पार्श्वनाथ मन्दिर—बीच की वेदी में चिन्तामणि पार्श्वनाथ की कृष्ण वर्ण पद्मासन लगभग छह फुट अवगाहना वाली अति मनोज्ञ प्रतिमा है। बायीं ओर की वेदी में १४ और दायीं की वेदिका में ग्यारह मूर्तियाँ विराजमान हैं।

(७) नन्दीश्वर जिनालय—इस मन्दिर से चलकर प्रवेश मण्डप है। फिर अठकोण मण्डप में चार चबूतरों पर बावन जिनालय और बीच में पंचमेरु की रचना की गयी हैं। चारों दिशाओं में १३-१३ चैत्यालय हैं जिनमें ८ रतिकर अंजनगिरि और दधिमुख हैं। पाँच मेरु मन्दिरों में ८० प्रतिमाएँ हैं।

(८) श्री शान्तिनाथ जिनालय—मुख्य मन्दिर के दायीं ओर है। मूलनायक भगवान शान्तिनाथ की प्रतिमा पद्मासन श्वेत वर्ण तीन फुट अवगाहना की है। इसके अतिरिक्त पाषाण और धातु की १३ प्रतिमाएँ तथा २ पीतल के मानस्तम्भ हैं।

(९) श्री नेमिनाथ जिनालय—भगवान नेमिनाथ की कृष्ण वर्ण पद्मासन तीन फुटी प्रतिमा के अतिरिक्त दो पाषाण में चौबीसी, ६ पाषाण प्रतिमाएँ और एक पीतल की सिद्ध प्रतिमा हैं।

(१०) सरस्वती भवन है।

(११) श्री चन्द्रप्रभु जिनालय—समवसरण में एक फुटी प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

(१२) श्री महावीर चौबीसी जिनालय—भगवान महावीर की साढ़े सात फुट की खड्गासन कृष्ण वर्ण प्रतिमा एक पाषाण पीठ पर विराजमान है। दीवार के सहारे तीन दिशाओं में २४ तीर्थंकरों की खड्गासन समान अवगाहना वाली प्रतिमाएँ हैं। उनके आगे पीतल की तथा ५ श्वेत पाषाण की प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

(१३) सहस्त्रकुट चैत्यालय—लगभग चार फुट ऊँचा मनोज्ञ एवं दर्शनीय है।

बीसपन्थी कोठे में तीन अहाते हैं और धर्मशालाओं में १६० कमरों से अधिक ही हैं। इसके मुख्य मन्दिर में आठ शिखरवन्द जिनालय इस प्रकार हैं—

(१) एक गर्भगृह में दो वेदियाँ हैं। पहली वेदी में भगवान् पार्श्वनाथ की मुख्य प्रतिमा के अतिरिक्त ८ पाषाण प्रतिमाएं हैं।

दूसरी वेदी में भगवान् अजितनाथ की मुख्य प्रतिमा के अतिरिक्त ६ धातु-पाषाण प्रतिमाएं हैं। (२) पार्श्वनाथ जिनालय, इसमें पार्श्वनाथ भगवान् की प्रतिमा के अतिरिक्त पीतल की एक चौवीसी है। (३) पुष्प दन्त जिनालय, इसमें मूलनायक के अतिरिक्त दो खड्गासन, तीन पद्मासन प्रतिमाएं और अष्ट मंगल द्रव्य है। (४) पार्श्वनाथ जिनालय, इसमें कृष्ण वर्ण की पार्श्वनाथ प्रतिमा के अतिरिक्त दो पाषाण की, ४८ पीतल की प्रतिमाएं तथा पीतल के दो नन्दीश्वर जिनालय हैं। (५) इसमें पांच पाषाण प्रतिमाएं हैं। १ मेरु और १ चरण-युगल हैं। (६) विशाल सरस्वती भवन है। (७) चाँदी की वेदी में ऊपर की कटनी में पीतल की तीन, नीचे पीतल की चार प्रतिमाएं और एक चौबीसी है। (८) आदिनाथ की कृष्ण वर्ण प्रतिमा तथा दो श्वेतवर्ण पाषाण प्रतिमाएं विराजमान हैं।

चौबीसी एवं समवसरण की रचना—कोठी के सामने बाहुवली टेकड़ी पर एक विशाल जिनालय का निर्माण हुआ है। यहाँ चौवीस टोंकों में २४ तीर्थंकर मूर्तियां विराजमान हैं। प्रांगण के बीच में गाहुवली स्वामी की श्वेत खड्गासन २५ फुट अवगाहना की प्रतिमा है इसके दायें और बायें गौतम स्वामी और पार्श्वनाथ भगवान के जिनालय हैं तथा सामने ५१ फुट ऊंचा भव्य मानस्तम्भ है।—बाहुवली टेकरी के साथ ही समवसरण की भव्य रचना है। जो भारत में अपने प्रकार की एक ही है। इसके आगे सड़क के दूसरी ओर मुनियों का समधि स्थान बनाया गया है।

पर्वत यात्रा के मार्ग—यात्रा के लिए ऊपर जाने के दो मार्ग हैं, एक मधुवन की ओर से, जाते समय ६ मील ऊपर, टोंकों की वन्दना ६ मील, वापसी ७ मील। इस प्रकार से कुल मिलाकर १८ मील की यात्रा पड़ती है। दूसरा मार्ग नीमियाघाट की ओर से है, इधर से भी १८ मील पड़ता है। किन्तु अधिकांश यात्री मधुवन की ओर से ही

यात्रा करते हैं। इधर से यात्रा करने में कई सुविधाऐं हैं। सबसे बड़ी सुविधा तो यह है इधर अन्य अनेक यात्रियों का साथ मिल जाता है।

सम्मेद शिखर के वातावरण में पवित्रता और शुचिता की भावना बनी हुई रहती है। १८ मील की लम्बी यात्रा किशोर, युवक, वृद्ध स्त्री, पुरुष सभी कहीं कंकरीली—पथरीली राह से तीर्थंकरो का जय-घोष करते, स्तुति—विनती पढ़ते आनन्दपूर्वक कर लेते हैं। सांस फुल जाती हैं किन्तु मन में क्षण-भर को भी खिन्नता के भाव नहीं आते, वल्कि अपनी धार्मिक श्रद्धा, उल्लास, उत्साह और प्रकृति की अविन्व सुषमा में विभोर होकर यात्री यात्रा पूरी करके जब वापस अपने कक्ष पर लौटता है तो उसे अनुभव होता है कि भगवान की भक्ति में अद्भुत शक्ति है, वरना इतनी लम्बी यात्रा कैसे सम्भव थी।

यात्रा के लिए रात्रि के एक-दो बजे उठकर शौच और स्नान से निवृत होकर दो-तीन बजे चल देना चाहिए, दोनों कोठियों में गर्म पानी की व्यवस्था रहती है। यात्रा के लिए सर्दी का मौसम ही अधिक उपयुक्त रहता है। अधिक वस्त्र धारण करने से यात्रा में कष्ट होता है और लौटते समय धूप अधिक हो जाती है।—छोटे बच्चों के लिए भील (गोदीवाला) साथ ले लेना चाहिए।—वृद्ध और अशक्त पुरुष और महिलाएँ डोली कर सकती हैं। अन्य लोगों को लाठी ले लेनी चाहिए। इससे पर्वत पर चढ़ने-उतरने में बड़ी सहायता मिलती है। धर्मशाला में इन सब चीजों की व्यवस्था रहती है।

धर्मशाला ले चलकर लगभग १ फर्लांग से ही पर्वत की चढ़ाई प्रारम्भ हो जाती है। यहाँ से लगभग ३ कि० मी० पर गन्धर्व नाला पड़ता है। यहीं पर बीस पन्थी कोठी की तरफ से एक विश्रामगृह है। लौटते समय यात्रियों के लिए यहां जलपान का प्रबन्ध होता है। जिन्हें मल-मूत्रादि की बाधा हो उन्हें यहीं निवृत हो लेना चाहिए।

यहां से कुछ दूर आगे जाने पर एक रास्ता सीधा नाले की ओर और दूसरा पार्श्वनाथ टोंक की ओर जाता है। यहाँ सूचना पट्ट लगा हुआ है। वायीं ओर जाने पर आगे डेढ़ मील पर सीता नाला मिलता है। यहाँ पूजन-सामग्री धो लेना चाहिए और अभिषेक के लिए जल ले लेना चाहिए। यहां से दो मील की कठिन चढ़ाई है। इसमें एक मील तक पक्की सीढ़ियाँ हैं जो दिगम्बर समाज की ओर से वनायी गई हैं।

पर्वत पर सर्व प्रथम गौतम स्वामी की टोंक मिलतो है। यहाँ एक विश्रामगृह है। यहाँ से वन्दना करना शुरू करना चाहिए—

(१) गौतम स्वामी की टोंक एक शिला पर ३२ चरण अंकित हैं तथा वेदी के बाहर श्याम वर्ण के चरण हैं। (२) कुन्थुनाथ का ज्ञानधर कूट,—(३) नेमिनाथ का मित्रवर कूट,—(४) अरहनाथ का नाटक कूट,—(५) मल्लिनाथ का सम्बल कूट,—(६) श्रेयान्सनाथ का संकुल कूट,—(७) पुष्पदंत का सुप्रभु कूट,—(८) पदम प्रभु का मोहन कूट,—(९) मुनिसुव्रतनाथ का निर्जर कूट,—(१०) चन्द्र प्रभु का ललित कूट यह टोंक थोड़ी दूरी पर पड़ती है तथा सबसे ऊँचाई पर स्थित है, थोड़ी सी थकान यात्रीगनों को होनी स्वभाविक है, मगर टोंक पर पहुँचते ही आनन्द विभोर हो जाते हैं, (११) आदिनाथ टोंक,—(१२) शीतल नाथ का विद्युत कूट,—(१३) अनन्तनाथ का स्वयम्भू कूट,—(१४) सम्भवनाथ का धवलदत्त कूट,—(१५) वासुपुज्य टोंक,—(१६) अभिनन्दन नाथ का आनन्द कूट, जल मन्दिर, जल के वीच एक विशाल मन्दिर वना हुआ है। पहले इस मन्दिर में नौ दिगम्बर वीतराग प्रतिमाएं विराजमान थी और दोनों सम्प्रदाय यहाँ दर्शन पूजन करते थे। किन्तु कुछ समय पूर्व श्वेताम्वर समाज ने इस मन्दिर पर अपना अधिकार कर के दि० प्रतिमाओं को हटा दिया,—(१७) धर्मनाथ की सुदत्तवर कूट,—(१८) सुमतिनाथ का अविचल कूट,—(१९) शान्तिनाथ की शान्ति

प्रभुकूट,—(२०) महावीर स्वामी टोंक,—(२१) सुपार्श्वनाथ की प्रभास कूट,—(२२) विमलनाथ का सुवीर कूट,—(२३) अजितनाथ की सिद्धवर कूट,—(२४) नमिनाथ टोंक,—(२५) पार्श्वनाथ का सुर्वण भद्रकूट, यहां टोंक के स्थान पर जिनालय बना हुआ है।

टोंक न० २ से टोंक न० २५ तक १० इंच तक के पाषाण युगल चरण विराजमान हैं।

इस टोंक से उतर कर एक रास्ता डांक बंगले की ओर को जाता है, इसी मार्ग से जावें आगे जाकर यह रास्ता सीता नाले के पास निकलता है। सीता नाले से गन्धर्व नाला आता है यहाँ पर तेरह-पंथी और बीसपन्थी कोठी की ओर से चाय-नाश्ते की व्यवस्था है। वहाँ से वापस धर्मशाला लौटना चाहिए।—पहाड़ की परिक्रमा में लगभग ४८ कि० मी० की यात्रा पड़ती है—पहाड़ का सारा वन विहार प्रांत सरकार के अधीन है। इस सुरक्षित वन का क्षेत्रफल लगभग १६८६ एकड़ है।—मधुवन तलहटी से डाक बंगला (पार्श्व-नाथ की टोंक के नीचे) तक कार एवं जीप योग्य रोड बन गया है, टोल टैक्स देने पर गाड़ी ऊपर ले जा सकते हैं। माह सुदी ५ और फागुन सुदी पूर्णिमा को रथ यात्रा होती है। किन्तु यात्रियों के अनु-रोध पर समय-समय रथ-यात्रा निकलती रहती है। पालगंज, मधु-वन से लगभग १५ कि० मी० है, कार योग्य रास्ता है। किले के प्राचीन मन्दिर में भूगर्भ से निकली हुई भगवान महावीर की चतुर्थ काल की मनमोहक प्रतिमा है।

मंदारगिरि

भागलपुर से मन्दारगिरि ४९ कि० मी० है। भागलपुर से मंदार-

गिरि के लिए रेल और बस दोनों आती हैं। बस स्टैण्ड से धर्मशाला दो फर्लांग है। गाँव का नाम बोंसी है। रेलवे स्टेशन का नाम मंदार-हिल है। सम्मेदशिखर से आने वाले यात्रियों को मधुवन से गिरीडीह २२ कि. मी. बस या टैक्सी द्वारा, गिरीडीह से रेल द्वारा वैद्यनाथ धाम ६६ कि. मी। (बीच में मधुपुर स्टेशन पर रेल बदलनी पड़ती है) वैद्यनाथ धाम से बोंसी ७० कि० मी० बस द्वारा यात्रा करनी चाहिए। बोंसी धर्मशाला से मन्दारगिरि पर्वत ३ कि. मी. है। यह छोटी सी पहाड़ी लगभग ७०० फुट ऊँची है। बोंसी में रिक्शा मिलते हैं। धर्मशाला में ही क्षेत्र कार्यालय है।

चम्पापुर क्षेत्र के वर्णन में मंदारगिरि पर भी प्रकाश डलता है। भगवान वासुपुज्य स्वामी एक मास तक योग निरोध करके राजत-मौलि नदी के तट पर अवस्थित मंदार पर्वत के मनोहर उद्यान में पल्यंकासन से भाद्रपद शुक्ला १४ को ६४ मुनियों के साथ मोक्ष पधारे। कुछ इतिहासकारों के अनुसार मंदार में २ कल्याणक हुए दीक्षा तथा केवलज्ञान, अन्य के अनुसार सिर्फ केवलज्ञान कल्याणक हुआ। यह भी अनुश्रुति है कि भगवान वासुपूज्य के एक गणधर श्री-मन्दर को यहीं पर निर्वाण प्राप्त हुआ था। बोंसी में धर्मशाला में ही शिखरबद्ध मन्दिर है, जो बहुत भव्य है। इस मन्दिर में मूलनायक सं० २४६६ की भगवान वासुपूज्य की पद्मासन प्रतिमा मूंगे के वर्ण की, चार फुट अवगाहना वाली है। उसके आगे धातु की एक पद्मासन और एक खड्गासन प्रतिमा है तथा २ चरण-युगल हैं।—क्षेत्र कार्यालय से पर्वत की ओर लगभग एक फर्लांग आगे सेठ तालकचन्द कस्तुरचन्द बारामती वालों का वीर० सं० २४६१ में बनवाया हुआ कृष्ण व श्वेत पाषाण का एक दि० जैन मन्दिर है, जो किसी कारण-वश पूरा नहीं बन सका है, कहते हैं मन्दिर के निर्माण कार्य में उस काल में ८५ हजार रुपया व्यय हुआ था।—आगे चलकर पहाड़ की तलहटी में 'पाप हारिणी' सरोवर है। इस सरोवर को रानी कोना
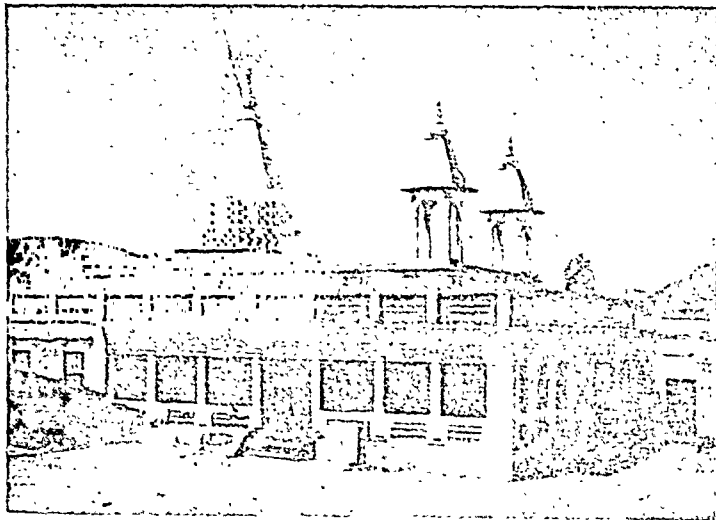
जैन मन्दिर ईशरी
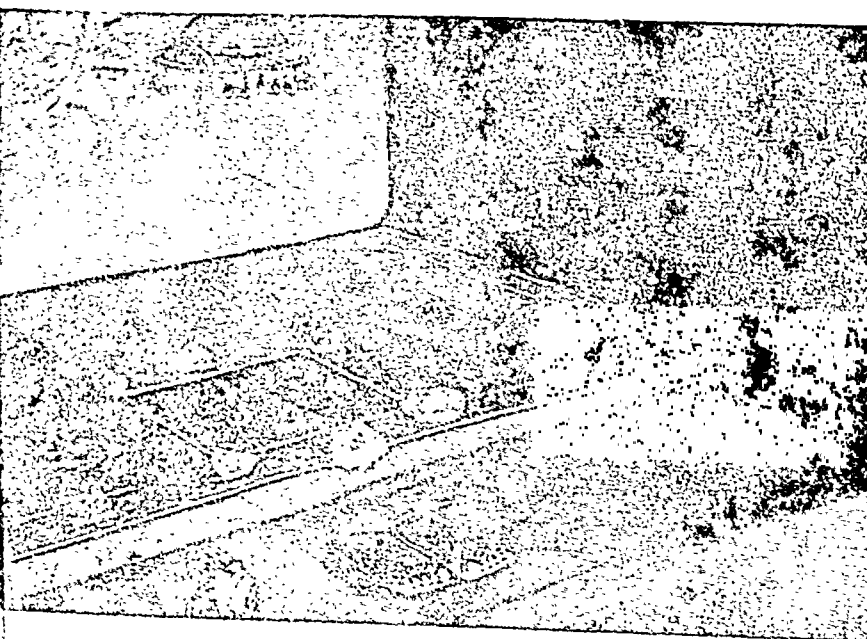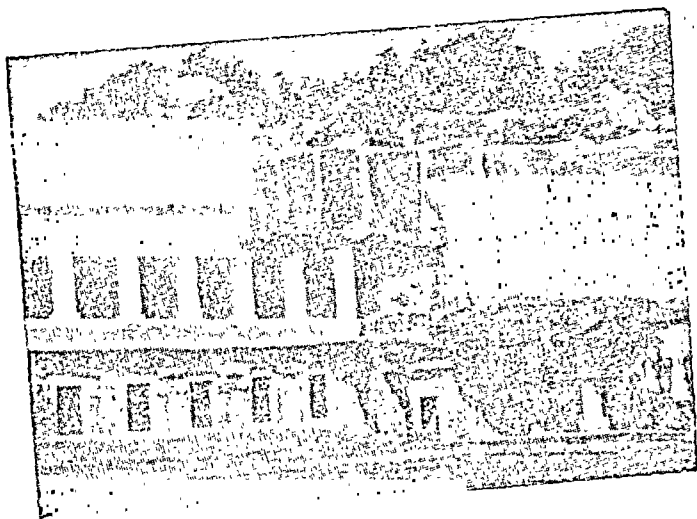
उदयगिरि पर्वत पर रानी गुफा
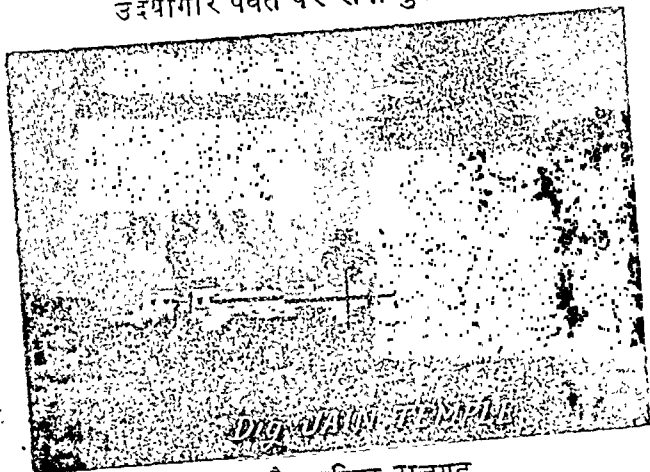
दिगम्बर जैन मन्दिर राजगृह

देवी ने निर्माण कराया था। पहाड़ी के पास ही चीर और जमुनिया नाम की दो छोटी नदियाँ हैं जो कुछ आगे जाकर मिल जाती हैं। सरोवर से आगे बढ़कर पहाड़ी पर कई प्राकृतिक कुण्ड बने हुए हैं। पहाड़ी की चढ़ाई एक मील से कुछ अधिक है। पर्वत को काटकर कुछ सीढ़ियाँ बनायी हुई हैं। पर्वत के शिखर पर दि० जैन मन्दिर हैं। मन्दिर के गर्भगृह द्वार के ऊपर पद्मासन प्रतिमा बनी हुई है, गर्भगृह में वासुपूज्य स्वामी के प्राचीन चरण विराजमान हैं। बड़े मन्दिर के निकट शिखरबन्द छोटा मन्दिर है। इसमें तीन प्राचीन चरण-युगल बने हुए हैं। मन्दिर के द्वार पर जैन प्रतिमा थी, किन्तु वह तोड़ दी गयी। इस मन्दिर से जरा आगे एक शिला के नीचे चरण बने हुए हैं। पहाड़ी के ऊपर तथा नीचे तलहटी में अवशेष बिखरे पड़े हैं। ये अवशेष चोल राजाओं और विशेषतः छत्रसिंह राजा के काल के हैं। पर्वत पर कई स्थानों पर नरसिंह, वामन, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, हिन्दू देवियों की मूर्तियां खुदी हुई हैं।

कुछ हिन्दू लोग इस पर्वत को मन्दराचल मानते हैं। उनकी मान्यता है कि शेषनाग की नेति बनाकर मन्दराचल को रई बनाया गया और उससे समुद्र-मन्थन किया गया, जिससे १४ रत्न निकले।

चम्पा पुरी-नाथ नगर

अंगदेश की राजधानी चम्पा उस युग में काफी विस्तृत थी। पूराणों में ऐसे उल्लेख मिलते हैं, जिनमें चम्पा का विस्तार ४८ कोस बताया गया है। वर्तमान भागलपुर और मुंगेर जिलों को मिलाकर बनता था। मन्दारगिरि तत्कालीन चम्पा का बाहरी भाग था और वह चम्पा में ही सम्मिलित था। भगवान वासुपुज्य वर्तमान तीर्थंकर

परम्परा में बारहवें तीर्थंकर हैं। उनके माता-पिता विजया और वसुपूज्य चम्पा नगर के रानी—राजा थे। इक्ष्वाकुवंश के देदी प्यामान रत्न वासु पूज्य जी का जन्म फाल्गुन शुक्ला चतुर्दशी के दिन हुआ। उनके शरीर की अवगाहना ७० धनुष थी। शरीर का वर्ण मूंगे के समान रक्तवर्ण था। उनकी प्रकृति संवेदनशील थी। जब यौवन अवस्था में प्राप्त हुए, तब उनके माता पिता ने उनसे विवाह करने का प्रस्ताव किया। अनेक राजा अपनी कन्याओं का सम्बन्ध लेकर आये, उन्होंने अत्यन्त विनम्रता किन्तु दृढ़ता से विवाह करने से इन्कार कर दिया। एक दिन वे संसार के स्वरूप के सम्बन्ध में चिन्तन में लीन थे, तभी उन्हें अपने पूर्वजन्म का स्मरण हो आया। उन्हें दुखों से मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा प्रबल हो उठी।—फाल्गुन कृष्णा १४ को मनोहर उद्यान में एक उपवास के साथ दीक्षा ग्रहण की, उनके साथ ६७६ मुमुक्षुयों ने भी दीक्षा ली थी।—मन्दारगिरि पधारे। यहां उन्हें पाटल वृक्ष के नीचे केवल ज्ञान की प्राप्ति हो गई। सभी देव और इन्द्र मन्दारगिरि आये और इस पर्वत से भगवान की दिव्य ध्वनि की पावन गंगा प्रवाहित हुई।—भगवान वासुपुज्य स्वामी एक मास तक योग निरोध करके राजतमौलि नदी के तट पर अवस्थित मंदार—पर्वत से ९४ मुनियों के साथ मोक्ष पधारे।

यहाँ अनेकों धार्मिक और ऐतिहासिक घटनाएँ हुई है, जिसका सांस्कृतिक दृष्टि से विशेष महत्व है।—भगवान वासुपूज्य के समय में द्वारावती में द्वितीय बलभद्र अचल और नारायण द्विपृष्ठ ने अपने शत्रु प्रतिनारायण तारक का संहार करके भरत क्षेत्र के तीन खण्डों पर अधिकार कर लिया, उसके पश्चात वह भगवान के समवसरण में अनेक बार आया था। और मुख्य श्रोता माना गया था तथा अन्तिम अवस्था में बल भद्र अचल ने दीक्षा ली और तप करके मुक्ति प्राप्त की।—रोहिणी का स्वयंवर यहीं रचा गया था—भगवान मुनि सुव्रतनाथ के तीर्थ में हरिषेण चक्रवर्ती हुआ इसने चम्पा की राज-

कुमारी मदनावली से विवाह करके अपनी ९६ हजार रानियों में उसे पट्टमहिषींका पद दिया। सुभद्रासतीके शील की परीक्षा चम्पा में हुई। पाण्डवों की माता कुन्ती जब कुमारी थी, उस समय पाण्डव कुमारी कुन्ती को देखते ही मोहित हो गये। कुन्ती की भी दशा ऐसी ही थी। दोनों ने गन्धर्व-विवाह कर लिया, कुन्ती को गर्भ रह गया। जब बालक उत्पन्न हुआ तो लोक-लाज के कारण कुन्ती ने बच्चे को कम्बल में लपेट कर एकान्त में छोड़ दिया। वही महारथी कर्ण हुआ और अंग देश को जीतकर चम्पा को अपनी राजधानी बनाया। कर्ण की दानवीरता जगत विख्यात है।—भगवान महावीर के काल में चम्पा का राजा दधिवाहन था। वह अधिक प्रभावशाली नहीं था। श्रेणिक बिम्बसार के महासेनापति भद्रिक के कूट नीति और शौर्य ने चम्पा को भीषण पराज्य दी। चम्पा नरेश दधिवाहन मारे गये चम्पा पर मगध का आधिपत्य हो गया।

यहाँ भगवान वासुपूज्य की मान्यता बहुत प्राचीन काल से चली आ रही थी अतः मन्दिर और मूर्तियाँ भी अति प्राचीन काल में विराजमान थी। यहां जयपुर के सरदार संघवी श्रीदत्त और उसकी पत्नी सुरजयी ने ई० पू० ५४१ में भगवान वासुपूज्य का एक मन्दिर बनवाया था। ऐसी अनुश्रुति है कि नाथ नगर में जो दि० जैन मन्दिर है, यह वही पूर्वोक्त मन्दिर है। नाथनगर सड़क से बायीं ओर लगभग एक फर्लांग पर है। इस मन्दिर में पूर्व और दक्षिण की ओर दो ५० फुट के प्राचीन मानस्तम्भ बने हुए हैं। इनमें एक में ऊपर जाने के लिए तथा दूसरे में नीचे जाने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। पहले यहां चारों दिशाओं में मानस्तम्भ थे। अनुमानतः भूकम्प से दो नष्ट हो गये। पूर्व वाले मानस्तम्भ के नीचे से एक सुरंग जाती थी जो कहते हैं २८८ कि० मी० लम्बी थी, कहावत है कि वह सम्मेद शिखर पर चन्द्र प्रभु भगवान की टोंक के पास निकलती थी, कुछ का कहना है कि यह सुरंग मन्दारगिरि तक जाती थी। किन्तु भूकम्प

में जमीन धसक जाने से यह सुरंग वन्द हो गई। इसी स्तम्भ की नीचे वाली कोठरी में संस्कृत तथा अरवी भाषा के प्राचीन लेख हैं। संवत् पढ़ने में नहीं आता, सम्भवतः वह ११२१ है।

नाथनगर मुख्य मन्दिर में वेदी चार मोटे स्तम्भों पर आधारित है। मूलनायक मूर्ति भगवान वासु-पूज्य मूँगा वर्ण की साढ़े तीन फुट अवगाहना की सं० १९०४ की है। तथा ३ धातु प्रतिमाएँ और १ चरण हैं। चारों कोनों पर चार लघु मन्दिर हैं। दक्षिण-पश्चिम में भगवान वासुपूज्य श्वेत पाषाण, पद्मासन में विराजमान हैं। आगे सहस्त्र फणावलि युक्त भगवान पार्श्व नाथ की मूर्ति है जो सं० १७४५ की प्रतिष्ठित हुई है।—पूर्व वेदी में भगवान वासुपूज्य, अवगाहना पौने दो फुट है, १० धातु एवं ३ पाषाण प्रतिमाएँ हैं। उत्तर पूर्व की वेदी में भगवान वासुपूज्य के अतिरिक्त पाषाण तथा सात धातु प्रतिमाएं हैं, जिनमें ३ तो चौबीसी हैं और एक प्रतिमा तीन चौवीसी की है। दक्षिण-पूर्व की वेदी में भगवान वासुपूज्य और १ धातु, तथा १ पाषाण प्रतिमा है।

इस मन्दिर के पीछे एक मन्दिर सं० २००० का और है। इसमें विराजमान प्रतिमाएं पुरातत्व और कला की दृष्टि में अत्यन्त महत्व-पूर्ण हैं। इन मूर्तियों पर कोई लेख नहीं है, लांघन अवश्य है। जन सामान्य में यह धारणा प्रचलित है कि यह मूर्तियां भगवान महावीर के समकालीन अथवा उनसे प्राचीन है (चतुर्थ काल), एक धारणा यह है की यह मूर्तियाँ ईसा पूर्व ५४१ में निर्मित वासुपूज्य स्वामी के मन्दिर की हैं। दूसरी धारणा भी है जो तथ्यों से अधिक निकट लगती है वह यह है कि यह प्रतिमाएं पहले चम्पानाले के मन्दिर में विराज-मान थी जो यहाँ से लगभग ढाई कि० मी० दूर है। यह मन्दिर अत्यन्त प्राचीन था, भूकम्प आने से मन्दिर धाराशायी हो गया। और प्रतिमाएँ यहां विराजमान कर दीं। इन सभी प्रतिमाओं का निर्माण-शैली और भावाभिव्यं जना, इनका शिल्प-विधान और कला-

पक्ष सभी अत्यन्त समृद्ध और प्रभावक हैं। इनका पाषाण खुरदुरा है। पाषाण को देखकर विश्वास होता है कि इनका निर्माण कुशाण काल में हुआ होगा।—इस मन्दिर की बगल में छोटा मन्दिर है। इसमें रक्तवर्ण की वासुपूज्य स्वामी की एक फुट उत्तुंग प्रतिमा विराजमान है। एक शिलाफलक में २४ चरण बने हुए हैं।

क्षेत्र-मन्दिर के सामने एक बीस पंथी मन्दिर है। इस मन्दिर में मूलनायक वासुपूज्य की प्रतिमा श्याम वर्ण में चार फुट अवगाहना की सं० १९४७ की प्रतिष्ठत है। इसके अलावा श्वेत पाषाण की, दो गुलाबी पाषाण की तथा २३ धातु की प्रतिमा हैं। एक प्राचीन चरण चम्पा नाले से लाकर तथा एक नवीन चरण विराजमान हैं। बायीं ओर पद्मावती की मूर्ति हैं।—निकट में कर्णगढ है। अब गढ़ तो नहीं है, केवल एक टीला है। यदि खुदाई की जायें तो यहाँ पुरातत्व सामग्री उपलब्ध हो सकती है। भाद्रपद शुक्ला १४ को वासुपूज्य स्वामी के निर्वाण के उपलक्ष्य में निर्वाणलाडू चढ़ता है।—धर्मशाला सुन्दर है।

भागल पुर

चम्पापुरी से भागलपुर लगभग साढ़े ४ कि० मी० है। भागलपुर शहर में कोतवाली के पास दि० जैन मन्दिर और धर्मशाला है। मन्दिर में मूलनायक भगवान वासुपूज्य की धातु की पद्मासन प्रतिमा है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९२९ में हुई थी। इस मन्दिर में १४ पाषाण की तथा २१ धातु की प्रतिमाएँ है, एक चरण है तथा तीन प्रतिमाएँ चौबीसी की हैं। भगवान पार्श्वनाथ की एक फुट अवगाहना की श्याम वर्ण प्रतिमा बड़ी मनोज्ञ और सातिशय है।

गुणावा जी

गुणावा नवादा जिले के अन्तर्गत नवादा से, नवादा-विहार शरीफ रोड के किनारे ३ कि० मी० तथा पावापुरी से २० कि० मी० है। भगवान् महावीर के मुख्य गणधर गौतम स्वामी को यहां केवल ज्ञान प्राप्ति हुई, निर्वाण होने से पहले दिन भगवान ने यह जानकर कि आज रात्रि में मेरा निर्वाण होगा, गौतम का मेरे प्रति अनेक भवों से स्नेह है, और उसे आज रात्रि के अन्त में केवल ज्ञान होगा, मेरे वियोग में वह दुखी होगा, भगवान ने गौतम से कहा "गौतम दूसरे गांव (गुणावा) में देशवर्मा ब्राह्मण है। उसको तू सम्बोध आ। तेरे कारण उसे ज्ञान प्राप्त होगा।" प्रभु के आदेशनुसार गौतम वहां से चले गये।

इन्द्रंभूति गौतम मगध की राजधानी राजगृह के निकट गोर्वर (गोवर गांव) ग्राम के रहने वाले थे। उनके पिता शाँडिल्य नामक ब्राह्मण थे, उनके स्थण्डिला और केसरी नामक दो पत्नियां थी। स्थीण्डला से इन्द्रभूति और अग्नि भूति हुए। द्वितीय ब्राह्मण पत्नी केसरी के वायुभूति हुआ। तीनों भाइयों ने सम्पूर्ण वेद और वेदाँगों का अध्ययन किया। विद्वान बनने के पश्चात् उन्होंने अपने-अपने गुरुकुल खोल लिये। इन्द्रभूति के पास ५०० शिष्य थे। भगवान महावीर को ऋजुकुला नदी के तट पर केवल ज्ञान प्राप्त हो गया—इन्द्र ने समवशरण की रचना करी—भगवान गन्धकुटी सिंहासन पर विराजमान हो गये, किन्तु उनकी दिव्य ध्वनि नहीं खिरी। यह देखकर सौधर्म इन्द्र ने अपने अवधिज्ञान से विचार किया कि यदि इन्द्रभूति गौतम आ जायें तो भगवान की दिव्य ध्वनि खिरने लगेगी। यह विचार कर इन्द्र ने एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण कर इन्द्रभूति गौतम के गुरुकुल में पहुँचा और एक श्लोक का अर्थ पूछा। जो गौतम

की समझ में नहीं आया। किन्तु अभिमान वश ब्राह्मण रूपी इन्द्र के समक्ष यह बात कह भी नहीं सके। उन्होंने बात छुपाते हुए कहा "मैं तुम्हें क्या बताऊं" चलो तुम्हारे गुरु के समक्ष ही अर्थ बताऊँगा। इन्द्र यही तो चाहता था। इन्द्रभूति गौतम को झट-पट अपने साथ समवसरण में ले आया। समवसरण के निकट पहुँचते ही जैसे ही गौतम ने मानस्तम्भ को देखा कि तत्काल उसके ज्ञानमद स्वयं दूर हो गया और जैसे ही भगवान के दर्शन किये कि तत्काल उनके हृदय में श्रद्धा जाग उठी तथा अपना समस्त परिग्रह त्याग कर वहीं मुनि दीक्षा लेली। मुनि बनते ही गौतम को मनः पर्यय ज्ञान हो गया साथ ही साथ दोनों भाईयों अग्निभूति तथा वायुभूति ने भी सभी शिष्यों सहित दीक्षा लेली। इन्द्रभूति गौतम भगवान के प्रथम गणधर बने तथा इस घटना के होते ही तीर्थंकर महावीर का मौन भंग हुआ और सिंध-गर्जना के समान दिव्य ध्वनि में उपदेश प्रारम्भ हुआ।

दिगम्बर समाज का एक शिखर बन्द मन्दिर नवीन धर्मशाला के मध्य में है। मूलनायक प्रतिमा भगवान कुन्थुनाथ की है जो श्वेतवर्ण में पद्मासन सवा चार फुट अवगाहना की है। इसकी प्रतिष्ठा वीर सं० २४६४ की है। मूलनायक के आगे पांच प्रतिमाएँ श्वेत पाषाण की हैं, जिनमें दो पार्श्वनाथ प्रतिमाएं क्रमशः संवत् १४४८ और १५४८ की हैं। इन प्रतिमाओं के आगे भगवान महावीर की श्वेत वर्ण पद्मासन एक फुट सवा इंच अवगाहना की वीर सं० २४५३ की विराजमान है। इनके अतिरिक्त धातु की चार प्रतिमाएँ हैं।—एक मानस्तम्भ है।—निकट में सुन्दर सरोवर में मन्दिर के अन्दर एक वेदी में गौतम स्वामी के चरण विराजमान हैं तथा दूसरी वेदी में भगवान पार्श्वनाथ की श्याम वर्ण प्रतिमा है। सरोवर में २०० फुट लम्बा पुल बना हुआ है।

पावापुरी

भगवान महावीर निरन्तर सब ओर से भव्य समूह को सम्बोधित कर अपापानगरी एवं पावानगरी पहुँचे और वहाँ के मोहरोद्यान नामक वन में विराजमान हो गये। भगवान ने जान लिया कि अब मेरी आयु क्षीण होने वाली है, अतः अन्तिम देशना देने के लिए समवसरण में गये, और भगवान का अन्तिम उपदेश हुआ जब चर्तुथ-काल में तीन वर्ष साढ़े आठ मास बाकी रहे थे, तब स्वाति नक्षत्र में अमावस्या के दिन प्रातःकाल में पावानगरी के बाहर उन्नत भूमि खण्ड (टीले) पर कमलों से सुशोभित तालाब के बीच में निष्पाप भगवान वर्धमान ने निर्वाण प्राप्त किया। इन्द्र ने नन्दन आदि वनों से लाये हुए गोशीर्ष, चन्दन आदि से चिता चुनी। क्षीरसागर से लाये हुए जल से भगवान को स्नान कराया, दिव्य अंगराग सारे शरीर पर लगाया। तदन्तर इन्द्र ने भगवान का शरीर चिता पर रखा। अग्नि-कुमार ने अपने मुकुट से अग्नि प्रज्वलित की। वायु कुमारों ने आग को पवन दी देवताओं ने चिता में धूप आदि का अर्पण किया। शरीर के जल जाने पर मेघकुमार देवों ने क्षीर समुद्र के जल की वर्षा करके चिता को शान्त किया। भगवान के ऊपर की दो दाढ़े सौ धर्म और ऐशान इन्द्रों ने लीं और नीचे की दोनों दाढ़े चमरेन्द्र और बलीन्द्र ने लीं। अन्य दाँत और हड्डियाँ दूसरों इन्द्रों और देवों ने लीं। और भगवान के शोकातुर श्रावक और श्राविकाओं ने चिता-भस्म ली। जिस स्थान पर चिता जलायी उस स्थान पर देवों ने रत्नमय स्तूप बना दिया। और भगवान के निर्वाण कल्याणक की पूजा की। उस समय देवताओं और मानवों ने अन्धकार पूर्ण रात्रि में जो दीपालोक किया था, उसी की स्मृति में प्रति वर्ष दीपावली मनाई जाती है।

भगवान महावीर की निर्वाण भूमि अब तक बिहार शरीफ से

११ कि.मी. दक्षिण--पूर्व में पावा नगरी मानी जाती थी। किन्तु कुछ पुरातत्व-वेत्ताओं और इतिहासकारों का मत कुशीनारा की निकटवर्ती पावा हो गया। एक अन्य भ्रान्ती के अनुसार, उत्तर प्रदेश में देवरिया जिले के फाजिल नगर-सठिया वाली पावा में हुआ था। अतः जब तक इस पक्ष में ठोस और सर्वसम्मत शास्त्रीय, ऐतिहासिक और पुरातात्विक साक्ष्य प्राप्त ना हो जायें, तब तक शताब्दियों से निर्वाण-क्षेत्र के रूप में मान्य पावापुरी को ही भगवान महावीर की निर्वाण भूमि मानना तर्क संगत और बुद्धिमत्ता पूर्ण है। यहाँ तथा आसपास में पुरातन अवशेष और पुरातत्व सामग्री विपुल मात्रा में मिलती है दि० जैन कार्यालय मन्दिर में विराजमान चार प्रतिमाएं इसी क्षेत्र की हैं। गाँव के मन्दिर के जीर्णोद्धार के समय, खुदाई कराई गई थी, उससे प्राचीन मन्दिर निकला था। उससे लगता है कि वर्तमान मन्दिर किसी प्राचीन मन्दिर के ऊपर है। कुछ वर्षों पूर्व भी इस मन्दिर के आस-पास अनेक प्राचीन मूर्तियाँ मिलती थीं। इन अवशेषों को देखकर अनुमान होता है कि यही वह पावा है, जिसका नाम जैन शास्त्रों में अपापापुरी, मध्यमा पावा अथवा पावापुर मिलता है।

जल मन्दिर—भगवान के निर्वाण स्थान पर विशाल सरोवर था, कहावत है कि सरोवर पहले चौरासी बीघे में फैला हुआ था किन्तु इस समय वह चौथाई मील लम्बा और इतना ही चौड़ा है। सरोवर अत्यन्त प्राचीन प्रतीत होता है। विविध रंगों में खिले हुए कमल—पुष्पों के कारण इस सरोवर की शोभा अद्भुत लगती है। पुष्पों पर सौरभ और रस के लोभी भ्रमर गुंजार तथा मछलियां और सर्प किलोल करते रहते हैं। सरोवर के मध्य में श्वेत संगमरमर से निर्मित जैन जल मन्दिर है। द्वार से मन्दिर तक लाल पाषाण का ६०० फुट लम्बा पुल बना हुआ है। अनुमानतः इस मन्दिर का निर्माण 'नन्दिवर्धन नामक राजा ने करवाया था और कहावत है कि भक्ति-

वश वेदो की नींव सोने की ईंटों से भरी गयी थी। मूल मन्दिर ईंटों का बना हुआ था। कुछ समय पूर्व मन्दिर के जीर्णोद्धार के समय मन्दिर में लगी बड़ी-बड़ी ईंटें प्रकाश में आयीं थी। पुरातत्ववेताओं के मत से यह ईटें दो ढाई हजार वर्ष प्राचीन है। सुन्दरता हेतु इनपर संगमरमर के पाषाण बाद में लगा दिये। मन्दिर में केवल गर्भगृह है और बाहर की ओर उसके चारों ओर बरामदा है। गर्भगृह में तीन वेदियों के मध्य में भगवान् महावीर के चरण विराजमान हैं। बायीं ओर की वेदी में भगवान् के मुख्य गणधर गौतम स्वामी के तथा दायीं ओर की वेदी में सुधर्मा स्वामी के चरण स्थापित हैं। मन्दिर के बाहर चबूतरे के चारों कोनों पर गुमटियों में दादा जी के चरण—१६ सतियों के—११ गणधरों के और चौथी में दिव्य विजय जी (सं० १७५३) के चरण विराजमान हैं।

प्राचीन समवसरण मन्दिर—जल मन्दिर के सामने समवसरण मन्दिर में भगवान् महावीर के प्राचीन चरण विराजमान हैं। वृद्ध जनों से इन चरणों के सम्बन्ध में एक रोचक सुनी कहानी इस प्रकार है। यह चरण, जहां श्वेताम्बर समाज ने नया समवसरण (लगभग १ कि० मी० दूर) बनाया है, वहां प्राचीन कुएँ एवं स्तूप के पास विराजमान थे। गवाले ढोर चराने आते थे। एक दिन किसी शरारती ग्वाले ने चरण उठाकर कुएँ में फेंक दिये। किन्तु चरण पानी में नहीं डूबे, बल्कि पानी पर तैरते रहे। इससे ग्वालों को कौतूहल हुआ और उन्होंने चरणों को कौतूहल वश कई बार निकाल निकाल कर कुएँ में फेंका। मानों उनके लिए यह दैनिक कृत्य हो गया था। विचारोंपरान्त समाज ने वहां से वे चरण उठवाकर यहाँ विराजमान कर दिए। सम्भवतः यह चरण भगवान् के अन्तिम समवसरण के स्थान पर स्थापित किये गये थे।

दिगम्बर जैन मन्दिर—जल मन्दिर से थोड़ी दूर दि० जैन कार्यालय एवं विशाल धर्मशाला है। यहां पर सात दि० जैन मन्दिर का

समूह है, इसमें बड़े सामने वाले मन्दिर की प्रतिष्ठा वि० सं० १९५० में हुई। इसमें भगवान् महावीर की साढ़े तीन फुट अवगाहना की मूलनायक प्रतिमा है। दो पाषाण की तथा आठ धातु की प्रतिमाएँ हैं। दूसरी वेदी भगवान् शान्तिनाथ की है। प्रतिमा का वर्ण श्याम सं० १९५० की अवगाहना ढाई फुट पद्मासन में है। इस वेदी में दो पाष ण की तथा पाँच धातु की प्रतिमाएँ हैं, वायीं ओर आले में एक युगल चरण विराजमान हैं। तीसरी वेदी में मूलनायक भगवान महा-वीर की सात फुट अवगाहना की खड़गासन प्रतिमा विराजमान है, वर्ण मूँगे जैसा है। प्रतिमा वीर सं० २४६५ में प्रतिष्ठि हुई। इस गृह के वायीं ओर भगवान पार्श्वनाथ की वेदी है। मूँगे वर्ण की पद्मासन प्रतिमा वि० सं० १९५० की विराजमान है। इसके अलावा चार श्वेत पाषाण, एक कृष्ण वर्ण और एक धातु प्रतिमा विराजमान है। इस गर्भगृह में वायीं ओर एक दीवार वेदी में एक शिलाफलक में २४ तीर्थंकर प्रतिमाएँ बनी हुई हैं, एक शिलाफलक में पार्श्वनाथ पद्मासन में विराजमान है। इसी गर्भगृह में दायीं ओर दीवार वेदी में दो प्राचीन प्रतिमाएं भगवान पार्श्वनाथ और शान्तिनाथ की विराजमान हैं। यह चारों प्रतिमाएं किसी प्राचीन मन्दिर की थी वाद में वहां से लाकर यहाँ विराजमान कर दिया है।

चार मन्दिर ऊपर के खण्ड में हैं, जीने के वायीं ओर एक कमरे में तीन वेदियाँ बनी हुई हैं। मध्य की वेदी पर भगवान महावीर की श्वेत पाषाण की दो फुट अवगहना की पद्ममासन प्रतिमा है, इसके अतिरिक्त दो पाषाण तथा एक धातु प्रतिमा है। वायीं एवं दायीं ओर की वेदियों में महावीर भगवान की एक-एक फुटी प्रतिमा हैं। मन्दिर के मुख्य द्वार के ऊपर तीन मन्दिर हैं। प्रथम में भगवान महावीर की श्वेत पाषाण की दो फुट ऊंची अन्य दो पाषाण और छह धातु की प्रतिमाएं हैं। मध्य के मन्दिर में पाँच वेदियां हैं—दो दीवार में तथा तीन जमीन पर। दायीं ओर दीवार वेदी में ३ पाषाण की, ४ धातु

की और १ चांदी की मूर्ति है। इससे आगे दीवार के सहारे जमीन पर प्रथम वेदी में २४ चरण चिन्ह विराजमान हैं। मध्य की पर मध्य में भगवान महावीर की मूँगे वर्ण की बायीं ओर चन्द्रप्रभु की श्वेत और दायीं ओर महावीर भगवान की मूंगा वर्ण की प्रतिमा हैं। तीसरी वेदी में भगवान के चरण चिन्ह हैं। दायीं ओर की दीवार वेदी में ४ पाषाण तथा ५ धातु की प्रतिमा हैं। तीसरे मन्दिर में मूलनायक महावीर स्वामी की डेढ़ फुट ऊंची श्वेत पाषाण प्रतिमा है। इसके अतिरिक्त ५ पाषाण तथा ३ धातु की प्रतिमा हैं। दो-दो खण्ड की दो धर्मशालाएं हैं। मेला—भगवान महावीर के निर्वाणोत्सव के अवसर पर कार्तिक कृष्ण १३ से कार्तिक शुक्ला १ तक मेला लगता है। अमावस्या को प्रातः साढ़े तीन बजे कार्यालय से रथ यात्रा जल मन्दिर जाती है, वहां पर पूजन होकर निर्वाण लड्डू चढ़ाया जाता है और इसके पश्चात् रथ यात्रा वापस आकर कार्यालय मन्दिर में निर्वाण लड्डू चढ़ाया जाता है। राजगृही से पावापुरी ३४ कि० मी० कुण्डलपुर से २३ कि० मी० पर स्थित है बसें तथा टैक्सी बराबर उपलब्ध रहती है। मैन रोड से क्षेत्र २ कि० मी० है, रोड पक्का सुन्दर हैं तांगा मिलता है।

कुन्डलपुर

कुण्डलपुर पावापुरी से बिहार शरीफ होकर २५ कि० मी०, राजगृही से १३ कि० मी० तथा नालन्दा साईट से लगभग १ कि० मी० आधुनिक बड़गांव के बाहर अवस्थित हैं। तांगा रिक्शा मिलता है। यहां भगवान महावीर के गर्भ, जन्म और तप कल्याणक हुए थे, इस प्रकार की मान्यता कई शताब्दियों से चली आ रही है। यद्यपि

अब जैन तथा जैनेतर विद्वानों ने बसाढ़ (वैशाली) को एकमत से भगवान महावीर की जन्म भूमि मान लिया है। कुण्डलपुर में एक शिखर वन्द मन्दिर है, जिसमें भगवान महावीर की श्वेत वर्ण की साढ़े चार फुट अवगहना की भव्य पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इस प्रतिमा के अतिरिक्त यहां ६ पाषाण तथा २ धातु प्रतिमाएं हैं। मन्दिर के वाहर एक छतरी में भगवान के चरण विराजमान हैं। मन्दिर के चारों ओर धर्मशाला है। वार्षिक मेला चैत सुदी १२ से १४ तक होता है।

नालन्दा—बौद्ध कालीन विश्वविद्यालय के खण्डहर जो अनेक कालों के हैं यहां मिले हैं देखने योग्य हैं तथा नालन्दा संग्रहालय में भी अनेक सामग्री जो यहाँ की खुदाई से प्राप्त हुई थी रखी है।

राजगृह (राजगीर-पंच पहाड़ी)

पावापुरी से राजगृह, बिहार शरीफ-नालन्दा कुण्डलपुर होकर ३८ कि० मी० है। गया से हसुआ होकर वस द्वारा ६६ कि० मी० है तथा वैशाली से पहलेजा घाट होकर किन्तु पहलेजा घाट पर गंगा का पुल नहीं है वस स्टीमर द्वारा पटना आतो है पटना से रेल या बस द्वारा वख्तयारपुर होकर ९९ कि० मी० है। जैन साहित्य में राजगृह के कई नाम मिलते हैं—जैसे गिरिव्रज, क्षिति प्रतिष्ठ, वसुमती, चणकपुर, ऋषभपुर, कुशाग्रपुर, राजगृह या राजगीर। यहां पांच पर्वत स्थित होने के कारण 'पंच शैल' भी कहते हैं। महाभारत इनके नाम वैभार, वराह, वृषभ, ऋषिगिरि और चैत्यक आये हैं। जैन साहित्य में इन्हें विपुलाचल, रत्नागिरी, उदयगिरी, स्वर्णगिरी (भमणगिरी) और वैभारगिरी कहाँ गया है और यही नाम आज

कल प्रचलित हैं। राजगृह (राजगिरी) का राजनैतिक महत्व यद्यपि नष्ट हो चुका है किन्तु उसकी धार्मिक महत्ता अबतक अक्षुण है। राजगिर रेलवे स्टेशन से लगभग १ कि० मी० और वस स्टैंड तथा बाजार से एक फर्लांग दूरी पर दि० एवं श्वेताम्बर धर्मशालाएं हैं।

राजगृही सहस्त्रों वर्षों से विख्यात तीर्थक्षेत्र है। यहां वीसवें तीर्थंकर भगवान मुनि सुव्रतनाथ के गर्भ, जन्म, दीक्षा और केवल ज्ञान कल्याणक मनाये गये। कुमार मुनि सुव्रत जब यौवन अवस्था को प्राप्त हुए, तब उनके पिता ने तीन-ज्ञानधारी अपने पुत्र का राज्याभिषेक किया राज्य शासन करते हुए काफी काल व्यतीत हो गया तो एक दिन उनके मन में संसार, शरीर और इन्द्रिय-भोगों के प्रति वैराग्य जागृत हो गया। उन्होंने युवराज विजय का राज्या भिषेक करके मुनि-दीक्षा ले ली। दीक्षा लेते ही भगवान को मन-पर्ययज्ञान उप्पन्न हो गया। इस प्रकार वे मतिज्ञान-श्रुतज्ञान-अवधिज्ञान और मन: पर्ययज्ञान ये चार ज्ञान के धारी हो गये। तपश्चरण करते हुए ग्यारह मास वीत गये, तब भगवान पुन: अपने दीक्षा-वन में पहुँचे। वहाँ वह एक चम्पक वृक्ष के नीचे स्थित होकर दो दिन तक उत्तम ध्यान में लीन रहे। उनके घाति कर्मो के वन्धन टूट गये और उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया।

राजगृह का पौराणिक इतिहास

भगवान मुनि सुव्रतनाथ हरिवंश के सूर्य थे। उनके पश्चात् उनका पुत्र सुव्रत हुआ। उनका राजगृही पर शासन था। उनका पुत्र दक्ष हुआ, जि ाको रानो ऐला से ऐलय पुत्र और मनोहरी कन्या हुई। दक्ष ने अपनी कन्या के हो सौन्दर्य पर मुगध होकर उससे विवाह कर लिया इससे रुष्ट होकर इलादेवी अपने पुत्र ऐलेय को लेकर चली गयी और एक नया नगर बसाया, जिसका नाम इलावर्धन रखा गया। ऐलेय प्रतापी राजा था। आगे चलकर इसी वंश में वसु नाम का राजा हुआ, यह वड़ा सत्यवादो था। किन्तु वह नारद और पर्वत

के विवाद में पर्वत का पक्ष लेने के लिए झूठ बोला और 'अजैर्यष्टव्यं' इसका अर्थ यह किया कि बकरों से यज्ञ करना चाहिए। परिणाम यह हुआ कि तब से यज्ञों में असंख्य जावों की हिंसा होने लगा। और वसु नरक को गये। फिर इस वंश में अनेक राजाओं के बाद बृहद्रथ हुआ। इस प्रकार राजगृही पर शताब्दियों तक हरिवंशी नरेशों का शासन रहा। बृहद्रथ का पुत्र जरासन्ध हुआ। यह बड़ा प्रतापी राजा था उसने आधे भारत को जीतकर अर्धचक्री का गौरव प्राप्त किया। मथुरा के राजा कंस के लिए अपनी पुत्री जीवद्यशा दी। (देखें मथुरा के विवरण में)

महाभारत काल में राजगृह का नाम गिरिव्रज था। श्री कृष्ण का प्रभाव भारत के प्राय: सभी राजवंशों पर छा गया, इस प्रभाव को देखकर जरासन्व चिन्तित हो उठा तथा युद्ध की तैयारियां होने लगीं। देश और विदेश के सम्पूर्ण राजा इस ओर एवं उस पक्ष में अपनी सेनाओं सहित आमिले। दोनों ओर से भयानक युद्ध हुआ और अन्त में श्री कृष्ण की विजय हुई गिरिव्रज पर श्री कृष्ण का अधिकार हो गया और अर्धचक्री नारायण के रूप में उनका अभिषेक किया गया। श्री कृष्ण ने उस समय जरासन्ध के द्वितीय पुत्र सहदेव को गिरिव्रज का राज्य और मगध का चौथाई भाग दिया। सहदेव गिरिव्रज का राजा बन गया किन्तु गिरिव्रज का वैभव, प्रभाव और आतंक पहले—जैसा नहीं रहा। इसके बाद राजगृह में श्रेणिक बिम्बसार के रूप में एक सबल व्यक्तित्व उभरा, जिसने अपने बाहुबल से साम्राज्य का विस्तार किया और प्राचीन गिरिव्रज के उत्तर की ओर एक मील हटकर राजगृह का पुनर्निर्माण किया। पुराना किला भी मग्न हो चुका था। नये किले एवं भवनों का निर्वाण किया। श्रेणिक का शासन काल ई० पू० ६०१ से ५५२ तक अनुमानत: माना जाता है। सम्राट श्रेणिक के कई पुत्र थे—अभयकुमार, वारिषेण, अजातशत्रु। इसमें अभय कुमार बहुत बुद्धिमान और कुशल राज-

नीतिज्ञ था, किन्तु उसने मुनि-दीक्षा ले ली। वारिषेण श्रेणिक का का उत्तराधिकारी था, युवराज था और श्रेणिक की पट्टमहिषी चेलना सांसारिक सम्बन्ध के अनुसार भगवान महावीर की मौसी, का पुत्र था, किन्तु वह प्रारम्भ से ही राजसत्ता और इन्द्रिय-भोगों की ओर से उदासीन रहता था। अतः स्वेच्छा से राजपाट त्याग कर मुनि—जीवन अंगीकार कर लिया। अजात शत्रु जन्म से ही उद्धत, जल्दबाज और महत्वाकाँक्षी था। चम्पा को विजय करके श्रेणिक ने अजात शत्रु को वहाँ का उपरिक (गर्वनर) बना दिया था। किन्तु इससे उसकी महत्वाकाँक्षा तृप्त नही हुई। वह शीघ्र ही मगध सम्राट बनना चाहता था। एक दिन कुछ विश्वस्त सैनिकों को लेकर राजगृह जा पहुँचा और अपने वृद्ध पिता श्रेणिक को कैद करके कारागार में डाल दिया। वहां श्रणिक को बिना नमक की कांजी और कोदों को खाने में दिये जाते थे और वह अपने पिता को दुर्वचन भी कहता था। एक दिन अजात शत्रु भोजन कर रहा था कि उसके पुत्र ने उसकी थाली में पेशाब कर दिया, पुत्र मोह के कारण उसने थाली में चावल एक ओर करके खा लिये। पास ही उसकी माँ बैठी थी। उसने माँ से पूछा, "क्या मेरे समान कोई दूसरा व्यक्ति अपने पुत्र से प्रेम करता होगा ?" माँ बोली—'बेटा एक बार जब तू बालक था। तेरी अंगुली पक गयी थी। तू रोता था। तब तेरे पिता तेरी उस मवाद से भरी अँगुली को रात भर मुँह में दबाये बैठे रहे थे। मुख की गर्मी से तुझे कुछ आराम मिला था और तू उनकी गोद में सो गया था।" इतना सुनते ही वह व्याकुल हो गया और अपने पिता को कारागार से छुड़ाने के लिए दौड़ पड़ा। श्रेणिक ने अपने उदण्ड पुत्र को आते देखा तो इस भय से कि वह कष्ट देगा अपना सिर जेल के सीकचों पर जोर से दे मारा। क्षुधा और कष्टों से वे अत्यन्त निर्बल हो ही गये थे तथा सिर पटकते ही उनकी मृत्यु हो गई। अजातशत्रु को अपने कृत्यों पर बड़ा दुख हुआ।
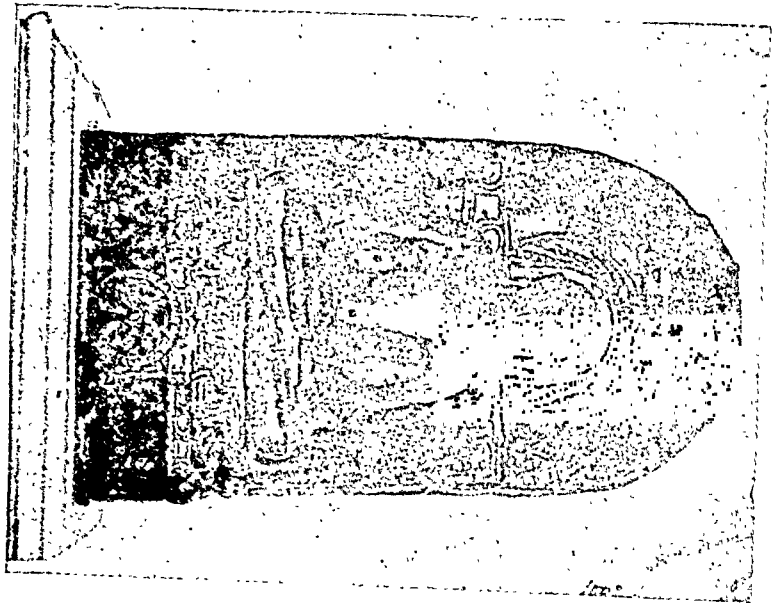
भ० महावीर की प्राचीन प्रतिमा वैशाली
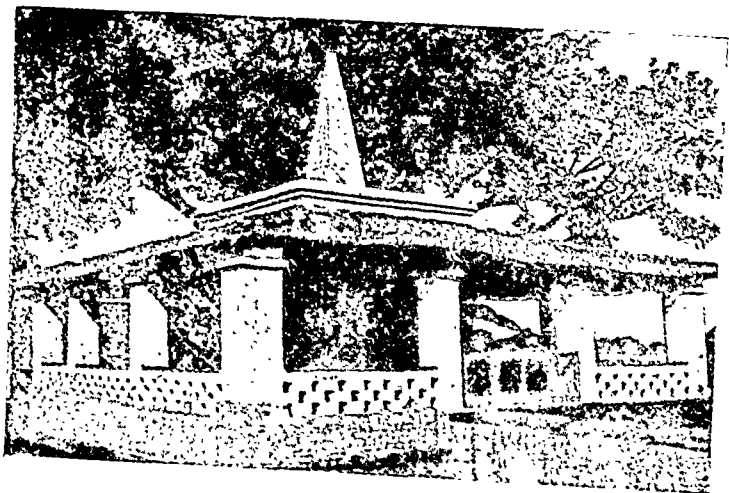
जैन मन्दिर वैशाली

उसने राजकीय सम्मान के साथ पिता की अन्त्येष्टि क्रिया की।

अजातशत्रु ने राज्यासीन होते ही आस पड़ोस के राज्यों को जीतना प्रारम्भ किया। कौशल राज्य को जीतकर, लिच्छवियों के गणसत्ताक संघ पर भी अधिकार कर लिया। सैनिक गतिविधि पर दृष्टि रखने हेतु गंगा और सोन के संगम के निकट पाटलिग्राम में एक किला बनवाया। राजा श्रेणिक बिम्बसार और अजातशत्रु के जीवन काल में भगवान महावीर का विहार राजगृह में कई बार हुआ था। अजातशत्रु अपने प्रारम्भिक जीवन में कट्टर जैन था, उसने अपनी राजधानी राजगृह में कई विशाल जिन मन्दिरों का निर्माण कराया था—अजातशत्रु के पश्चात् उसका पुत्र उदैयन सिंहासन पर बैठा। किन्तु अब मगध साम्राज्य का विस्तार बहुत हो गया था। अतः सुविधा की दृष्टि और रक्षा हेतू उसने पाटलिपुत्र नगर बसा कर, राजगृह के स्थान पर, पाटलिपुत्र (पटना) को राजधानी बनायी। इसके पश्चात राजगृह को कभी यह राजनैतिक गौरव प्राप्त नही हुआ। इसके पश्चात लगभग ई० पू० १६० में राजगृह नाम की गूंज कलिंग नरेश खारवेल (जैन) के समय में हुई, उसने राजगृह पर दो बार आक्रमण किया था। राजगृह से सम्बन्धित एक घटना विक्रम की ६ वीं शताब्दी में हुई, जब कन्नौज नरेश आम ने राजगृह पर चढ़ाई की। वह १२ वर्ष तक राजगृह का घेरा डाले पड़ा रहा, किन्तु राजगृह वासियों ने हार नहीं मानी। तब इसके पौत्र भोजराज ने राजगृह को जीता और इस प्राचीन एवं ऐतिहासिक नगरी को आग लगा दी, इस प्रकार राजनैतिक नगरी आकाश में सदा के लिए लुप्त हो गई। अनेक घटनाओं का उल्लेख पुराणों में उपलब्ध है, जिनका राजगृह के साथ कुछ न कुछ सम्बन्ध रहा है। इनमें एक कथा जम्बु स्वामी की भी है (देखें मथुरा के वर्णन में)।

राजा श्रेणिक एवं रानी चेलना

राजा श्रेणिक और चेलना का कथानक जैन साहित्य में अत्यन्त विश्रुत है। श्रेणिक तो आगामी भव में तीर्थंकर होने वाले हैं। चेलना वैशाली के राजा चेटक की पुत्री सम्यग्दृष्टि सती थी, जिसने अपने पति को वौद्ध से जैन धर्म का दृढ़ श्रद्धानी वना दिया। इस राजदम्पति और उनके परिवारीजनों की धर्म श्रद्धा, त्याग-तपस्या की अनेकों घटनाएँ राजगृह में घटित हुई हैं। उनमें से एक दो इस प्रकार हैं। राजगृह नरेश उपश्रेणिक (राजा श्रेणिक के पिता) वन भ्रमण के लिए गये थे। वन में वह एक रूपवती भील कन्या, तिलकवती पर मोहित हो गये, उन्होंने भीलराज से उसकी याचना की। भील ने कहा—विवाह करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु मेरी पुत्री से जो पुत्र होगा वही राजगद्दी का मालिक होगा। उपश्रेणिक ने स्वीकार कर ली। उससे एक पुत्र हुआ जिसका नाम चिताल पुत्र रखा गया। राजा की पहली रानी से श्रेणिक नामक भी एक पुत्र था, वह योग्य, वीर और साहसी था। राजा वचनवद्ध होने से, श्रेणिक को राज्य से अकारण निकाल दिया और चिताल पुत्र को राज्य सौंपकर स्वयं मुनि—दीक्षा धारण कर ली। चिताल पुत्र ने प्रजा पर घोर अत्याचार करना प्रारम्भ कर दिया। अनेक प्रजा भयभीत होकर श्रेणिक के पास पहुंची। श्रेणिक ने प्रजा हेतू मगध पर आक्रमण करके राज्य पर अधिकार कर लिया। चिताल पुत्र भाग कर जंगलों में जा छिपा, वहाँ भी जनता पर अत्याचार करने लगा। एक बार छिपकर वह राजगृह में पहुँचा और स्नान करती हुई सुभद्रा नामक कुमारी कन्या को वलात् उठा लाया। राजा श्रेणिक को पता लगते ही कुछ सैनिकों को लेकर पीछा किया। चिताल पुत्र ने भयभीत होकर उस कन्या की हत्या कर दी और वहाँ से भागते-भागते वैभारगिरि पर्वत पर पहुँचा और आचार्य मुनि दत्त के चरणों में पड़कर रक्षा की प्रार्थना करने लगा। मुनि राज

ने अवधिज्ञान से जान कर कहा—"वत्स तेरी आयु सिर्फ आठ दिन की शेष है। जिन दीक्षा लेकर आत्म-कल्याण करना चाहिए।" सुनकर चिताल पुत्र ने मुनि-दीक्षा ले ली, प्रायोपगमन सन्यास (मरण) ले लिया। सुभद्रा मर के व्यन्तरी हुई। उसने मुनि चिताल पुत्र पर बड़ा उपसर्ग किया। किन्तु वे विचलित नहीं हुए और मर कर अहमिण्द्र देव हुए।

राजा श्रेणिक प्रारम्भ में महात्मा बुद्ध के अनुआयी थे। किन्तु महारानी चेलना जैन धर्म की उपासिका थी। राजा श्रेणिक की धारणा थी कि चेलना ने उनके बौद्ध गुरुओं के साथ अभद्र व्यवहार किया है। इसीलिए उसका सारा क्रोध जैन मुनियों के प्रति था। एक दिन राजा शिकार खेलने गये, वन में यशोधर मुनि का देखा। राजा ने क्रोध में भरकर उनके ऊपर शिकारी कुत्तों को छोड़ा, किन्तु तप के प्रभाव से कुत्ते मुनि के चरण चाटने लगे। चिढ़कर राजा ने उन्हें बाणों से छेदना चाहा, किन्तु ये वाण मुनि के चरणों में पुष्प बनकर बिखर गये। जब खीजकर श्रेणिक ने मरे पड़े हुए एक सर्प को मुनि के गले में डाल कर महलों में लौट आया। इस घटना का जिक्र राजा ने चेलना से किया। चेलना सुनते ही व्याकुल हो गयी। तत्काल राजा के साथ उसी स्थान पर पहुँची जहाँ मुनि राज तप कर रहे थे। देखा की मुनि के ऊपर चीटियां फिर रही हैं, कुछ काट रही हैं तथा कई जगह घाव बन गये हैं। उसने साड़ी के पल्ले से सारा शरीर साफ किया और मुनि राज को नमस्कार किया। राजा श्रेणिक भावुक हो गये और मुनि के चरणों में झुक कर प्रायश्चित करने लगे और जैन धर्म स्वीकार कर लिया। परि-णाम इतने निर्मल हुए कि सर्प डालते समय सातवें नरक की बाँधी हुई आयु पहले नरक की रह गयी। राजा श्रेणिक भगवान महावीर के अनुयायी हो गये। भगवान महावीर का समवसरण अनेकों वार राज गृहीके विपुलाचल और वैभारगिरि पर आया तो राजा श्रेणिक उनके

दर्शन करने और उपदेश सुनने जाते थे। इतना ही नहीं वह समव-सरण के मुख्य श्रोता के रूप में रहे।

राजगृही में भगवान महावीर का प्रथम समवसरण

भगवान महावीर को ऋजुकला नदी के तट पर कैवल्य प्राप्ति को विश्व-हितकारिणी घटना की शुभ सूचना कुछ विशेष चिन्हों द्वारा सौधर्म इन्द्र को प्राप्त हुई उसने कुवेर को एक सुन्दर विशाल समवसरण बनाने का आदेश दिया कुबेर ने अपने दिव्य साधनों से अति शीघ्र एक बहुत सुन्दर दर्शनीय विशाल समवसरण बनाया। जिसके तीन कोट और चार द्वार थे। द्वारों पर सुन्दर मानस्तम्भ थे। बीच में ऊँची तीन कटनी वाली सुन्दर वेदिका (गन्धकुटी) बनी थी। गन्ध कुटी पर रत्न-जड़ित सुवर्ण सिंहासन था जिसमें कमल का फूल बना हुआ था। गन्धकुटी के चारों ओर १२ विशाल कक्ष थे, जिनमें देव, देवी, मनुष्य, स्त्री, साधु, साधवीं, पशु, पक्षी आदि उपदेश सुनने वाले भद्र प्राणियों के बैठने की व्यवस्था थी। मध्यवर्तिनी उच्च गन्धकुटी के सिंहासन पर भगवान महावीर के विराजमान होने की व्यवस्था थी जिससे उनका उपदेश समस्त सुनने वालों को अच्छी तरह सुनाई पड़े।

उसी समय देवों की दुन्दुभी बाजा वहां बजने लगा, जिसकी मधुर-आकर्षक ध्वनि बहुत दूर पहुँचती थी उस ध्वनि को सुनकर समवसरण की वार्ता कानों कान दूर तक फैल गई। जिससे भगवान महावीर का दिव्य उपदेश सुनने की उत्कण्ठा से दूर-दूर की जनता चलकर ऋजुकला नदी के तट पर बने समवसरण में पहुँची। इन्द्र भी विशाल देव परिवार के साथ पहुँचा और समवसरण की सुव्य-वस्था की। समवसरण में महान प्रकाश था जिससे वहां रात और दिन का भेद नहीं जान पड़ता था। परन्तु सारा दिन बीत गया और रात्रि भी समाप्त हो गई तीर्थंकर के मुख से एक अक्षर भी प्रकट न हुआ। इसी प्रकार दूसरा, तीसरा दिन हुआ, किन्तु वाणी

प्रकट नहीं हुई। भगवान ने विहार कर दिया। विहार के अनन्तर भगवान जहाँ ठहरे वहां कुबेर ने पहिले जैसा भव्य समवसरण बना दिया। विहार करते-करते भगवान महावीर राजगृहीके निकट विपुलाचल पर्वत पर आये वहाँ भी सुन्दर विशाल समवसरण और यथा समय असंख्य श्रोता भी वहां एकत्रित हुए, मगर यहाँ भी तीर्थंकर महावीर मौन रहे।

महावीर भगवान के इस दीर्घ कालीन मौन के मूल कारण पर समवसरण के व्यवस्थापक सौ धर्म इन्द्र ने गम्भीरता से विचार किया तव अवधिज्ञान से उसे ज्ञात हुआ कि समवसरण में अब तक ऐसा प्रतिभाशाली विद्वान् उपस्थित नहीं हुआ जो तीर्थंकर के दिव्य उपदेश को सुनकर उसे अपने हृदय में धारण कर सके और उसको प्रकरण-वद्ध करके श्रोताओं की जिज्ञासा का यथार्थ समाधान कर सके। इस प्रकार का गणधर बनने योग्य विद्वान् मुनि समवसरण में न होने के कारण तीर्थंकर की वाणी मुक्ति न हुई। तदनन्तर उसने अवधिज्ञान से यह भी जाना की इस समय इन्द्रभूति गौतम तीर्थंकर का गणधर वनने योग्य विद्वान् है (देखें गुणावा जी के वर्णन में) अनेक उपाय करके इन्द्र इन्द्रभूति को समवसरण में ले आया। समवसरण में जैसे ही उसने भगवान महावीर के दर्शन किये तो भगवान महा-वीर की वीतरागता से वह इतना प्रभावित हुआ कि अपना समस्त परिग्रह त्याग कर वहीं महाव्रती दिगम्बर मुनि वन गया, मुनि बनते ही इन्द्रभूति को मन पर्यय ज्ञान हो गया। विपुलाचल पर्वत पर भगवान महावीर को कैवल्य प्राप्त होने के ६६ दिन पश्चात भगवान महावीर का मौन भंग हुआ और मेघ गर्जना के समान दिव्य ध्वनि में प्रथम उपदेश श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के दिन प्रारम्भ हुआ।

भगवान महावीर के ग्यारह गणधर थे इन्द्रभूति (गौतम), अग्नि भूति, वायुभूति, व्यक्त, सुधर्म, मौण्डकपुत्र, मौर्यपुत्र, अकम्पित, अचल भ्राता, मेतार्य और प्रभास। गणधरों में सभी केवल ज्ञानी हुए।

भगवान महावीर के जीवन-काल में नौ गणधर मुक्त हो गये थे अन्य दो को भगवान के निर्वाण-गमनके पश्चात मोक्ष हुआ। यह सभी ग्यारह गणधर राजगृह से मुक्त हुए।

राजगृह का वैभव

मुनि सुव्रत काव्य के रचयिता अर्हदास ने इस नगरी के वैभव का वर्णन करते हुए बतलाया है—मगध देश में पीछे की ओर लगे हुए विशाल उद्यानों से युक्त राजगृह नगरी सुशोभित थी। यहां पर सदा शैलाग्र भाग से निकलती हुई जलधारा कामनियों के निरन्तर स्नान करने के कारण सिन्दूर युक्त दिखलाई पड़ती थी। नगरी के बाहर विस्तृत मैदान घोड़ों की पंक्ति के चलने से, मन्दोन्मत्त हाथियों से योद्धाओं की शस्त्र शिक्षा से एवं सुभटों के मल्ल युद्ध से सुशोभित रहते थे। इस नगरी की चार दीवारी के स्वर्ण कलश इतने उन्नत थे कि उन्हें भ्रम वश स्वर्ण कलश समझ देवागनाएँ लेने के लिए आती थी। अट्टालिकाओं की ऊंची-ऊंची ध्वजाएं और रंग बिरंगे तोरण आकाश को छूते हुए इन्द्रधनुष का दृश्य बनाते थे। इन्द्रकान्त मणि से बने हुए भवनों की कान्ति चन्द्रमा की ज्योत्सना से मिल कर क्रीड़ासक्त अपसराओं के लिए दिव्यसरों की भ्रान्ति उत्पन्न करती थी। सुन्दर जिनालय अकृत्रिम जिनालयों की शोभा को भी तिरस्कृत करते थे। इस नगरी का शासक सर्वगुण सम्पन्न धन-धान्य से युक्त, विद्वान, प्रजा वत्सल और न्यायवान था। शुभ चन्द्र देव ने श्रेणिक चरित्र में इस नगर का वर्णन करते हुए लिखा है—यहां न अज्ञानी मनुष्य हैं और न शील रहित स्त्रियाँ। यहां के पुरुष कुवेर के समान वैभव वाले और स्त्रियां देवागनाओं के सामान दिव्य हैं। यहां के मनुष्य ज्ञानी और विवेकी हैं। पूजा और दान में निरन्तर तत्पर रहते हैं। कला, कौशल, शिल्प में अतुलनीय है। जिन मन्दिरों तथा राज—प्रसाद में सर्वत्र जय-जय की ध्वनि कर्णा-गोचर होतीं है। प्राचीन काल में गिरिव्रज के चार द्वार थे। पहला वैभार और

विपुलगिरि के मध्य सूर्य द्वार। दूसरा गिरिव्रज और रत्नाचल के मध्य में गजद्वार, तीसरा रत्नागिरी और उदयगिरी के बीच में। चौथा रत्नाचल और चक्र के बीच में था। सरस्वती नदी नगर के बीच में, उत्तरी द्वार के बगल से निकलती थी। बान गंगा राजगीर के दक्षिण में थी। अनुमान है राज्य भवन वैभारगिरि और रत्नाचल के बीच में घाटी के पश्चिम की ओर थे। विपुलाचल और वैभार गिरी अत्यधिक श्रद्धा केन्द्र रहा। भगवान महावोर ने १४ चतुर्मास राजगृह एवं निकटस्थ (नालंदा) में किये।

दिगम्बर जैन धमशाला मन्दिर में मूलनायक भगवान महावीर की श्वेत वर्ण पाषाण की मूर्ति है। इसके अतिरिक्त १० धातु प्रतिमाएँ और दो धातु के मानस्तम्भ हैं। गर्भगृह के बाहरी दीवार के आले में वायीं ओर पद्मावती और दायीं ओर क्षेत्रपाल विराजमान हैं। धर्मशाला के बाहर लाल रंग का बड़ा मन्दिर अवस्थित है। इसमें पहली वेदी में मुख्य प्रतिमा भगवान महावीर की श्वेत पाषाण की है दो और धातु प्रतिमा तथा धातु की १ चौबीसी हैं। दूसरी वेदी, मुख्य प्रतिमा भगवान पुष्पदन्त की है। इसके अतिरिक्त २ पाषाण प्रतिमाएँ हैं। तीसरी वेदी मुख्य और मूलनायक भगवान मुनि सुव्रतनाथ की श्याम वर्ण २२ इंच अवगाहन पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इस वेदी में, पाषाण प्रतिमाएँ हैं चौथी वेदी में भगवान चन्द्रप्रभु की श्वेत पाषाण की मूर्ति हैं। पाचवीं वेदी में कृष्ण पाषाण की भगवान नेमिनाथ की मूर्ति है। इसके अतिरिक्त इस वेदी में दो पाषाण की तथा १४ धातु की प्रतिमाएँ हैं। गर्भगृह मण्डप के बाहर वायीं ओर के बरामदे में कुछ प्राचीन मूर्तियाँ व्यवस्थित ढंग से रखी हुई हैं। इनमें से कुछ वैभारगिरी पर उत्खनन में प्राप्त प्राचीन जैन मन्दिर से लायी गई हैं। मन्दिर के बाहरी बरामदे की वेदी में १३ पाषाण और १९ धातु की प्रतिमाएं विराजमान है तथा दो पीतल के मान स्तम्भ हैं।

श्वेताम्बर नौलखा मंदिर—दि० मन्दिर के निकट ही स्थित है और सौराष्ट्र के सुप्रसिद्ध कला शिल्पी श्री चन्द्रू भाई पी० त्रिवेदी के निर्देशन में बना था।

राजगृही के पंच पवित्र पहाड़

विपुलाचल—प्रथम पर्वत पर लगभग आधा मील चलने पर दि० जैन टेकरी में भगवान महावीर के चरण विराजमान हैं। इसके पश्चात १ मील पर सर्वप्रथम दि० टेकरी में १६ अंगुल के भगवान चन्द्रप्रभु के प्राचीन चरण विराजमान हैं। फिर दि० मन्दिर में भगवान चन्द्रप्रभु की श्वेत पाषाण की पौने तीन फुट की पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसके बायीं ओर मन्दिर में भगवान महावीर की पौने दो फुट की श्वेत पाषाण की प्रतिमा है। श्वेताम्बर मन्दिर में भगवान सुव्रत नाथ की मूर्ति विराजमान है। यति मदन कीर्ति विचरित 'शासन-चतुंस्त्रिशिकाशिका' (वि० स० १२८५) से विपुलगिरी पर एक ऐसे दि० जिनबिम्ब का वर्णन मिलता है जो १२ योजन तक दिखाई देता था, सम्भवतः इस चमत्कारी मूर्ति के दर्शन भी उन्होंने किये थे। किन्तु इतनी विशाल अवगाहना वाली मूर्ति जो १२ योजन से दिखलाई देती हो, उसका कोई प्रमाण या साक्ष्य आज उपलब्ध नहीं है। भगवान महावीर की २५०० वीं निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष में एक प्राचीन किन्तु छोटे स्तूप की जगह एक विशाल स्तूप का निर्माण हो रहा है।

रत्नागिरि—यह दूसरा पर्वत है, पीछे से पहले पर्वत से जाने में २ मील पड़ता है, जिसमें १ मील की उतराई और १ मील की चढ़ाई है। मार्ग में थोड़ा ऊबड़-खावड़ है। यहाँ के मन्दिर में मुनि सुव्रतनाथ की कृष्ण वर्ण पद्मासन प्रतिमा चार फुट अवगाहना की विराजमान है। बायीं ओर के आले में पार्श्वनाथ के चरण स्थापित हैं। मन्दिर के निकट टोंक मेंश्री सुमंदर, मेघरथ और धनदत्त केवली के चरण युगल विराजमान हैं। इन तीनों ने यहीं से निर्वाण प्राप्त

किया है। एक दूसरी गुमटी में भगवान चन्द्रप्रभु के चरण हैं। श्वेताम्बर मन्दिर में चन्द्रप्रभु तथा शान्तिनाथ की मूर्तियाँ हैं और नेमिनाथ, शान्तिनाथ, पार्श्वनाथ और वासुपूज्य भगवान के चरण हैं। पर्वत से उतरने के लिए १३०० सीढ़ियाँ हैं।

उदयगिरी—तीसरा पर्वत है इस पर तीन दि० मन्दिर हैं। एक में शान्ति नाथ और पार्श्वनाथ स्वामी की प्राचीन प्रतीमाएं एवं भगवान आदिनाथ के चरण चिन्ह हैं। दूसरा अति प्राचीन मन्दिर भग्नावशेषावस्था में है जो आज से लगभग ५० वर्ष पूर्व खुदाई में निकाला था। तीसरे नवीन मन्दिर में भगवान महावीर की एक खड्गासन प्रतिमा हलके बादामी वर्ण और ६ फुट अवगाहना की विराजमान है। श्वेताम्बर मन्दिर में वेदी खाली है और चन्द्र-प्रभु और भगवान पार्श्वनाथ प्रभु के चरण हैं। इस पर्वत पर ७८६ सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। चढ़ने और उतरने का मार्ग एक ही है। पर्वत से उतर कर दि० जैन कार्यालय की ओर से जलपान का प्रबन्ध है।

स्वर्णगिरि पर्वत—चौथे पर्वत पर १०६१ सीढ़ियां बनी हुई हैं और चढ़ाई लगभग २ मील है। इस पर्वत पर दो दि० मन्दिर हैं, प्रथम में भगवान शान्तिनाथ की श्याम वर्ण पद्मासन में दो फुटी प्रतिमा विराजमान है। दायी ओर भगवान महावीर के चरण हैं बायीं ओर भगवान शान्तिनाथ के। दूसरे मन्दिर में भगवान आदि-नाथ के चरण, तथा दायीं ओर की वेदी से भगवान पार्श्वनाथ के चरण विराजमान हैं। श्वेताम्बर मन्दिर में महावीर स्वामो और आदिनाथ भगवान के चरण हैं।

वैभारगिरि—पाँचवे पहाड़ पर ५६५ सीढ़ियां हैं। पर्वत पर पहले श्वेताम्बर मन्दिर हैं इसमें भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति विराज-मान है। दायीं ओर बायीं ओर क्रमशः नेमिनाथ और शान्तिनाथ भगवान के चरण हैं। बायीं ओर कुछ अन्नतर पर शालिभद्र का मन्दिर है। आगे दि० मन्दिर में महावीर भगवान की चार फुट

अवगाहना वाली श्वेत पद्मासन प्रतिमा वीर सं० २४८९ की विराजमान है। बायीं ओर आचार्य शान्तिनाथ के चरण तथा दायीं ओर भगवान आदिनाथ के चरण विराजमान हैं। दीवाल में बायीं और दायी वेदी में भगवान नेमिनाथ और पार्श्वनाथ के चरण हैं। इस मन्दिर के बायीं ओर पथ के किनारे एक भग्न दि० जैन मन्दिर है इसका उत्खनन पुरातत्व विभाग की ओर से हुआ था। यह मन्दिर आठवीं शताब्दी का अनुमान किया जाता है। यहां मिली अनेक मूर्तियों पर लेख भी अंकित है। इस मन्दिर के गर्भगृह के अतिरिक्त मन्दिर के चारों ओर २२ कोठरियां बनी हुई हैं। इनके अतिरिक्त पांच कमरे अलग बने हुए हैं। गर्भालय और कोठरियों की दीवारों में (ताकनुमा) वेदियां बनी हुई है, जिनमें मूर्तियाँ विराजमान होंगी। इन कोठरियों में से एक में ७, मुख्य गर्भगृह मं तीन और आठ कोट-रियों में एक-एक मूर्ति विराजमान है। शेष वेदियाँ खाली हैं। सप्तपर्णी गुफा, चट्टानों में बनी ६ या ७ गुफाओं का समूह है। जैन इतिहास में—रोहणियाँ चोर की गुफा के नाम से प्रसिद्ध है।

नोट—पर्वतों पर प्राय: नवीन मन्दिर प्राचीन मन्दिरों के अव-शेषों पर बनाये गये हैं।

मनियार मठ

जो रानी चेलना का निर्माल्य कूप भी कहलाता है, कुण्ड क्षेत्र से ज्ञान गंगा की धारा की ओर ३०० गज चलकर प्राचीन किले का उत्तरी भाग मिलता है। वहां से लगभग १ कि० मी० पर स्थित है। वास्तव में यह सेठ शालिभद्र का बनवाया प्राचीन जैन मन्दिर था, जिसे खुदाई के समय गिर दिया गया था। खुदाई में १९ फुट नीचे से एक नग्न प्रतिमा, जिसके, सिर पर सात फण थे मिली थी। वास्तव में यह प्रतिमा भगवान पार्श्वनाथ की थी। पुरातत्व के अनुसार यह मन्दिर पहली से छठी शताब्दी के मध्य का होगा। इस

समय एक ऊँचे टीले पर एक प्राचीन कूपाकार भवन है। उसके ऊपर टीन का शेड बना हुआ है।

सोन भण्डार

सोनागिरि पर्वत के दक्षिणी ढलान पर दो गुफाएँ हैं, एक पश्चिम की ओर और दूसरी पूर्व की ओर। पश्चिमी गुफा की दीवारें ६ फुट ऊँची है और छत झुकावदार है। इस गुफा की दीवारों पर लेख भी हैं, जितना पढ़ा गया उसके अनुसार 'अत्यन्त तेजस्वी आचार्य प्रवर वैरदेव ने मुक्ति प्राप्ति के लिए तपस्यियों के योग्य दो शुभ गुफाओं का निर्माण कराया।' यह लेख लिपि-शैली के आधार पर ३-४ शताब्दी का बताया जाता है। दूसरी पूर्वी गुफा पहली गुफा से जरा निचाई पर है। सम्भवतः गुफा के आगे बरामदा और दूसरा खण्ड भी था जिनके चिन्ह भी हैं। इसकी छत गिर चुकी है। द्वार में घुसते ही दायीं ओर दीवार में २ खड्गासन और १३ पद्मासन प्रतिमाएं बनी हुई हैं। पुरातत्व वेताओं का मत है कि यह गुफाएं ईसा की तीसरी शताब्दी में, जैन मुनियों के तपस्या करने हेतू बनी थीं।

सर्वमान्य तीर्थ—राजगृह बौद्धों का भी तीर्थ स्थल है। महात्मा बुद्ध को गृध्रकूट अति प्रिय थी, और अनेक बार यहाँ उनकी देशना हुई थी। यहाँ कई प्राचीन स्तूपों के अवशेष भी मिले हैं। गृधकूट के निकट ही जापान वालों ने एक स्तूप की स्थापना की है जिसे विश्व शन्ति स्तूप' कहते हैं। हिन्दुओं का भी बड़ा पवित्र स्थान है। ब्रह्मा कुण्ड के पास वाला क्षेत्र मार्कण्डय-क्षेत्र कहलाता है—। मुसलमान लोग भी इसको तीर्थ मानते हैं।—दर्शनीय स्थल (१) कुण्ड क्षेत्र, गर्मजल के झरने पवित्र माने जाते हैं तथा रोग नष्टकारक हैं। (२) जरासन्ध और अजातशत्रु द्वारा बनाये गये किले की दीवारें (३) पिप्पला गृह सप्तफर्णागुफा वैभारगिरि पर हैं। (४) मनियर मठ (५) स्वर्ण भंडार (६) रणभूमि (७) बिम्बसार जेल (८) जीवक आम्रवन (९) मर्दकुक्षि (१०) गृधकूट (११) विश्व शान्ति स्तूप

(१२) रज्जू मार्ग, रत्नगिरि की सतह से विश्व शान्ति स्तूप तक जाता है। राजगृह का एक आकर्षक है प्रति वृहस्पतिवार को बन्द रहता है। (१३) शंखलिपि (१४) वेणुवन आदि।

पाटलिपुत्र (पटना)

पटना पाटलिपुत्र का इतिहास ढाई हजार वर्ष प्राचीन है। प्राचीन साहित्य में इसके कई नाम मिलते हैं—जैसे कुसुमपुर, पुष्पपुर पाटलिपुत्र। यह शताब्दियों तक राजनैतिक और साँस्कृतिक केन्द्र रहा। मगध नरेश बिम्बसार श्रेणिक के पुत्र अजातशत्रु (कुणोक) ने वैशाली के वज्जियों के आक्रमण से बचाव के लिए गंगा और सोन के संगम पर ई० पूर्वी ४८० में किला बनवाया। जिस प्रकार श्रेणिक की मृत्यु होने पर पितृशोक के कारण अजातशत्रु ने अपनी राजधानी राजगृह से हटाकर चम्पा को बना लिया था, इसी प्रकार अजातशत्रु की मृत्यु के पश्चात उसके पुत्र उदयन ने पाटलिपुत्र नगर का निर्माण करके उसे अपनी राजधानी बना लिया, नन्द और मौर्य वंश के प्रतापी सम्राटों ने भी इसे राजधानी बनाकर भारत पर शासन किया यूनानी राजदूत मैगस्थनीज मौर्य सम्राट चन्द्र गुप्त (ई० पू० ३२१ से २९७) के दरबार में आया था और उसनेअपनी पुत्री का विवाह भी सम्राट से किया उसके अनुसार उस समय नगर का विस्तार १० मील लम्बा तथा २ मील चौड़ा था। शहर के चारों ओर चारदीवारी थी जिसके ऊपर ५७० रक्षाकक्ष और चौसठ द्वार थे।

गुप्त वंश ने भी पाटलिपुत्र को अपनी राजधानी रखा। इस वंश के अन्तिम सम्राट कुमारगुप्त द्वितीय को हटाकर उसका सेनापती विष्णुवर्धन (यशोधर्मन) राजा बन गया। उसने सन ६३० में पाटलिपुत्र से हटाकर कन्नौज को राजधानी बनाया। इ के पश्चात पाटलिपुत्र का महत्व और वैभव कम होता गया। जब चीनी यात्री ह्वेनतसांग (ई० सन् ६३७) यहाँ आया, उस समय प्राचीन नगर

खण्डहर बन चुका था और इसके निकट नया नगर निर्माण हो गया था। पाटलिपुत्र से ही सेठ सुदर्शन ने मुनिराज सुदर्शन बनकर निर्वाण प्राप्त किया था।—अंगदेश की राजधानी चम्पा के नरेश दधिवाहन थे। उनके राज्य में वृषभदत्त थे उसकी पत्नी अर्हदासी थी, उनके सुदर्शन नाम का एक पुत्र था। जब सुदर्शन यौवन अवस्था को प्राप्त हुए तो उनका विवाह मनोरमा से कर दिया। वृषभदत्त ने सुदर्शन को व्यापार आदि संभालकर दीक्षा लेली। सुदर्शन सेठ अष्टमी और चर्तुदशो को श्मशान में जाकर ध्यान लगाते थे। एक दिन महाराज दधिवाहन अपनी महारानी अभया कोलेकर वन-विहार के लिए गये। उनके साथ सेठ सुदर्शन मन्त्रीगण परिजन, पुरजन भी थे। सुदर्शनसेठ को देखकर अभया का मन चंचल हो गया। जब वन-विहार से लौटे तो अभया अपने कक्ष में जाकर काम-पीड़ित होकर पलंग पर पड़ गई। धाय मां को अपनी अत्यन्त विश्वस्त और अन्तरंग समझकर बोली "सुदर्शन सेठ को देखकर मैं उसके ऊपर मोहित हो गई हूं। उसके बिना जीवित नहीं रह सकती उसे मुझसे किसी उपाय से मिला दे।" एक दिन धाय ने रात्रि में प्रयत्न करके सेठ सुदर्शन को, जब वह श्मशान में ध्यान लगाये हुए थे—उठवाकर महारानी के कक्ष में पहुँचा दिया। सुदर्शन को देखकर रानी बड़ी प्रसन्न हुई और काम से पीड़ित होकर वह सुदर्शन से रति-दान की प्रार्थना करने लगी। सुदर्शन तो ध्यान मग्न थे। रानो कामान्ध होकर नाना भांति की कुचेष्टा करती रही जब दृढ़ शीलव्रती की शिला से रानी के सभी शस्त्र टकराकर चूर हो गये तो वह खीज और क्रोध से भर उठी, उसे अपनी प्रतिष्ठा बचाने की चिन्ता हुई। उसने अपने कपड़े फाड़, अपने नाखूनों से शरीर क्षत-विक्षंत कर लिया, बाल बिखेर लिये और कातर वाणी में चिल्लाने लगी। राजा ने सुदर्शन सेठ का सर काटने की आज्ञा देदी जैसे ही उसका मस्तक काटने के लिए तलवारें चलायीं वहाँ घाव न होकर फूलों की माला बन गई। संयोग से तभी उधर

विमलवाहन नामक मुनि आ गये। और सुदर्शन सेठ मुनि सुदर्शन हो गये।

रानी अभया ने भय के मारे आत्म-हत्या कर ली। और मरकर व्यन्तरी बनी। दुष्टा धाय वहाँ से भाग गई और पाटलिपुत्र में देवदत्ता नामक वेश्या के यहाँ रहने लगी। मुनि सुदर्शन विहार करते हुए पाटलिपुत्र पहुँचे। धाय ने उन्हें देख लिया। वैश्या देवदत्ता बोली 'मैं देखती हूं यह कितना बड़ा ब्रह्मचारी है, उसने मुनिराज को किसी बहाने से बुला लिया, और उनपर तीन दिन तक बन्द करके घोर उपसर्ग किये, किन्तु धीर वीर मुनि किंचित्मात्र भी विचलित नहीं हुए तब देवदत्ता भयभीत होकर मुनि को श्मशान में छोड़ आई। सात दिन तक मुनि के ऊपर अभया व्यंतरी ने भयानक उपसर्ग किये तथा उपसर्ग के सातवें दिन उन्हें 'केवल्य' की प्राप्ति हो गई। कुछ समय पश्चात् सुदर्शन केवली पाटलिपुत्र से निर्वाण प्राप्त किया।—यह वही नगरी है जहां पर चाणक्य ने नन्दवंश का उन्मूलन करके अपनी विचक्षण बुद्धि और चन्द्रगुप्त मौर्य की वीरता से भारत में मौर्यवंश का राज्य स्थापित किया। अनन्तर चाणक्य ने मुनि दीक्षा धारण कर ली। आचार्य बनने के पश्चात् अपने ५०० शिष्यों के साथ क्रांचपुर आये। नन्दराज के भूतपूर्व मन्त्री सुबन्धु ने उन्हें पहचान लिया और बदला लेने हेतू ठहराने के स्थान में आग लगवा दी। आचार्य चाणक्य ने उत्तमार्थ प्राप्त किया, सभी मुनि शुक्लध्यान में लीन होकर अवशेष कर्मों को नष्ट करके सिद्ध हो गये।

सुदर्शन मुनि की टेकरी तथा मन्दिर—पटना शहर में गुलजार बाग स्टेशन के निकट ही दि० जैन मन्दिर और धर्मशाला है। मन्दिर धर्मशाला के बीच में बना हुआ है। इसमें भगवान नेमीनाथ की तीन फुटी कृष्ण वर्ण पद्मासन प्रतिमा सं० १९४० की है। मूलनायक के अतिरिक्त छह धातु-प्रतिमाएँ हैं। इनमें एक चौबीसी है और एक ख्ड्गासन प्रतिमा सुदर्शन स्वामी की है। इन प्रतिमाओं में एक सं०

१६२९ तथा दूसरी सं० १७ ० की है। बीच में सुदर्शन मुनि के चरण हैं। इस समय पटना में कुल मिलाकर ५ मन्दिर और एक चैत्यालय है।

सुदर्शन मुनि की टेकरी—इस मन्दिर के निकट ही रेलवे लाइन के दक्षिण की ओर बेर के पेड़ों के बीच में अवस्थित है, जिसमें उनके श्याम वर्ण ८ अंगुल प्रमाण के चरण विराजमान हैं। टेकरी के चारों ओर चार तालाब हैं, किनारे के ऊपर छत पर स्थूल भद्र मुनि के श्वेत चरण विराजमान हैं। दोनों टेकरीयों के बीच में 'कमलदह' तालाब है।

स्टेट म्यूजियम पटना की गणना भारत के अत्यन्त महत्वपूर्ण संग्रहालयों में की जाती है। इन कलाकृतयों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण मौर्ययुग की पाषाण मूर्तियाँ तथा चौमासे से प्राप्त धातु मूर्तियाँ हैं। पुरातत्ववेताओं के मतानुसार ये मूर्तियाँ भारत में उपलब्ध मूर्तियों में प्राचीनतम हैं। पटना के लोहानोपुरी मुहल्ले से प्राप्त मौर्ययुग की खण्डित मूर्ति पर ओपदार पालिश से यह सुनिश्चित किया गया है कि यह मूर्ति ईसा पूर्व ३२०-१८५ की है।—जालान-संग्रहालय, पटना सिटी में गंगा के तट पर स्व० सेठ राधाकृष्ण जी जालान का व्यक्तिगत कला-संग्रह है, इनमें कुछ जैन कला वस्तुएँ भी हैं। इनमें ७३ पाषाण की और ४ धातु की मूर्तियां हैं तथा सचित्र हस्तलिखित शास्त्र हैं। कनोडिया संग्रहालय—श्री गोपी कृष्ण कानोडिया का व्यक्तिगत है और फ्रेजर रोड पर स्थित उदय भवन में अवस्थित है। उनके संग्रह में एक अनुपम प्रतिमा साढ़े पाँच फुट ऊँची कायोत्सर्गासन में है। यह भूरे पाषाण की है तथा सिर पर सप्त फणीवली सुशोभित है।

———

वैशाली कुण्डग्राम

वर्द्धमान महावीर के जन्म स्थान के विषय में अनेक मत हैं। परन्तु यथार्थ यह है कि महावीर का जन्म वैशाली के निकप कुण्डग्राम में हुआ था। मुजफ्फरपुर जिले में हाजीपुर सव-डिवीजन में स्थित वसाढ़ ही प्राचीन 'वैशाली' है। कुण्डग्राम को आजकल वासुकुण्ड कहते हैं। लिच्छुआड छत्रिय कुण्ड या कुण्डपुर ही महावीर का वास्तविक जन्म स्थान था। प्राचीन लिच्छवियों की राजधानी वैशाली को ही आजकल वसाढ़ कहते हैं और महावीर को विदेह, विदेहदत्त, विदेहसुकुमार और वैशालिक भी कहा गया है। यह निष्कर्म, वैशाली नाम से निकाला गया है। सिद्धार्थ (श्रेयांस या यशस्वी) की पत्नी त्रिशला (प्रियकारिणी) राजा चेटक की पुत्री थी, जो कि वैशाली के राजा थे उन्हें वैदेही, विदेहदत्ता कहा जाता है क्योंकि वे विदेह के शासक वंश में पैदा हुई थी। इस प्रकार भगवान महावीर का अपने समय में वैशाली के महत्वपूर्ण लिच्छवी गणतन्त्र क्षत्रियों से रक्त सम्वन्ध था।

वैशाली नगर में ८००० महल मकान जन संख्या १,६८०००—सुवर्ण गुम्वद ७०००—रजत गुम्वद १४०००—ताम्र गुम्वद २१०००—संसद सदस्य ७७०७। इन महलों मकानों में उच्च, मध्यम और निम्नवर्ग के लोग अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार रहते थे। सिद्धार्थ की प्रसन्न बुद्धि रानी प्रियकारिणी त्रिशला सात खण्ड वाले राजमहल में रत्नदीपिका प्रकाशित नंन्द्यावत राजप्रसाद में हंस तलिका आदि से सुशोभित रत्न पलंग पर सो रही थी, तव उन्हें रात्रि के अन्तिम पहर में सोलह सुन्दर स्वपन दिखाई दिये। इन्हीं स्वपनों के फलस्वरूप चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के शुभ दिन त्रिशला ने एक अनुपम, तेजस्वी, सर्वांग सुन्दर पुत्र को जन्म दिया।

तीर्थंकर महावीर शुक्ल पक्ष की द्वितीया के चन्द्रमा के समान

कैलाश—अष्टापद ऊँचाई २१००० फुट

कुल्लहा पहाड़—गुफा में पार्श्वनाथ प्रतिमा
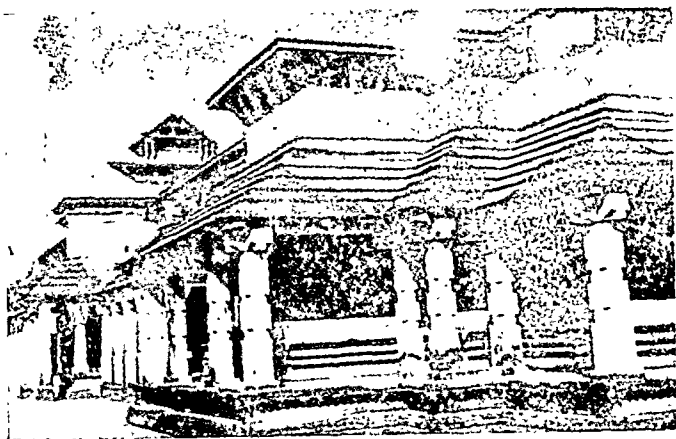
सहस्र स्तम्भ मन्दिर मुड़वद्री
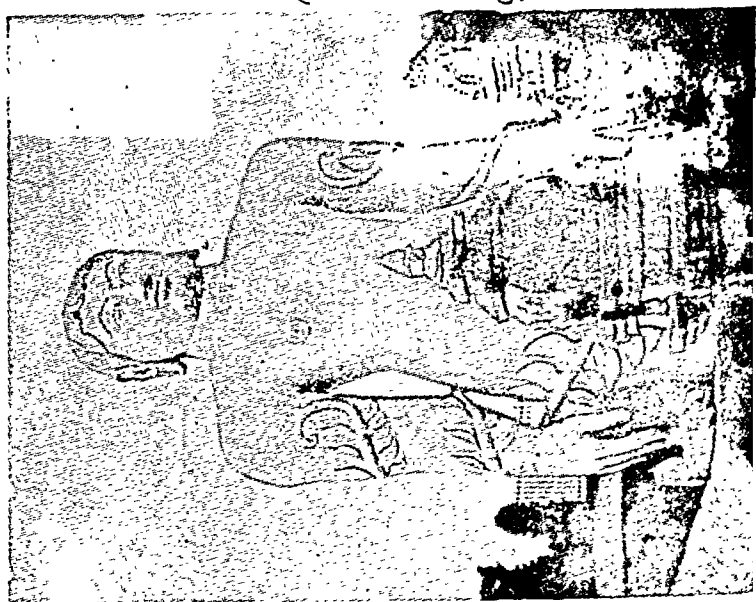
श्रवणवेलगोल—५७ फुट की भव्य प्रतिमा

वढ़ने लगे, वे वलशाली थे, वाणी भी बहुत मधुर थी, शंख, चक्र, कमल, यव, धनुष आदि १००८ शुभ लक्षण एवं चिन्ह उनके शरीर में थे। वे जन्म से ही अवधिज्ञानी थे। राजकुमार वर्द्धमान जन्म से ही सर्वागं सुन्दर थे, किन्तु जब उन्होंने कैशोर्य समाप्त करके यौवन में पदार्पण किया तव उनकी सुन्दरता उनके अंग-प्रत्यंग से प्रत्यक्ष रूप से झाँकने लगी। कलिंग नरेश राजा जितशत्रु की सुपुत्री राजकुमारी यशोदा से, सिद्धार्थ और त्रिशला ने वर्द्धमान कुमार का पाणिग्रहण करने का निर्णय किया, अपने विवाह की वात जव कुमार महावीर को ज्ञात हुई तो उन्होंने उसे स्वीकार न किया। तदनन्तर वर्द्धमान को एक दिन अचानक अपने पूर्वभवों का स्मरण हो आया। और भगवान महावीर का मगसिर बदी १० वीं को दीक्षा-उत्सव मनाया गया—इस प्रकार भगवान के वैशाली में गर्भ, जन्म, दीक्षा कल्याणक मनाये गये। पुराणों के अनुमान से उस समय यहाँ अनेक विशाल जिनालय थे।

वैशाली का अन्तिम विनाश ईसा की छठी शताव्दी में हुआ था। जब सातवीं शताव्दी में चीनी यात्री ह्वननंसांग आया था तब उसे वैशाली, श्रावस्ती और पाटलिपुत्र तीनों प्राचीन नगर ध्वस्त दशा में मिले थे। सन् १३२४ में गियासुद्दीन तुगलक ने वैशाली का नग्न रूप से विनाश किया उसके पश्चात यहाँ अनेक मुस्लिम मौलवी आये और इस्लाम के प्रचार-प्रसार के लिए जिहाद वोल दिया और जैन यहां से बिल्कुल उखड़ गये। इस महान् तीर्थ के प्रति जैनों की इस दीर्घकालिक उदासीनता को दूर किया, कुछ उदारचेता मनस्वी जनेतर विद्वानों ने वैशाली संघ की स्थापना १९४५ में हुई। संघ के घोर प्रयत्न से भगवान महावीर की उनके जन्म स्थान पर महावीर जयन्ती १९४८ में मनाई गई। तव जैनों का ध्यान इस तीर्थ की ओर गया। तव से यहां प्रति वर्ष जयन्ती संघ की ओर से मनाई

जाती है। जैनों ने सन् १९५१ में वैशाली कुण्डपुर तीर्थ प्रबन्धक कमेटी की स्थापना की।

जैन विहार के पीछे लगभग १०० गज दूर प्राचीन गढ़ है कुछ ऊँचे टीले पर है जो राजा विशाल का गढ़ कहलाता है। पुरातत्व विभाग के अनुसार यह टीला प्राचीन लिच्छवियों की राजधानी वैशाली में स्थित अनेक दुर्ग तथा महलों के भग्नावशेष का द्योतक है। इस ईंटों से भरे आयताकार टीले का क्षेत्रफल लगभग १ वर्ग मील से कुछ ही कम है उत्तर से दक्षिण की ओर १७०० फुट लम्बा और पूर्व से पश्चिम की ओर ८०० फुट चौडा है। इसके चारों तरफ खाई है जो अब प्रायः भर गई है। जनरल कनिंघम के अनुसार खाई की चौड़ाई २०० फुट थी। इस गढ़ का अन्वेषण सर्व प्रथम भारत सरकार की ओर से सन १८८०-८१ में कनिंघम द्वारा, १९०२-४ में वाश द्वारा और १९१३-१४ में स्फूनर द्वारा खुदाई कराई गई। १९५०-५८-६० में भी प्रयास किया गया। इन सभी खुदाईयों में गुप्तयुग की १००० से ऊपर मुहरें, मिट्टी की मूर्तियां एवं अनेक प्रकार की वस्तुएं पायी गयीं है।

वस तथा टैक्सी स्टैंट के पास ही 'जैन विहार' नाम से धर्मशाला है जैन विहार से ५ कि० मी० दूर भगवान महावीर की पावन जन्म-भूमि है। यहां के निवासी भगवान महावीर के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करने हेतु, प्रायः दो वीघे जमीन को पवित्र भूमि के रूप में सुरक्षित रखी है, जिस पर उन्होंने आजतक हल नहीं चलाया। अब इन निवासियों ने उस भूमि को 'भगवान महावीर का कोई स्मारक वनाने के लिए विहार सरकार को दान देदी है तीर्थ श्रेत्र कमेटी ने इस भूमि के चारों ओर हदवन्दी करके कमल पुष्प चौकोर कुण्ड वनवाकर एक शिलापट लगवा दिया है। इस शिलापट का अनावरण भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति महामहिम राजेन्द्र प्रसाद जी ने १९५६ में महावीर जयन्ती के अवसर पर किया। यह स्थान

'वासु कुण्ड' कहलाता है।

जैन एवं अहिंसा शोध संस्थान से लगभग ३ कि० मी० दूर अशोक स्तम्भ है। इस स्तम्भ को ईसासे लगभग २५० वर्ष पूर्व मौर्य सम्राट अशोक ने बनवाया था। कोई लेख नहीं है, स्तम्भ के ऊपर केवल एक सिंह, पिछले पैरों पर बैठा बना हुआ है। अशोक स्तम्भ के निकट एक सरोवर है उसे लोग मर्कट ह्द कहने लगे हैं, इसी प्रकार स्तम्भ के निकट के एक ऊँचे टीले को कूटागार शाला कहा जाता है। अशोक स्तम्भ से लगभग ४-५ कि० मी० दूर संग्रहालय तथा पी० डब्ल्यू ड।० का रैस्ट हाउस स्थित है--संग्रहालय एक विशाल सरोवर के तट पर अवस्थित है। यह सरोवर ही प्राचीन मगंल पुष्करिणी अथवा अभिषेक पुष्करिणी कहलाता है। यही वह सरोवर है, जिसमें कोई पक्षी तक चोंच नहीं मार सकता था और जिसमें अवगाहना करने के लिए तत्कालीन बड़े-बड़े सम्राट उत्सुक रहते थे। किन्तु इसके द्वारों पर सदा सशस्त्र पहरा रहता था। संग्रहालय से प्रायः एक कि० मी० दूर वामन पोखर (तालाब) है। इस सरोवर में कुछ वर्षों पूर्व श्याम पाषाण की पौने दो फुट ऊँची भगवान महावीर की एक अति मनोज्ञ प्रतिमा लगभग दो हजार वर्ष प्राचीन तथा कई अन्य हिन्दू मूर्तियां निकली थीं। हिन्दुओं ने इसे अपने मन्दिर में अन्य मूर्तियों के साथ विराजमान कर दिया। जब जैनों को भगवान महावीर की प्रतिमा का पता चला तो हिन्दू भाइयों से इसे मांगा, उन्होंने बड़े प्रेम के साथ जैनों को सौंप दिया। वामन पोखर के किनारे तथा हिन्दू मन्दिर के पीछे एक छोटा सा मन्दिर बनवाकर यह प्रतिमा विराजमान कर दी है। इस मन्दिर में केवल गर्भगृह है। मूलनायक प्रतिमा के आगे ७ इंच अवगाहना की वि० सं० २०१३ की प्रतिष्ठित पीतल की भगवान महावीर की मूर्ति विराजमान है। मन्दिर के बायीं ओर सरोवर के तट पर गन्धकुटो में भगवान महावीर के चरण चिन्ह विराजमान हैं।

कम्मन छपरा ग्राम में महादेव की विशाल चर्तु मुखी पाषाण मूर्ति है। यह जांघों तक जमीन में गड़ी हुई है और २००० वर्ष प्राचीन बतायी जाती है। यहाँ मनौती मनाने का ढंग बड़ा अद्भुत है। जो मनौती मनाता है, वह मूर्ति को पत्थर ढेले मारता है।

मार्ग—(१) वाराणसी से छोटी लाइन पर छपरा, सोनपुर होते हुए हाजीपुर या मुजफ्फरपुर उतरें वहां से बस द्वारा ३५ कि० मीं० पक्की सड़क है। वाराणसी से मुजफ्फरपुर ३१९ कि. मी. (२)लखनऊ से छोटी लाइन पर गोरखपुर, छपरा, सोनपुर होते हुए पूर्ववत् लखनऊ से मुजफ्फरपुर ५६७ कि. मी.। (३) पटना से N. E. R. के स्टीमर द्वारा पहलेजा घाट उतर कर बस या टैक्सी द्वारा पक्का रोड है, या पटना से मौकामा ब्रिज होकर टैक्सी या कार द्वारा इस मार्ग से १६० कि. मी. पडता है।

बिशेष—वैशाली में बस-स्टैंड पर ही जैन विहार तथा राजकीय पर्यटक क्रेन्द्र का अतिथि गृह है।

जैन दृष्टि में वंगदेश (बंगाल)

प्राचीन काल में वंगदेश (वंग जनपद),वर्तमान वंगाल एवं वंगलादेश व्यापारिक दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध था। छठी शताब्दी के अन्त में वंग के शशांक नरेश का उदय हुआ उसने समूचे वंग, कलिंग, आन्ध्र कोंगद और कन्नौज को जीत लिया। उसने जैनों और वौद्धों के मन्दिरों, मूर्तियों और स्तूपों का निर्मम विध्वंस किया। शशांक के अत्याचारों का वदला पाल नरेशों ने कसकर लिया। ऐसे उल्लेख उपलब्ध होते हैं, जिनके अनुसार ऋषभदेव, पार्श्वनाथ और महावीर भगवान ने वंग देश में विहार और धर्मोपदेश किया था। ई० सन् ४७८ के एक ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि वटगोहाली ग्राम में निग्रन्थ

श्रमणाचार्य गुहनन्दि का एक जैन-विहार था। खुदाई के फलस्वरूप स्वस्तिकाकार सर्वतोभद्र मन्दिर निकला है, जो सम्भवतः वही जैन-विहार होगा। निश्चय ही इस प्रदेश में जैन धर्म का प्रभाव और प्रचार था तथा यहां जैन धर्म के अनेक सुप्रसिद्ध केन्द्र थे।

कलकत्ता

कलकत्ता भारत के प्रमुख नगरों में से है दिल्ली से १४४१ कि० मी० सम्मेदशिखर, पारसनाथ स्टेशन से ३०६ कि० मी० है। हावड़ा और सियालडा रेलवे स्टेशन हैं। आज से लगभग ३०० वर्ष पूर्व यहां भयानक जंगल था। इन ३०० वर्ष के समय में इस नगर ने कितने ही राजनैतिक परिवर्तन देखें हैं। मुगलों की सत्ता समाप्त हुई, नवाबी सल्तनत का विनाश हुआ, मराठों का प्रभाव जाता रहा, अँगरेजी शासन की पाताल तक गहरी नींव उखड़ गयी और अब वह बंगाल प्रान्त की राजधानी है। इस नगर का नाम कलकत्ता कैसे पड़ा इसका बहुमत समाधान यह है कि हिन्दू पुराणों में ५१ शक्ति पीठ बताते हैं। उसमें से एक कालिका क्षेत्र भी है जो यहां की काली देवी के कारण है। कालिका क्षेत्र का अपभ्रंश होते-होते कालिका खेट और कलकत्ता हो गया।

कलकत्ता में प्रमुख दि० जैन मन्दिर चार हैं तथा पाँच चैत्यालय हैं। (१) बड़ा मन्दिर चावल पट्टी में सर हरी राम गोयनका स्ट्रीट और दिगम्बर जैन टैम्पिल स्ट्रीट के कोने पर दाहिनी ओर है। इसी मन्दिर से प्रतिवर्ष कार्तिक पूर्णिमा को ऐतिहासिक रथयात्रा निकलती है। और बेलगछिया उपवन को जाती है। (२)नया मन्दिर यह मन्दिर दि० जैन भवन के निकट ही है। नीचे के भाग में सभा-भवन है। ऊपर के भाग में दो वेदियां हैं। मुख्य वेदी उत्तराभिमुखी

है और दूसरी वेदी गन्धकुटी शैली की है और उसमें चारों दिशाओं की ओर मुख किये जिनप्रतिमाएँ विराजमान हैं। (३) पुरानी वाडी का मन्दिर, यह ३५ न० वृजदलाल स्ट्रीट में अवस्थित है। पहले यहां चैत्यालय था अब इसे मन्दिर का रूप दे दिया है। (४) वेलगछिया का पार्श्वनाथ मन्दिर यह दिगम्बर जैन भवन से लगभग ६ कि० मी० है, मन्दिर के चारों ओर ऊँची चारदीवारी है। फाटक में घुसते ही विस्तृत भूखण्ड में उद्यान है और मध्य में पक्का सरोवर है। उसके पश्चात मन्दिर है। मन्दिर दो खण्ड का है, नीचे के भाग में सभा-भवन है। ऊपर एक वेदी है। मन्दिर कलकत्ता के दर्शनीय स्थानों में से है।

कलकत्ता के दर्शनीय स्थान—महाजाति सदन (नेताजी सुभाष चन्द्र का स्मारक)—मल्लिक कोठी (दुर्लभ मूर्तियों आदि का संग्रह) रवीन्द्र भारती (रवीन्द्रनाथ ठाकुर का-स्मारक)-वैकुण्ठ मन्दिर—वेलगछिया पार्श्वनाथ मन्दिर दि०—बद्री दास मुकीम का श्वेताम्बर जैन मन्दिर—बोस इन्स्टीच्यूट (जहां यन्त्रों द्वारा पेड़ पौधों में जीव होना प्रमाणित किया जाता है)—विनय बादल दिनेश बाग (बंगाल सरकार का प्रमुख कार्यालय)—राज भवन (बंगाल गवर्नर का निवास-स्थान)—राज्य विधान सभा भवन—शहीद मीनार-म्यूजियम—बिडला प्लेनेटोरीयम (नक्षत्रगृह)-विक्टोरिया मेमोरियल-चिड़िया घर-नेशनल लाईब्रेरी—काली मन्दिर—नेताजी भवन-हावड़ा का पुल—बौटेनीकल गार्डन—वेलूरमठ—जहाज कोठी आदि।

इण्डियन म्यूजियम और जैन कला—

जवाहरलाल रोड पर स्थित है। इसमें पाषाण और धातु की कुछ प्राचीन जैन मूर्तियाँ भी सुरक्षित हैं। (१) एक सवा तीन फुट के शिलाफलक में चौबीस तीर्थंकरों की कायोंत्सगार्सन में उत्कीर्ण हैं, ९वीं शताब्दी की है। (२) पार्श्वनाथ की कुछ हलके-भूरे-लाल पाषाण की यह प्रतिमा तीन फुट ग्यारह इंच की है गुप्तकाल में ५वीं

शताब्दी की स्वीकार की गयी है। (३) एक तीर्थंकर प्रतिमा, इसकी अवगाहना साढ़े चार फुट है। इसका काल ९-१०वीं शताब्दी प्रतीत होता है। (४) एक पाषाण फलक में तीर्थंकर माता और १६ स्वप्न दर्शाए हैं।—इसी प्रकार ५ धातु प्रतिमाएँ मुख्य हैं।

मछुआ बाजार के दिगम्बर जैन भवन में ठहरना सुविधाजनक हैं। कलकत्ता में लोकल ट्रेन, ट्राम, बस, टैक्सी, रिक्शा आदि वाहनों की पर्याप्त सुविधा है।

जैन-दृष्टि में उत्कल प्रदेश

वर्तमान उत्कल प्रदेश (उड़ीसा) पूर्वकालीन उण्ड्र, पुण्ड्र और कलिंग जनपदों के अन्तर्गत था तथा जैन धर्म का प्रमुख केन्द्र था। तीर्थंकर देव का यहाँ कोई कल्याणक नहीं हुआ किन्तु तीर्थंकरों का विहार कलिंग में बराबर हुआ सम्भवतः कलिंग में कुमारी पर्वत (खण्डगिरि उदयगिरि) ही एक मात्र निर्वाण क्षेत्र है। जैन धर्म राज्य का राष्ट्र धर्म बन गया था। आज कलिंग में विभिन्न स्थानों पर जैन-प्रतिमाएं तो उत्खनन के परिणामस्वरूप मिलती हैं, किन्तु कोई प्राचीन जैन मन्दिर देखने में नहीं आया। लगता है छठी शताब्दी के लगभग कुछ धर्मद्वेषी नरेशों ने जैन मन्दिरों का विनाश कर दिया अथवा उन मन्दिरों को शैव मन्दिर बना लिया।

कटक

कटक उड़ीसा (उत्कल) प्रदेश की भूतपूर्व राजधानी है। कटक

नगर के तीन ओर महानदी, कुँआखाई और काठजोड़ी नदियां हैं। यह हावड़ा जंकशन से पुरी को जाने वाली रेलवे लाईन पर ४०६ कि० मी० दूर है। स्टेशन से लगभग ५ कि० मी० दूर चौधरी बाजार में जैन भवन है यहां ठहरने की अच्छी सुविधा है। इसी के पृष्ठ भाग में प्राचीन चन्द्र प्रभु का दि० जैन मन्दिर है। यह बड़ा मन्दिर कहलाता हैं तथा इस मन्दिर से लगभग १०० गज दूर इसी बाजार में दि० जैन चैत्यालय है।—चन्द्रप्रभु दि० जैन मन्दिर में दो गर्भगृह हैं और दोनों में एक एक वेदी है। बायीं ओर की वेदी में कुल ६ पाषाण प्रतिमाएँ हैं जो सभी प्राचीन हैं। कहते हैं यह प्रतिमाएँ खण्डगिरि से यहां लायी गयीं थीं। इनका प्रतिष्ठाकाल अनुमानतः १०वीं शताब्दी है। सभी प्रतिमाएं सलेटी या श्याम वर्ण की हैं और एक ही काल की प्रतीत होती है। मुख्य वेदी में १६ पाषाण की एवं ९ धातु की प्रतिमाएं हैं। इसका गर्भगृह पहले की उपेक्षा बड़ा है। मूलनायक भगवान चन्द्रप्रभु की आठ इंच ऊँची प्रतिमा है। इस वेदी की उल्लेखनीय प्रतिमाओं में दो पाषाण चैत्य हैं, जिन पर चारों दिशाओं में चार प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। एक शिलाफलक में ऊपर की पंक्ति में मध्य में आदिनाथ की पद्मासन मूर्ति है। उसके दोनों ओर चार-चार खड्गासन मूर्तियाँ हैं इनके नीचे आठ पंक्तियों में खड्गासन तीर्थंकर मूर्तियाँ बनी हुई है। प्रत्येक पंक्ति में १९-१९ मूर्तियां हैं। यह सहस्त्रकूट जिन चैत्य कहलाता है।

भानपुर कटक-भुवनेश्वर रोड पर ८ कि० मी० दूर है। यहाँ भूगर्भ से प्राप्त पाँच धातु प्रतिमाएं एक छोटे से मन्दिर में रखी हैं। मन्दिर के ऊपर शिखर है। मूर्तियां रजत वर्ण की हैं। ये दानेदार धातु की हैं। भूगर्भ में दबी रहने के कारण ही शायद ये दानेदार हो गयी हैं।—मध्य की मूर्ति १० इंच की चौबीसी है। इसके नीचे के भाग पर लेख है। संवत् १०९० पढ़ा जा सका है। इस मूर्ति के दोनों ओर दो-दो खड्गासन प्रतिमाएँ हैं।—भानपुर से ३ कि० मी० आगे

सड़क से लगभग एक फलाँग कच्चे मार्ग पर प्रतापपुर गांव है, वहाँ भी नदी से जैन मूर्तियां निकली थीं और अब यह मूर्तियाँ एक मठ में रखी हुई हैं।—इधर अन्य भी कई स्थानों पर जैन मूर्तियाँ भूगर्भ से उपलब्ध हुई हैं अथवा वैष्णव मन्दिरों में रखी हुई हैं।

भुवनेश्वर

भुवनेश्वर उत्कल प्रदेश की वर्तमान राजधानी है और प्राचीन काल से मन्दिरों के लिए प्रसिद्ध रहा है। इन मन्दिरों में मुकतेश्वर, राजारानी और लिंगराज मन्दिर सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं।—नगर में राज्य सरकार का सुन्दर संग्रहालय है। इसमें कुछ पाषाण और धातु की जैन प्रतिमाएं भी हैं। पाषाण की सभी मूर्तियाँ आठवीं से दसवीं शताब्दी तककी हैं।

खण्डगिरि-उदयगिरि

खण्डगिरि-उदयगिरि की संसार प्रसिद्ध गुफाएं कलिंग (वर्तमान उत्कल प्रदेश) में अवस्थित हैं। यह भुवनेश्वर से ६ कि० मी० हैं। कलिंग देश बहुत प्राचीन है। भगवान ऋषभनाथ ने कर्मभूमि के प्रारम्भ में इस देश को ५२ प्रदेशों में विभाजित किया था। उनमें कलिंग भी एक प्रदेश था। भगवान के एकपुत्र का नाम कलिंग था, इसी कारण इस प्रदेश को कलिंग नाम दिया। भौगोलिक स्थिति और उपजाऊ भूमि के कारण कलिंगवासी अत्यन्त समृद्ध और सुखी थे। इसके पृष्ठ भाग में पर्वतीय वन प्रदेश था। उत्तर में गंगा-ब्रह्मपुत्र की उपजाऊ घाटियां, दक्षिण में गोदावरी कृष्ण का दोआव, पूर्व में हिन्द महासागर से सुरक्षित बंगाल की खाड़ी थी। महाभारत

और रामायण में उत्कल और मेकल का साथ-साथ वर्णन मिलता है। मेकल प्रदेश सम्भवतः कौशल देश में था। कलिंग प्रदेश की राजधानी कलिंगनगर ही थी इसका उल्लेख हाथी गुफा के अभिलेख में मिलता है। भगवान ऋषभदेव, पार्श्वनाथ और भगवान महावीर का विहार जिन देशों में हुआ था उनमें कलिंग भी था। अतः यहाँ जैन धर्म का प्रभाव वहुत अधिक था।

कलिंग देश में कोटिशिला से यशोधर राजा के पांच सौ पुत्रों और १ करोड़ मुनियों के निर्वाण होने का उल्लेख भी हुआ है।— राजा श्रेणिक की रानी धन श्री के पुत्र गजकुमार यहीं से केवली हुए और निर्वाण प्राप्त किया।

कलिंग युद्ध

ईसा पूर्व चौथी शताव्दी में नन्दवंश के प्रतापी नरेश महापद्म नन्द ने कलिंग पर आक्रमण किया। इस युद्ध में कलिंग को पराजित होना पड़ा, विजय के प्रतीक रूप में नन्दराज 'कलिंग जिन' प्रतिमा को अपने साथ पाटलिपुत्र ले गया। यह प्रतिमा कलिंग में राष्ट्रीय प्रतिमा के रूप में मान्य थी। कलिंग ने शीघ्र ही पुनः स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली, स्वतन्त्रता की साँस लेने का अवकाश ही मिल पाया था कि उनके ऊपर भयानक वेग से पुनः विपत्ति आ पड़ी। ईसवी पूर्व तीसरी शताव्दी में मौर्य सम्राट अशोक ने विशाल वाहिनी के साथ कलिंग के ऊपर आक्रमण कर दिया कलिंग की कुल जनसंख्या अनुमानतः ७५ लाख थी। उसके पास लड़ाकू हाथी और समुद्री जहाजों का भी विशाल वेड़ा था। इस विशाल साम्राज्य की विशाल सेना की उन्होंने तनिक भी परवाह नहीं की। वे गंगा के किनारे से गोदावरी तक चप्पा-चप्पा भूमि के लिए लड़े। प्रत्येक गांव और घर किला वन गया था। कलिंगवासी जहां भी लड़ रहा था, वहाँ से वह पीछे नहीं हटा। अशोक को अपनी सेना पर अभिमान था। उसका सेनावल भी कलिंग की सेना-वल से कई गुना था। अशोक

भयानक हो उठा। उसने सेना में आज्ञा पचारित कर दी, 'क्रुरता-पूर्वक कलिंग को दबा दो।' आदेश मिलते ही मगध के सैनिक पशु बन गये। जो मनुष्य सामने आया, जीता नहीं बचा, जो गांव राह में आया, राख का ढेर हो गया। स्त्रियों में त्राहि-त्राहि मच गयी।

दो वर्ष तक यह युद्ध चला किसी कलिंग वासी ने आत्म-समपर्ण नहीं किया अशोक ने अपने शिला लेख नं० १३ में स्वीकार किया है कि कलिंग के युद्ध में एक लाख व्यक्ति मारे गये, डेढ़ लाख बन्दी बनाये गये और बाद में इससे कई गुने मरे। किन्तु यह संख्या कलिंग के सैनिकों की है। अशोक ने अपने पक्ष के हताहतों की संख्या का ल्लेख करना शायद उचित नहीं समझा, शायद यह संख्या कलिंग के मरे सैनिकों से कहीं ज्यादा हो। अशोक ने अपने १३ वें अनुशासन में यह भी स्वीकार किया है कि कलिंग-युद्ध में श्रमण और ब्राह्मण उभय सम्प्रदाय के लोगों ने दुःख उठाये थे। श्रमण वस्तुतः जैन थे। कलिंग बासियों को अपने देश की स्वतंत्रता के अपहरण से जितना दुःख हुआ, उससे अधिक उनके हृदय में उनके आराधना देवता 'कलिंगजिन' की प्रतिमा की थी।

जैन हृदय सम्राट खारवेल

कलिंग वासियों की भावना की तुष्टि की उनके प्रिय सम्राट खारवेल ने। नन्दराजा महापद्मनंद के २७५ वर्ष पश्चात् खारवेल ने मगधों को भयभीत करते हुए अपने हाथियों की सुगांगेय (पाटलि-पुत्र का महल) तक पहुँचाया मागध राजा वहसतिमित्र को पैरों में गिरवाया। जब खारवेल लौटा तो 'कलिग जिनमूर्ति' को भी अपने साथ कलिग लाया। कलिंगवासियों ने अपने आराध्य देवता के पुनः कलिंग में पधारने पर जो राष्ट्रीय स्तर पर स्वागत किया और राष्ट्रीय उत्सव मनाया, वह जैन धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा का प्रतीक था।

हाथी गुफा के लेख में प्रारम्भिक मंगलाचरण के पश्चात् खारवेल

के लिए ऐसे सम्बोधित किया है 'अर्थात् ऐर महाराज महामेघवाहन चेत (चेदि) राजवंश वर्द्धन कलिंग के अधिपति श्री खारवेल।' स्पष्ट है कि खारवेलचेदिवंश के थे। यह राजवंश चेदि अथवा चेति क्षत्रियों का था चेदि वंश ऐर अथवा ऐल था। जैन शास्त्रों में ऐल वंश की स्थापना का विवरण मिलता है। उसके अनुसार मुनि सुव्रतनाथ के पुत्र सुव्रत के दीक्षा लेने पर उनका पुत्र दक्ष हरिवंश का स्वामी हुआ राजा दक्ष की रानी इला से ऐलेय पुत्र हुआ और एक अत्यन्त सुन्दर पुत्री मनोहरी हुई। जब वह यौवनवती हुई तो सौन्दर्य को देखकर उसका पिता दक्ष ही उस पर मोहित हो गया। उसने अपनी पुत्री से ही विवाह कर लिया। इस कुकृत्य से रानी इला अत्यन्त रुष्ट होकर अपने पुत्र ऐल्य को लेकर चली गयी। उसने अंग देश में जंगलों को साफ कराकर इलावर्धन नामक नगर बसाया और ऐल्य को उस का राजा वनाया। ऐल्य वड़ा प्रतापी था। उसने ताम्रलिप्ति नगर वसाया। दिग्विजय करते हुए उसने नर्मदा के तट पर माहिष्मती नगरी वसायी। इसके वाद उसके वंश में अनेक राजा हुए। इसी वंश में अभिचन्द्र हुआ। उसने विन्ध्याचल के ऊपर चेदि राष्ट्र की स्थापना की अभिचन्द्र की उग्रवंश में उत्पन्न रानी वसुमती से वसु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

खारवेल ने इसीलिए अपने आपको चेतिराज वंश वर्द्धन और ऐल कहा है। हाथी गुफा,शिलालेख की १७ वीं पंक्ति में तो उसने स्पष्ट शव्दों में अपने आप को राजर्षि वसु के कुल में उत्पन्न लिखा है। इतिहासकारों ने खारवेल का काल ई० पू० प्रथम शताव्दी का उत्तरार्ध ही निर्धारित किया है। उसने अपनी आयु के १५ वर्ष राजकुमारोचित क्रीड़ाओं में व्यतीत किये, इसी अवस्था में उसने अनेक विद्याओं में निपुणता प्राप्त कर ली थी। अभिलेख के अनुसार खारवेल १६ वर्ष की अवस्था में युवराज पद पर अभिषिक्त हुआ और इस पद पर २४ वर्ष की अवस्था तक रहा। २४ वर्ष की अवस्था में खारवेल का राज्यभिषेक हुआ। खारवेल एक महत्वाकांक्षी वीर

युवक था। उसकी आकांक्षा समस्त भारत को विजित करके एक सूत्र में आवद्ध करने की थी।

अन्तिम मौर्य सम्राट वृहद्रथ को मारकर इसका प्रधान सेनापति पुष्प मित्र शुंग मगध का शासक बन बैठा था। उसने उत्तर भारत में एक शक्तिशाली साम्राज्य की स्थापना कर ली थी। उसका राज्य शाकल (स्यालकोट) से लेकर बंगाल की खाड़ी तक दक्षिण की ओर नर्मदा नदी तक और दक्षिण- पूर्व में आधुनिक बुण्डेलखण्ड तक फैला हुआ था। उसने दो बार अश्वमेघ और राजसूय यज्ञ किये। इसी समय दक्षिण में (महाराष्ट्र-कर्णाटिक) आन्ध्र जातीय सातवाहनों ने एक नये राज्य की स्थापना की। सात वाहन, जिसे शालिवाहन भी कहते हैं, राज्य के संस्थापक का नाम सिमुक था। उसकी तीसरी पीढ़ी में सातकर्णी हुआ। यह भी बड़ा प्रतापी राजा था। इसने भी दो बार अश्वमेघ और एक बार राजसूय यज्ञ किया था। इस काल का तीसरा यवन नरेश दिमित (डेमेट्रियस) वाख्त्री का राजा बड़ा पराक्रमी था। उसने शाकल जीतकर मध्यदेश को जीत लिया। फिर साकेत और मध्यमिका नगरी (चित्तौड़ से छह मील) को घेर कर वह मगध तक जा पहुँचा।—ये तीनों ही राजा बड़ी शक्तिशाली सेना के स्वामी और प्रतापी नरेश थे। किन्तु खारवेल सर्वोपरि थे और उन्होंने इन तीनों राजाओं को पराजित करके उनका मान-मर्दन किया था।

अपने राज्य-शासन के सातवें वर्ष में अर्थात ३१ वर्ष की आयु में खारवेल ने वजिराघर की राजकुमारी के साथ विवाह किया मंचुपुरी की गुफा का निर्माण खारवेल की महारानी ने जैन मुनियों के उपयोग के लिए कराया था। उसमें महारानी ने जो लेख उत्कीर्ण कराया था वह लेख इस प्रकार पढ़ा गया है 'कि कलिंग चक्रवर्ती खारवेल की अग्रमहिषी महानात्मा हस्तिसिंह की पुत्री थी।' इतिहासकार वजिराघर की पहचान मध्य प्रदेश में चान्दा जिले के वैरागढ़ से करते हैं।

उदयगिरि और खण्डगिरि नामक दोनों पहाड़ियों को एक सड़क प्रथक करती है। किन्तु वैसे दोनों पहाड़ियाँ अपने तल प्रदेश से मिली हुई है। खंण्डगिरि की ऊँचाई १२३ फुट है, और उदय गिरि ११० फुट ऊँची है। इनका पाषाण भूरा वलुआ है। यहां का कुमारी पर्वत वहुत काल से तीर्थभूमि रहा है। भगवान पार्श्वनाथ का इस प्रदेश में कई वार विहार हुआ था और वह इस पर्वत पर भी पधारे थे। भगवान महावीर का समवसरण कुमारी पर्वत पर लगा था। खारवेल द्वारा जैन धर्म को संरक्षण देने और कलिंग वासियों की जैन धर्म के प्रति निष्ठा के कारण मुनियों का यहाँ आगमन निरन्तर लगा रहा। उन मुनिजनों को सुविधा के लिए खारवेल तथा उनके परिजिनों ने इन पहाड़ियों पर अनेक गुफाओं का निर्माण कराया था। किन्तु खण्डगिरि पर कुछ गुफाएं ९-१०वीं शताव्दी में भी निर्मित हुई थीं।

खण्डगिरि पर्वत

खण्डगिरि की पहाड़ी की चोटी पर चार आधुनिक मन्दिर बने हुए हैं। पहले मन्दिर के गर्भगृह में संगमरमर की वेदी में पांच सलेटी पाषाण की खडगासन जैन मूर्तियां विराजमान हैं। (१) ऋषभदेव की दो फुटी मूर्ति है तथा मुख कुछ खण्डित है। (२) ऋषभदेव, अवगाहना १५ इंच (३) शान्तिनाथ, अवगाहना १३ इंच सिर पर दो इंच का केश गुच्छक है जो अत्यन्त भव्य है और श्याम वर्ण है। (४) पार्श्वनाथ, अवगाहना १३ इंच। सिर पर सात फणावली शोभित है। (५) तीर्थंकर मूर्ति लाँछन नहीं है।—दूसरा मन्दिर, वड़ा है, मण्डप में वेदी पर वीर सं० २४७९ की श्वेत पाषाण की महावीर स्वामी की प्रतिमा विराजमान है, गर्भगृह में मुख्य वेदी पर मध्य में मूलनायक ऋषभदेव तीर्थंकर की वीर सं० २४६९ की पद्मासन प्रतिमा तीन फुट अवगाहना की है। इसके अतिरिक्त मूर्तियाँ विराजमान हैं। गर्भगृह में दायीं ओर एक झरोखे में ढाई फुट के एक शिलाफलक पर तीर्थ-

करों की प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। वायीं ओर के झरोखे में भगवान नेमिनाथ की गोमेद, यक्ष और अम्बिका यक्षी सुखासन से बैठ हैं।—तीसरा मन्दिर वायीं ओर है। वेदी पर कोई प्रतिमा नहीं है, आगे एक शिलाफलक पर २४ तीर्थंकरों के चरण चिन्ह बने हुए हैं।—चौथा मन्दिर, उसमें १३ फुट की कायोत्सगसिन पार्श्वनाथ की श्याम वर्ण प्रतिमा वि० सं० २४७६ को विराजमान हैं।

(गुफा न० १) टटावा अथवा तोता गुफा—बाहर की ओर एक बरामदा है तथा अन्दर प्रकोष्ठ ११ फुट लम्बा और साढ़े ६ फुट चौड़ा है, दो द्वार हैं।

(गुफा न० २) टटोवा गुफा—के वायीं ओर सीढ़ियों से चढ़कर है। गुफा साढ़े १५ फुट एवं सात फुट की है। बायीं ओर प्रवेश द्वार के ऊपर वृक्षों के बीच सिंह, अंकित है, मध्य में चार हाथी और दायीं ओर दो वृषभ बने हुए हैं।

(गुफा न० ३) अनन्त गुफा उन्हीं सीढ़ियों से उतर कर ३ तक पहुँचा जाता है। यह २२ फुट लम्बी और ६ फ़ुट चौड़ी है। बाहर बरामदा है और अन्दर १ प्रकोष्ठ है। संथापत्य कला की दृष्टि से खण्डगिरि की गुफाओं में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। प्रकोष्ठ के पृष्ठ भाग की दीवार पर साढ़े २ फुट ऊँची खडगासन जिन-प्रतिमा बनी हुई है। मूर्ति भगवान सुपार्श्वनाथ की प्रतीत होती है। एक स्त्री की मूर्ति है जो चार अश्वों के रथ को चला रही है।

(गुफा न० ४) टेंटुली गुफा—पहले एक गुफा है, जिसका कोई नाम नहीं है। फिर कुछ ऊँचाई पर स्थित है। प्रतिकोष्ठ साढ़े ६ फ़ुट चौड़ा और ८१ फुट लम्बी है।

(गुफा नं० ५) गुफा नं० ४ से आगे है, यह ६ फुट चौड़ी और १५ फुट लम्बी है। इसमें चार प्रकोष्ठ हैं। नीचे के प्रकोष्ठों की ऊँचाई ६ फट २ इंच है और ऊपर के प्रकोष्ठों की ४ फ़ुट ८ इंच है।

(गुफा नं० ६) ध्यान गुफा—नं० ५ के दक्षिण में है, यह एक

हाल जैसी है । इसकी वायीं ओर की दीवार पर शंख लिपिका एक लेख उत्कीर्ण है ।

(गुफा नं० ७) नवमुनि गुफा ६ से आगे है। इसमें ६ तीर्थकरों की मूर्तियां है। पहले इसमें दो प्रकोष्ठ और वरामदा था । बाद में बीच की दीवारों को हटाकर यह हाल जैसा बना दिया है । पिछली दीवार में गणेश मूर्ति है, तीर्थंकर मूर्तियों की केशावली नाना प्रकार की है । इस गुफा में ५ शिलालेख उत्कीर्ण हैं ।

(गुफा नं० ८) बारा भुजी गुफा—नं० ७ से मिली हुई है तथा जैन मन्दिर से आने वाली सीढ़ियों की बंगल में है। वरामदे के दायीं ओर एक दीवार पर बारह भुजी दो शासन देवियों की मूर्तियाँ बनी हुई हैं। वर्तमान रूप में कक्ष की चौड़ाई ७ फुट और लम्बाई २१ फुट है। प्रकोष्ठ में वायीं ओर की दिवार में ५ तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं, पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मुद्रा में ३ फुट ७ इंच ऊँची प्रतिमा है यही मूर्ति सबसे बड़ी है । इससे आगे इस दीवार पर १७ पद्मासन मूर्तियाँ हैं, प्रत्येक के नीचे लाँछन अंकित है। दायीं ओर की दीवार पर पार्श्वनाथ और भगवान महावीर की पद्मासन मूर्तियाँ बनी हुई हैं। अवगाहना प्राय: ९।। फुट है। वरामदे में वायीं और दायीं ओर की दीवारों में चक्रेश्वरी और रोहिणी देवी विराजमान हैं उनके शीर्ष भाग पर क्रमश: ऋषभदेव और अजितनाथ की मूर्ति बनी हुई हैं।

(गुफा नं० ९) महावीर गुफा नं० ८ से मिली हुई है इसमें २४ तीर्थंकरों की मूर्तियां बनी हुई हैं जिनमें ८ कायोत्सर्ग मुद्रा में और शेष पद्मासन में है। इनके अतिरिक्त ३ प्रातिमाएँ आदिनाथ जी की हैं।

(गुफा नं० १०) गुफा ध्वस्त दशा में पड़ी हुई है। केवल एक पहाड़ी दीवार शेष है। उसके ऊपर लगभग १५ फुट ऊँचाई पर ऋषभदेव की २ तथा एक अम्बिका की प्रतिमाएँ दिखाई पड़ती हैं।
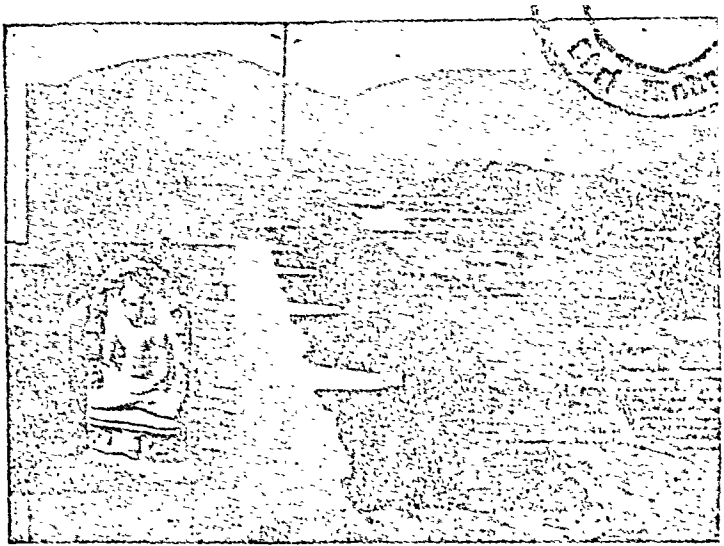
वैभारगिरि पर ८वीं शताब्दी का उत्खनन मन्दिर
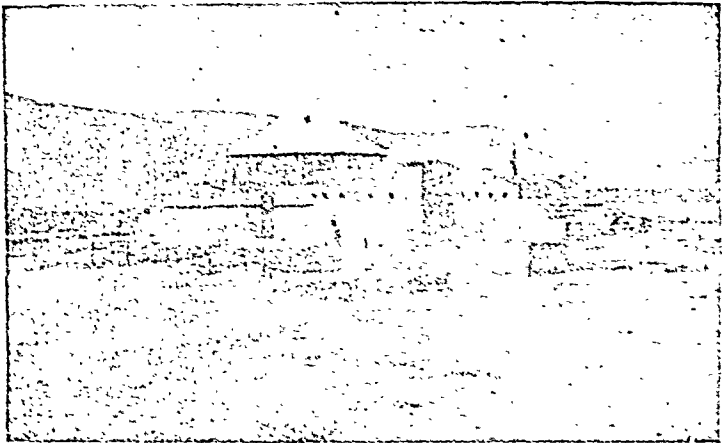
मनियार मठ प्राचीन मन्दिर राजगृह
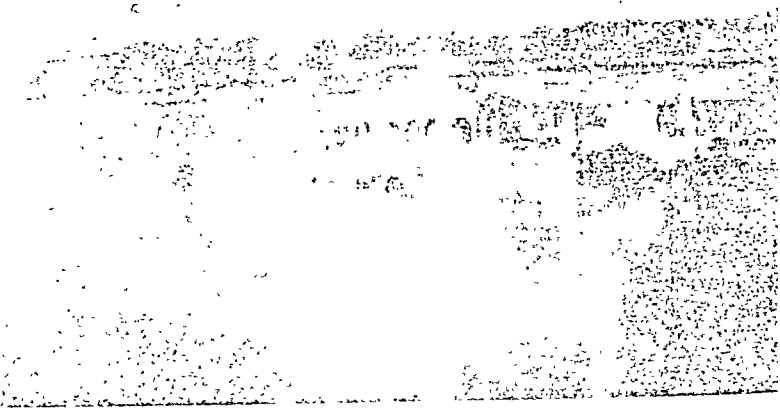
जल मन्दिर पावापुरी

स्वर्णगिरि पर्वत पर जैन मन्दिर

(गुफा नं० ११) लालटेन्दु केशरी गुफा—१० से जरा सा घूमने पर है, इसकी भी दशा अच्छी नही है। पृष्ठ दीवार पर वायीं ओर ५ तीर्थंकर खडगासन मूर्तियाँ हैं तथा एक क्षतिग्रस्त पांच पंक्तियों का शिलालेख है। इ के निकट ही आकाश गंगा नामक कुण्ड है।

(गुफा नं० १२-१३) आकाश गंगा से थोड़ा आगे जाने पर राधा कुण्ड है, इसके दक्षिण-पश्चिम किनारे पर नं० १२ स्थित है और इसमें दो कक्ष हैं। इसी से मिली नं० १३ है तथा इसमें भी दो कक्ष हैं। आगे का भाग गिर चुका है। राधा कुण्ड की वगल से ऊपर को लगभग १०० गज जाकर प्राकृतिक गुफा है। इसमें जल भरा हुआ है और श्याम कुण्ड कहते हैं।

(गुफा नं० १४) इकादशी गुफा—आगे से खुली है।

(गुफा नं० १५) पश्चिम की तरफ पहाड़ी की तलहटी के पास है। गुप्त गंगा कुण्ड है तथा ३ छोटी गुफायें हैं।

उदयगिरि

ऊपर जाने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। दायीं ओर मुड़ जाना चाहिए वहां से कुछ बायें पर गुफा नं० १ है।

(गुफा नं० १) **रानी गुफा**—यहाँ की गुफाओं में यह सवसे वड़ी और सुन्दर गुफा दो खण्ड की है। इसका दक्षिण-पूर्व पार्श्व खुला हुआ है। तीन दिशाओं में प्रकोष्ठ बने हुए हैं। नीचे के खण्ड में कुल आठ प्रकोष्ठ हैं तथा ऊपर के खण्ड में छह। इस गुफा की ख्याति इसके स्थापत्य के कारण नहीं, अपितु पाषाण में किये गये विविध और मनोरम दृश्यांकनों के कारण है। प्रवेश-द्वारों के तोरण अत्यन्त अलंकृत हैं। यहाँ अनेक भव्य दृश्य सुन्दरता से अंकित किये हैं। इन सारे दृश्यों को एक सूत्र में पिरोकर देखा जाये तो लगता है ये दृश्य सम्राट खारवेल की दिग्विजय से सम्वन्धित प्रतीत होते हैं। शिल्प-चातुर्य और कला की दृष्टि से यदि दोनों खण्डों की तुलना की जाये

तो नीचे के खण्ड की अपेक्षा ऊपर के खण्ड के शिल्पकार और कलाकार अधिक कल्पनाशील और चतुर थे।

(गुफा नं० २) **बाजधर गुफा**—नं० १ के समीप है, २ प्रकोष्ठ और १ बरामदा है।

(गुफा नं० ३) **छोटा हाथी गुफा**—नं. २ के बायीं ओर है। तोरणों पर हाथियों, कमलों आदि का अंकन अत्यन्त भव्य है।

(गुफा नं. ४) **अलकापुरी गुफा**—नं. ३से मिली हुई है। इसमें ऊपर-नीचे तीन प्रकोष्ठ हैं—एक नीचे और दो ऊपर। स्तम्भों पर कुछ अद्भुत चित्रांकन मिलता है. एक स्थान पर दो मुक्तावलियाँ जूड़े में सुशोभित है।

(गुफा नं. ५) **जयविजय गुफा**—गुफा नं. ४ की ऊपरी मंजिल के निकट है। नीचे-ऊपर दो-दो कक्ष हैं तथा स्तम्भ आधुनिक हैं। इसके पास ३ गुफाएं हैं, जो अच्छी दशा में नहीं हैं।

(गुफा न. ६) **पनासा गुफा**—नं. ५ से आगे है। सामने पनस वृक्ष है।

(गुफा नं. ७) **ठकुरानी गुफा**—दो खण्ड की हैं दूसरे खण्ड की अच्छी दशा है।

(गुफा नं. ८) **पातालपुरी गुफा**—इसमें ५ प्रकोष्ठ हैं।

(गुफा नं. ९) **मंचपुरी और स्वर्गपुरी गुफा**—सीढ़ियाँ चढ़कर उत्तर की ओर है, दो खण्ड की है। नीचे के खण्ड को मंचपुरी और ऊपर के खण्ड को स्वर्गपुरी कहते हैं।

(गुफा नं. १०) **गणेश गुफा**—सीढ़ियों से चढ़कर दायीं ओर यह गुफा है, यह नाम गणेश के कारण पड़ा है जो दायीं ओर के प्रकोष्ठ में उत्कीर्ण है। बरामदे की दीवार पर रानी गुफा के समान एक दृश्य उत्कीर्ण है। एक कक्ष में तीर्थंकर मूर्ति है तथा ९वीं शताब्दी का लेख है।

(गुफा नं० ११) **जम्बेश्वर गुफा**—नं० १० के पास दायीं ओर

कुछ ऊपर चढ़ने पर प्राचीन मन्दिर के भग्नावशेष है उससे उतरने पर जम्वेश्वर गुफा है।

(गुफा नं० १२) बाघ गुफा, बाघ के खुले हुए मुख के समान आकार है।

(गुफा नं० १३) सर्पगुफा, दो कक्ष हैं, द्वार पर सर्प अंकन है

(गुफा नं १४) हाथी गुफा—यह प्राकृतिक खुली गुफा है। वाद में इसमें वरामदा वनाया गया है। गुफा ५२ फुट लम्बी और २८ फुट चौड़ी तथा द्वार की ऊँचाई साढ़े ग्यारह फुट है। वरामदे के माथे पर ऐल सम्राट खारवेल का प्रसिद्ध एवं ऐतिहासिक शिलालेख है। इस शिलालेख में १७ पंक्तियाँ हैं। इस गुफा का महत्व कला की दृष्टि से न होकर इस शिलालेख के कारण है।

(गुफा नं० १५) धानघर गुफा—नं० १४ के दायीं ओर सीढ़ियां चढ़कर एक लम्बा कक्ष है, जिसमें तीन प्रवेश द्वार, वरामदा और दो स्तम्भ हैं।

(गुफा नं० १६) हरिदास गुफा--विगत शताब्दी में हरिदास नामक किसी साधु ने इस पर अनधिकृत रूप से अधिकार कर लिया था।

(गुफा नं० १७) जगन्नाथ गुफा—इसकी भीतरी दीवार पर जगन्नाथ जी का चित्र वना हुआ हैं। इस कारण यह नाम पड़ गया।

(गुफा न० १८) रसोई गुफा—इसमें एक छोटा सा कक्ष है।

खंडगिरि के दक्षिण-पश्चिम में नीलगिरि पर ३ गुफाएँ हैं। एक लेख के अनुसार १०-११वीं शताब्दी तक यह दोनों पर्वत 'कुमार एवं कुमारी पर्वत' कहलाते थे। तलहटी में सुन्दर धर्मशाला तथा मन्दिर हैं।

पुरी

पुरी, हिन्दुओं के चार परम पवित्र धामों में एक धाम जगन्नाथ

पुरी माना जाता है। भुवनेश्वर से पुरी ६२ कि० मी० है। मन्दिर में चारों दिशाओं में चार विशाल द्वार हैं, शिखर की ऊँचाई २१४ फुट है तथा चड़ा पर नीलचक्र सुशोभित है। मुख्य मन्दिर को निज मन्दिर कहा जाता है। निज मन्दिर के दक्षिण द्वार के वाहर दीवार में भगवान ऋषभ देव की एक फुटी मूर्ति विराजमान है। मन्दिर पण्डों तथा पब्लिक रिलेशंस आफीसर आदि की धारणानुसार इस मन्दिर का निर्माण महाराज खारवेल ने ऐतिहासिक 'कलिंगजिन' की मूर्ति विराजमान करने के लिए कराया था। निज मन्दिर की वेदी में वलराम, सुभद्रा, और जगन्नाथ जी (श्री कृष्ण) विराजमान हैं। वेदी पर एक ओर छह फुट लम्वा सुदर्शन चक्र रखा है। तीनों ही मुख्य मूर्तियां अपूर्ण है। ये दारु विग्रह हैं, अर्थात लकड़ी के वने हुए हैं। जगन्नाथ जी का कलेवर वर्ष में एक वदला जाता है। जो पन्डा कलेवर वदलता है, उसकी आंखों पर पट्टी बांध दी जाती है। वह टटोलकर पुराने कलेवर के हृदय के स्थान से एक छोटी मूर्ति निकाल कर नये कलेवर में हृदय के स्थान पर रख कर उसे बंद कर देता है। आँखों पर पट्टी बांधने का कारण यह बताया जाता है कि यदि कोई विग्रह परिवर्तन करते हुए देख ले तो वह और उसका सारा परिवार नष्ट हो जाता है।

इतिहास ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में 'कलिंग जिन' नाम एक प्रतिमा थी। और वस्तुतः वह जैन तीर्थंकर ऋषभ देव की मूर्ति नीलममणि की थी यह जिन मूर्ति ही कलिंग के अधिवासियों की आराध्य देवता थी। नन्द वंश के प्रतापी सम्राट महापद्मनन्द ने जव कलिंग को पराजित किया तो वह इस मूर्ति को अपने साथ ले गया। इस घटना के लगभग ३०० वर्ष पश्चात् खारवेल ने मगध पर आक्रमण करके वहसतिमित्र को हराया और उसने उस 'कलिंग-जिन' प्रतिमा को अपने साथ वापस लाकर वड़े उत्सव के साथ पहले कुमारी पर्वत (खण्डगिरि) पर जिनालय में

विराजमान किया था और पश्चात उसके लिए समुद्र तट पर एक भव्य जिनालय का निर्माण करके उसकी प्रतिष्ठा की थी। मूलत: यह वही मन्दिर है, जिसका निर्माण खारवेल ने 'कलिंगजिन' मूर्ति के लिए कराया था। केशरी वंश अथवा गंग वंश के राजाओं ने उसी का पुनरुद्धार अथवा पुनर्निर्माण कराया था, ऐसा लोगों का विश्वास है।

जैन दृष्टि में

दक्षिण भारत—महाराष्ट्र—गुजरात

भारत में ही नहीं, अपितु विश्व में ऐसे बहुत ही कम स्थान है जहां ऐतिहासिक घटनायें, स्थापत्य कलावैभव, धार्मिक चिन्ह और प्राकृतिक सौन्दर्य एक ही साथ ऐसे इकट्ठे हो जैसे की दक्षिण भारत में। यहाँ का वर्तमान युग का इतिहास इतना प्राचीन है जितना की स्वयं भारतवर्ष का होगा। श्रवणवेलगोला के चन्द्रगिरि पर्वत, चन्द्रगुप्त वस्ती तथा यहाँ के सैकंडों शिलालेख इसके इतिहास को भारत के दो प्रसिद्ध सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य एवं अशोक को संवोधित करते हैं, इसके पश्चात् यहाँ का इतिहास न मालूम, कितने राज-वंशों और युग प्रधान पुरुषों के इतिहास से संवद्ध रहा। मैसूर, कर्णाटक, महाराष्ट्र और गुजरात प्रदेश जैन धर्म का उनन्तशील प्रागंण रहा है। कदम्व, गंग, पल्लव, होयसल, राष्ट्रकुट और चालुक्य वंश के राजाओं के समय में इन प्रदेशों में जैन धर्म की दुंदुभि वजती थी। वैसे अतीव प्राचीन काल से जैन धर्म यहाँ प्रचलित रहा है दिगम्वर जैन सिद्धान्त का लिपिवद्ध अवतरण भी इन्हीं प्रान्तागर्त हुआ है।

वीजापुर

यह ऐतिहासिक नगर दक्षिण रेलवे की हुवली शोलापुर वाली लाईन पर स्थित है और इसका प्राचीन नाम विजयपुर है। यहाँ के कई राजा जैन धर्मावलम्वी थे। यहां दो विशाल जैन मन्दिर हैं। प्राचीन समय में जैन धर्म को राज-संरक्षण प्राप्त होने की वात की पुष्ठि यहां प्राप्त होने वाले जैन मन्दिरों के खण्डहरों, मूर्तियों तथा शिलालेखो द्वारा होती हैं।

शेषफणा पार्श्वनाथ (अतिशयक्षेत्र)

वीजापुर स्टेशन से लगभग ३ कि० मी० पर क्षेत्र अवस्थित है। यहाँ चौथे काल का एक मन्दिर जमीन के अन्दर है और इस मन्दिर की उपलब्धि एक श्रावक के स्वप्नानुसार हुई थी। मूलनायक भगवान पार्श्वनाथ की १०८ फणों की सातिशय प्रतिमा विराजमान है। मन्दिर छोटा होने पर भी करोड़ों रुपये की लागत का है। कारीगरी दर्शनीय है। मूलनायक के अतिरिक्त अनेक प्राचीन मूर्तियाँ हैं।

वादामी (अतिशयक्षेत्र)

दक्षिण रेलवे की हुवली शोलापुर वाली छोटी लाईन पर वादामी स्टेशन अवस्थित है। स्टेशन से लगभग ढाई कि० मी० की दूरी पर वादामी ग्राम है। ग्राम के पूर्वदक्षिण में दो-दो प्राचीन पहाड़ी किले हैं। दक्षिण वाली पहाड़ी पर शैव एवं जैन गुफा मन्दिर हैं। पहले दो गुफा मन्दिरों में शिव, वराह और वामन की मूर्तियाँ हैं। तीसरी गुफा से अनूठी चित्रकारी है। चौथी गुफा मन्दिर सवसे ऊँचा है, इसमें चार दालान हैं, पहले में जिनेन्द्र देव की एक पद्मासन

मूर्ति सिंहासनाधिष्ठित है। दूसरे दालान में चौवीस प्रतिमा और भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमाएं मुख्य हैं। तीसरे दालान में वाहुवली स्वामी की लगभग सात फुट अवगाहना की विशाल प्रतिमा विराजमान है और सामने श्री पार्श्वनाथ स्वामी की कायोत्सर्ग प्रतिमा सात फुट ऊँची है। चौथे दालान में सैकड़ों दर्शनीय प्रतिमाएँ हैं। निकट में ही मलप्रभा नदी के किनारे भी कई प्राचीन मन्दिर हैं। वादामी चालुक्य नरेशों की राजधानी रही है। इन नरेशों से कई जैन धर्मावलम्वी थे और उन्होंने जैन मन्दिरों का निर्माण कराया था।

वावानगर (अतिशयक्षेत्र)

यह क्षेत्र वीजापुर से लगभग २७ कि० मी० पर अवस्थित है। यहाँ एक प्राचीन दि० जैन मन्दिर है जिसमें हरितवर्ण पद्मासन डेढ़ हाथ ऊँची भगवान पार्श्वनाथ की अति मनोज्ञ सातिशय प्रतिमा विराजमान है। यहां के अतिशय के वारे में लोकोक्ति है कि एक मुसलमान वादशाह ने इस मन्दिर को विध्वंश कर उसमें विराजमान सभी मूर्तियों को वावड़ी में फिकवा दिया, परन्तु केवल हरितवर्ण प्रतिमा को खिलौने सदृश रखने के लिये साथ ले गया। वाद में किसी समय उसकी वेगम के उदर शूल की पीड़ा उठी। जव वहुत इलाज से भी दर्द शान्त नहीं हुआ तो किसी पुरोहित को स्वपन हुआ की उपयुक्त हरितवर्ण प्रतिमा का अभिषिक्त जलपान करने से शूल शान्त हो जावेगा। वैसा ही किया गया और वेगम का उदरशूल शांत हो गया। इस वात से प्रभावित होकर वादशाह ने उसी स्थान पर नवीन मन्दिर का निर्माण कराकर इस प्रतिमा को श्रद्धापूर्वक विराजमान कराया।

हुगली आरटाल अतिशय क्षेत्र

दक्षिणी रेलवे पर हुबली जंक्शन स्टेशन है। यहाँ चार जैन मन्दिर जी दर्शनीय हैं। आरटाल, हुबली नगर से लगभग ३८ कि० मी० दूरी पर अवस्थित हैं। नगर में एक प्राचीन मन्दिर में भगवान पार्श्वनाथ की सातिशय प्रतिमा है। इस मन्दिर को चालुक्य काल में मुनि कनकचन्द्र के उपदेश से बोभसेट्टि ने निर्माण कराया था।

हैदराबाद

वर्तमान हैदराबाद नगर का निर्माण १५६२ ई०में हुआ था। मूसा नदी के किनारे पर अवस्थित है। नगर में हुसैन साहिब की दंगा के निकट केशर वाग में एक जैन धर्मशाला एवं दो जैन मन्दिर हैं, एक मन्दिर वेगम वाजार की घास मंडी में, एक मन्दिर साहूकारी कार-वार सब्जी के निकट पारस वाग में, एक चारकबान गुलज़ार हाऊस के निकट तथा एक मन्दिर चार घाट में मिनर्वा सिनेमा के निकट है। अन्य दर्शनीय स्थान, चारमीनार, सलारजंग संग्रहालय, अजैन्ता पवेलियन, विधान सभा भवन, सिकंदरावाद, हिमायत सागर, हुसैन साग र, उस्मान सागर, गोलकंडा का किला आदि।

हलेबिड (विजयापार्श्वनाथ)

हलेविड (हालेविद) श्रवणवेलगोल से १०२ कि० मी० और वेलूर से १६ कि० मी० तथा दक्षिण रेलवे की बंगलौर सिटी—पूना लाईन पर वणावर स्टेशन से २६ कि० मी० दूरी पर अवस्थित है। कोई समय था जव इस नगर के आस पास ७२० जिन मन्दिर थे। होयसल

नरेश विष्णुवर्द्धन के समय में सन् ११११—४१ ईसवी में हलेबिड उसकी राजधानी थी। पहले यह जैनधर्मानुयायी था, किन्तु १११७ में रामानुज के प्रभाव में आकर वैष्णव धर्म अंगीकार करके जैन मन्दिरों का ध्वंस कराया तथा अगणित जैनियों को मृत्यु के घाट उतारा। 'स्थलपुराण' के अनुसार विष्णुवर्द्धन के अत्याचार और संताप के कारण हलेविड के दक्षिण में कई बार भूकम्प आये और पृथ्वी का कुछ अंश भू-गर्भ में समा गया। यद्यपि विष्णुवर्द्धन ने कई बार शाँति-यज्ञ कराया, पर कोई लाभ नहीं हुआ। अन्त में विष्णुवर्द्धने जैन धर्म का विरोध न करने की प्रतिज्ञा ली।

विष्णुवर्द्धन के सेनापति ग ंराज ने सन ११३३ में अपने पिता की स्मृति में २३वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के मन्दिर का निर्माण कराया था, जिसमें भगवान पार्श्वनाथ की खडगासन १५ फुट अव-गाहना, कृष्ण पाषाण की मनोज्ञ प्रतिमा विराजमान है। इस मन्दिर के १४ स्तभ कसौटी के पत्थर के हैं। आगे के दो स्तम्भों पर पानी डालने से उनका रंग काले से हरा हो जाता है, तथा स्तम्भों में मनुष्य की उल्टी और फैली हुई छाया दिखाई देती है। मन्दिर यद्यपि वाहर से सादा है, किन्तु अन्दर की कला दर्शनीय है। कहते हैं जिस दिन इस मन्दिर की प्रतिष्ठा हुई, उसी दिन विष्णुवर्द्धन को एक युद्ध में विजय तथा पुत्र की प्राप्ति हुई। इस हर्षोपलक्ष में उसने भगवान पार्श्वनाथ के दर्शन किये और मन्दिर का नाम 'विजयापार्श्वनाथ' रखा। इसके अतिरिक्त मध्य के मन्दिर में भगवान ऋषभदेव का मन्दिर है जिसे हेगडे मल्लिमाया ने सन् ११३८ में वनवाया था तृतीय मन्दिर १२०४ का है तथा इसमें १४ फुट अवगाहना की भगवान शान्तिनाथ की खड्गासन प्रतिमा विराजमान हैं—एक शिलालेख एवँ मानस्तम्भ पर गोम्मटेश्वर की मूर्ति है। जैन मन्दिरों के अतिरिक्त होय्सलेश्वर मन्दिर की चतुर कारीगरी समस्त संसार में इतने स्थान में इससे अधिक कारीगरी का मन्दिर अन्यत्र नहीं

मिलता इसमें एक जगह ७०० फुट लम्बाई में रामायण के दृश्यों का अँकन दिखाया है।

विनाश—अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति मलिक काफूर ने १२९० में तथा १३२६ में मोहम्मद तुगलक ने मन्दिरों को नष्टभ्रष्ट किया। इन अत्याचारों की कहानियाँ मदूरा के प्रसिद्ध मीनाक्षी मन्दिर की भीतों पर अंकित की गई है। आज भी यहाँ जैन मन्दिरों के इतने अधिक भग्नावशेष बिखरे पड़े हैं जिनकी गिनती करना असंभव है। केवल इतना अवश्य याद दिलाते हैं, कि यह विशाल नगरी कभी जैन संस्कृति की राजधानी थी।

मैसूर

दक्षिण रेलवे पर जंक्शन मैसूर स्टेशन तथा राज्य का मुख्य नगर है। यहाँ के मुख्य तथा कलापूर्ण मन्दिर दर्शनीय है। नगर के मध्य दोड़पेट में घंटाघर के समीप जैन धर्मशाला है तथा उसके ऊपर एक जैन मन्दिर है। एक अन्य मन्दिर राज्यमहल के सामने है।

दर्शनीय स्थान—चामूँडी पर्वत लगभग ९ कि० मी० है आधे रास्ते में नन्दी की विशाल मूर्ति है, शिखर पर चामूंडेश्वरी का मन्दिर, राजेन्द्रा विलास महल, असुर महेशासुरा की मूर्ति है। चिड़िया घर-राज्य भवन—ललिता महल—तथा अनेक राजकीय फैक्टरियां आदि हैं। मैसूर से १६ कि० मी० पर कृष्णासगार डैम पर भारत का विख्यात वृन्दावन गार्डन' है।—मैसूर में दशहरे का उत्सव बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है और वास्तव में उसी समय मैसूर देखने का आनन्द आता है।

गोम्मट पुरा अतिशय क्षेत्र

यह क्षेत्र मैसूर से ४ कि० मी० की दूरी पर है। इस ग्राम की

छोटी सी पहाड़ी है, जिसकी चोटी हर एक जीर्ण मन्दिर है। इस मन्दिर में १५ फुट अवगाहना की खड्गासन बाहुबली स्वामी की अति मनोज्ञ प्रतिमा है जिस को यहां के निवासी प्रतिवर्ष तैलादि से, अभिषेक करते हैं। कहा जाता है कुछ लोगों ने यहां पर बलिदान करने का विचार किया था, उसी समय वज्रघात ने पहाड़ी के दो टुकड़े कर दिये। इससे भयभीत होकर उन्होंने बलिदान का विचार त्याग दिया।

बंगलौर

मद्रास-बंगलौर लाइन पर मैसूर राज्य का प्रमुख नगर है। यहां कई विशाल मन्दिरों में प्राचीन प्रतिमाएँ विराजमान है। स्टेशन से २ फर्लांग पर एक विशाल धर्मशाला है। यहाँ से लगभग २ कि० मी० नगर के मध्य में आनन्द भवन के सामने दीवानखाना गली में एक विशाल जैन मन्दिर एवं दो धर्मशालाएँ है। दर्शनीय स्थान—कूब्बन पार्क, लाल बाग, राजकोय संग्रहालय, राजमहल, विधान सुधा भवन, टिपू सुल्तान का महल आदि।

श्रवणबेलगोल (जैन बद्री)

श्रवणवेलगोल एवं जैन बद्री आरसोकेरी स्टेशन से ६७ कि० मी० हासन से ५० कि० मी० चिनार्यपट्टन से १३ कि० मी० बंगलौर से १६० कि० मी० तथा मैसूर से लगभग १०० कि० मी० दूरी पर अवस्थित है। प्राचीन और रमणीक सुप्रसिद्ध धार्मिक स्थान, यहा के शिलालेख, भव्य तथा पवित्र मन्दिर, प्राचीन गुफाएँ और विशाल मूर्तियां ये सब न केवल जैन पुरातत्व की दृष्टि से अपना महत्व रखते

है, अपितु भारत की सभ्यता, संस्कृति तथा इतिहास का भी घनिष्ट सम्वन्ध है। श्रवणवेलगोल विंध्यगिरि और चन्द्रगिरि दो पर्वतों की तलहटी में एक सुन्दर और स्वच्छ सरोवर पर स्थित है।

भगवान महावीर के निर्वाण के लगभग १६० वर्ष पश्चात् सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य ने ई० पू० २९६ से ३२१ तक उत्तर भारत में राज्य किया। एक रात्रि को उन्हें १६ स्वप्न दिखाई पड़े जिनके फलादेश आचार्य भद्रवाहु ने वताया कि उत्तर भारत में १२ वर्षों का भीषण दुष्काल पड़ेगा। इस कारण चन्द्रगुप्त ने संसार से विरक्त होकर भद्रवाहु स्वामी से दीक्षा ग्रहण करली। भद्रवाहु आचार्य अपने १२००० शिष्यों सहित १२ वर्ष के दुर्भिक्ष से वचने के लिये उत्तर भारत से दक्षिण देश चले आये। विहार करते हुए श्रवणवेलगोला पहुँचे, उस समय उन्हें ज्ञात हुआ कि उनका मृत्युकाल समीप है, इसलिये अकेले चन्द्रगुप्त को अपनी वैतावृत्य के लिये रखकर वाकी के सव शिष्यों को विशाखाचार्य की अध्यक्षता में चोल और पाण्ड राज्यों में भेज दिया। उसके पश्चात भद्रवाहु स्वामी ने चन्द्रगिरि पर एक गुफा में समाधिमरण कर निर्वाण को प्राप्त हुए। चन्द्रगुप्त ने १२ वर्षों तक उग्र तप करके इसी पर्वत से मोक्ष पधारे।

वाहुवली पोदनपुर के नरेश और प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के पुत्र थे। इनके ज्येष्ठ भ्राता भरत थे। देखें पोदनपुर के विवरण में। भगवान ऋषभदेव के दीक्षित होने के पश्चात भरत और वाहुवली में साम्राज्य के लिए युद्ध हुआ, इसमें वाहुवली की विजय हुई, पर संसार की गति से विरक्त हो उन्होंने दीक्षा लेली और कुछ समय पश्चात उन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हो गया। भरत जो अव चक्रवर्ती हो गए थे, पोदनपुर में स्मृति रूप उनकी शरीराकृत के अनुरूप ५२५ धनुष प्रमाण की एक प्रतिमा स्थापित कराई, समयानुसार मूर्ति के आसपास का प्रदेश कुक्कुट सर्पों से व्याप्त हो गया, जिससे उस मूर्ति का नाम कुक्टेश्वर पड़ गया। धीरे-धीरे यह मूर्ति लुप्त हो गई

और उसके दर्शन केवल मुनियों को ही मंत्रशक्ति से प्राप्त होते थे।

भगवान वाहुबली तीर्थंकर नहीं थे, फिर भी क्यों पूज्य हुए, इसका कारण स्पष्ट ही हैं। इस अवसर्पिणी काल में सबसे प्रथम कामदेव तो ये हैं ही, परन्तु मोक्षगामी जीवों में भो यह सबसे प्रथम हैं। भगवान ऋषभदेव ने यद्यपि इनसे पहले दीक्षा ली थी, परन्तु उनसे भी पहले वाहुवली स्वामी ने मोक्ष प्राप्त की। इसी कारण मोक्षमार्ग के प्रणेता के रूप में तीर्थंकर नहीं भी होकर वे सर्वत्र पूज्य हुए।

चामुण्डराय गंगवंश के नरेश राचमल (चतुर्थ) के सेनापति एवं प्रधान मंत्री थे। 'भजवलिचरित' के अनुसार जैनाचार्य जिनसेन ने पोदनपुरस्थ मूर्ति का वर्णन चामुण्डराय की माता कालल देवी को सुनाया। उसे सुनकर प्रण किया कि जबतक गोम्मटदेव के दर्शन न कर लूंगी, दुग्ध नहीं लूंगी। चामुण्डराय ने यह सवांद अपनी पत्नी अजितादेवी के मुख से सुना और तत्काल गोम्मटेश्वर की यात्रा को प्रस्थान किया। मार्ग में उन्होंने श्रवणेवलगोला में भगवान पार्श्वनाथ के दर्शन किए। रात्रि को स्वप्न आया कि पोदनपुर वाली गोम्मटेश्वर की मूर्ति का दर्शन केवल देव कर सकते हैं। तुम मन, वचन, काय की शुद्धि से सामने वाले पर्वत पर स्वर्णवाण छोड़ो, गोम्मटेश्वर यहीं दर्शन देंगे। दूसरे दिन प्रातः काल ही चामुण्डराय ने ऐसा ही किया। स्वर्णवाण विन्ध्यागिरि के मस्तक पर जाकर लगा। वाण लगते ही शिखर कांप उठा, पत्थरों की पपड़ी टूट पड़ी और मैत्री, प्रमोद, और कारुण्ड का ब्रह्मा—विहार दिखलाता हुआ गोम्मटेश्वर का मस्तक प्रकट हुआ। तुरन्त असंख्य मूर्तिकार हीरे की एक-एक छेनी लेकर वहां आ गये। वाहुवलो स्वामी के मस्तक के दर्शन करते जाते थे। और आस पास के पत्थर उतारते जाते थे। कन्धे प्रकट हुए, छाती दिखाई देने लगी, विशाल वाहुओं पर लिपटी हुई माधवीलता दिखाई दी वे पेरों तक आ पहुंचे।

नीचे वामियों में से कुक्कुट सर्प निकल रहे थे, पर बिल्कुल अहिंसक। सब का हृदय-कमल खिल गया।

इसके पश्चात् अभिषेक की तैयारी हुई। उस समय एक वृद्धा महिला गल्लकायजी नाम की, एक नारियल की प्याली में अभिषेक के लिए अपनी गाय का दुग्ध ले आई और लोगों से कहने लगी कि मुझे अभिषेक के लिए यह दूध लेकर जाने दो, मगर कौन सुनता। वृद्ध निराश होकर घर लौट गई। अभिषेक का दिन आया पर चामुण्डराय ने जितना भी दूध एकत्रित कराया उससे अभिषेक न हुआ। हजारों घड़े दूध डालने पर भी दूध गोम्मटेश्वर की कटि तक भी न पहुंचा। चामुण्डराय ने घबरा कर प्रतिष्ठाचार्य से कारण पूछा। उन्होंने सोच कर बतलाया कि मूर्ति निर्माण पर जो तुम से कुछ गर्व की आभा-सी आ गई है। चामुण्डराय ने तुरन्त वृद्धा गुल्लिकाया को बुलाया और उससे कटोरी दूध से अभिषेक कराया, उस अत्यल्प दूध की धारा गोम्मटेश के मस्तक पर छोड़ते ही समस्त मूर्ति का अभिषेक हो गया।

विन्ध्यगिरि पर्वत एवं बाहुबली स्वामी की मूर्ति

विन्ध्यगिरि पर्वत, जिसे इन्द्रगिरि और दोड्डबेट भी कहते हैं समुद्र तट से ३३४७ और नीचे मैदान से ४७० फुट ऊँचा है। ऊपर चढ़ने के लिए ६०० सीढ़ी हैं। इसी पर्वत पर विश्वविख्यात ५७ फुट ऊँची खड्गासन गोम्मटेश्वर भगवान की सौम्य मूर्ति विराजमान है। बाहुबली स्वामी की मूर्ति का नाम गोम्मटेश्वर क्यों पड़ा? संस्कृत में गोम्मट शब्द मन्मथ (कामदेव) का ही रूपान्तर हैं। इसी कारण मूर्तियाँ गोम्मट नाम से प्रख्यात हुई। गोम्मटेश्वर की मूर्ति आज के लुब्ध संसार को देशना दे रही है कि परिग्रह और भौतिक पदार्थों की ममता पाप का मूल है। जिस राज्य के लिए भरतेश्वर ने मुझसे संग्राम किया, मैंने विजय कर भी उस राज्य को जीर्णतृणवत् समझ

कर एक क्षण में छोड़ दिया। यदि तुम शान्ति चाहते हो तो मेरे समान निर्द्वन्द्व होकर आतमरत हो।

भगवान बाहुबली की मूर्ति, उत्तराभिमुखी, खड्गासन, ध्यानस्थ प्रतिमा समस्त संसार की आश्चर्यकारी वस्तुओं में से एक है। सिर पर केशों के छोटे-छोटे कुन्तल, कान बड़े और लम्बे, वक्षःस्थल चौड़ा, नीचे लटकती हुई विशाल भुजाएँ और कटि किञ्चित क्षीण है। मूर्ति की आँखें, इसके ओष्ट, इसकी ठुड्डी, आँखों की भौंहें सभी अनुपम और लावण्यपूर्ण हैं। मुख पर अचंल ध्यान-मुद्रा अंकित है। मूर्ति क्या है मानों त्याग, तपस्या और शान्ति का प्रतीक है। इतने सुन्दर प्रकृति प्रदत्त पाषाण से इस मूर्ति का निर्माण हुआ है कि १००० वर्ष तक यह प्रतिमा सूर्य, मेघ, वायु आदि प्रकृति देवी की अमोघ शक्तियों से बातें कर रही है। उसमें किसी प्रकार की भी क्षति नहीं हुई और ऐसा प्रतीत होता है कि शिल्पी ने इसे अभी टांकी से उत्कीर्ण किया है।

यदि कोई मूर्ति अत्युन्नत (विशाल) हो, तो यह आवश्यक नहीं कि वह सुन्दर भी हो। यदि विशालता एवं सुन्दरता दोनों हों, तो यह आवश्यक नहीं कि उसमें अलौकिक वैभव भी हो। गोम्मटेश्वर की मूर्ति में विशालता, सुन्दरता और अलौकिक वैभव, तीनों ही संमिश्रण हैं। अतः गोम्मटेश्वर की मूर्ति से बढ़कर संसार में उपासना के योग्य क्या वस्तु हो सकती है? यदि माया (शची) न बना सकी, १,००० नेत्र वाला इन्द्र भी इनके रूप को देखकर तृप्त न हुआ हो और २००० जिह्वा वाला नागेन्द्र (अधिशेष) भी इनका गुणगान करने में असमर्थ रहा हो तो इस अनुपम और विशाल गोम्मटेश्वर के रूप का कौन चित्रण कर सकता है? —पक्षी भूलकर भी इस मूर्ति के ऊपर से नहीं उड़ते। बाहुबली के दोनों कानों में से केशर की सुगन्ध सी निकलती है। मूर्ति के चरणों पर पुष्पवृष्टि ऐसी प्रतीत होती है, मानो उज्जवल तारा समूह उनके चरणों की

वन्दना को आया हो।

(१) **परकोटा**—चामुण्डराय ने गोम्मटेश्वर की मूर्ति जब निर्माण करायी, इसके चारों ओर कुछ न था। पश्चात् सन् १११७ ई० में होयसल नरेश विष्णुवर्द्धन के सेनापति गंगराज ने मूर्ति की रक्षा हेतु एक परकोटे का निर्माण कराया। परकोटे के भीतर मण्डपों में २ फुट से लेकर ६ फुट तक की ४३ प्रतिमाएँ हैं। परकोटे के द्वार पर दोनों ओर छः छः फुट ऊँचे द्वारपाल हैं। बाहर ठीक सामने छः फुट की ऊँचाई पर ब्रह्मदेव स्तम्भ है और इसमें ब्रह्मदेव की पद्मासन मूर्ति है। ऊपर गुमटी है। स्तम्भ के नीचे पाँच फुट ऊँची गुलकायञ्जि की मूर्ति है।

(२) **सिद्धर वस्ती**—इस मन्दिर में तीन फुट ऊँची पद्मासन सिद्ध भगवान की प्रतिमा है, दोनों ओर छः फुट ऊँचे स्तम्भ हैं। अनेक लेख हैं।

(३-४) **अखण्ड बागिलु और सिद्धगुण्डु**—कन्नड में वागिलु का अर्थ दरवाजा है। यह दरवाजा एक अखण्ड शिला को काटकर बनाया गया है। द्वार के दोनों ओर बाहुबली और भरत की मूर्तियाँ हैं। वागिलु के दायीं ओर एक वृहत शिला को सिद्धरगुण्डु कहते हैं। इस शिला पर कई लेख हैं।

(५) **गुलकायञ्जिबागिलु**—द्वार पर एक बैठी हुई स्त्री की मूर्ति के नीचे शिलालेख है, जिसके अनुसार यह चित्र मल्लिसेट्टि की पुत्री का है। लेकिन कुछ लोग इसे गुल्लकायञ्जि से संबंधित करते हैं, जिसके एक कटोरी दुग्ध से भगवान बाहुबली की मूर्ति का मस्तकाभिषेक हुआ था।

(६) **त्यागदब्रह्मदेव स्तम्भ**—कला की दृष्टि से दर्शनीय है। यह ऊपर से इस प्रकार लटकाया गया है कि इसके नीचे रुमाल निकाला जा सकता है। स्तम्भ पर खुदे हुए शिलालेख में चामुण्डराय की वीरता एवं विजय का वर्णन है। स्तम्भ की पीठिका के दक्षिण
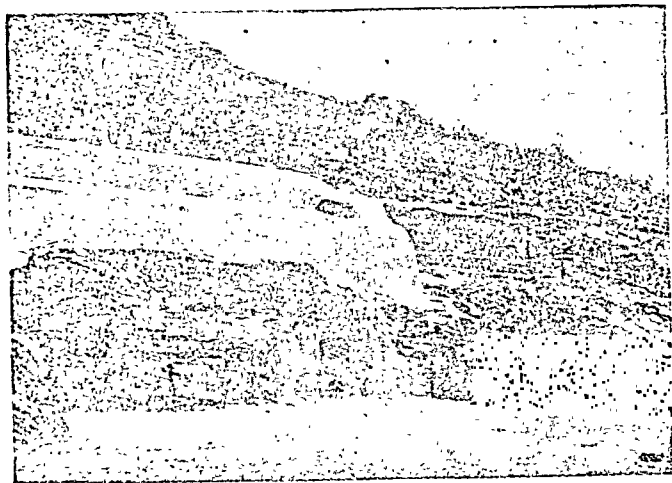
सोन भण्डार जैन गुफाएँ राजगृह
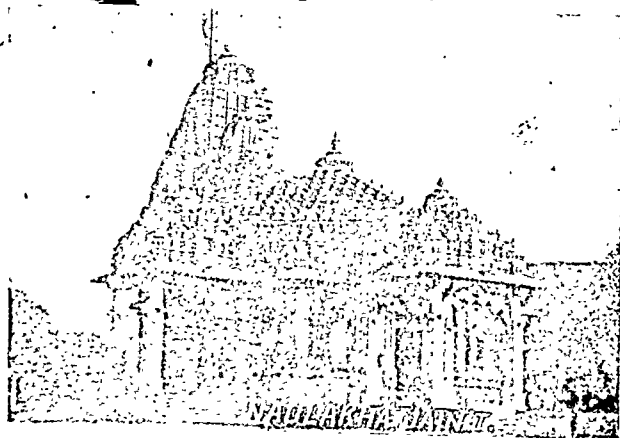
श्वेताम्बर नौलखा मन्दिर राजगृह

की ओर चामुण्डराय की मूर्ति है। सामने वाली मूर्ति उसके गुरु आचार्य नेम चन्द्र की कही जाती है।

(७) **चेन्नन्ण बस्ती**—त्यागद ब्रह्मदेव स्तम्भ से पश्चिम की ओर थोड़ी दूरी पर है। इसमें ढाई फुट अवगाहना की चन्द्रप्रभु भगवान की मूर्ति है एवं सामने एक मानस्तम्भ है। मन्दिर के उत्तर-पूर्व में और दो कुण्डों के मध्य में एक मण्डप बना हुआ है।

(८) **ओदेगल बस्ती**—इस मन्दिर में तीन गर्भगृह हैं, इसलिए इसे त्रिकुट वस्ती भी कहते हैं। ऊपर जाने हेतू सीढ़ियां हैं। दीवारों की मजबूती के लिए इसमें पाषाण के आधार है। बीच की वेदी में भगवान आदिनाथ की दायीं में शान्तिनाथ की और बायीं में भगवान नेमिनाथ की पद्मासन मूर्तियां हैं।

चौबीस तीर्थंकर बस्ती—इस मन्दिर में ढ़ाई फुट ऊँची पाषाण पर तीर्थंकरों की प्रतिमाएं उत्कीर्ण हैं। नीचे एक पंक्ति में तीन बड़ी मूर्तियाँ हैं। उनके ऊपर प्रभावली के आकार में २१ अन्य छोटी मूर्तियाँ हैं।

ब्रह्मदेव मन्दिर—विन्ध्यगिरि के नीचे सीढ़ियों के समीप छोटा सा देवालय है। इसमें सिन्दूर से रंगा हुआ एक पाषाण है, जिसे 'जारुगुप्पे अप्प' भी कहते हैं।

शिलालेख—श्रवणवेलगोल में लगभग ५०० शिलालेख जैन धर्म तथा उसके अनुयायिओं का गौरव प्रकट करते हैं। ये शिलालेख इतिहास, साहित्य और काव्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

बाहुवली स्वामी की मूर्ति का महामस्तकाभिषेक - कुछ वर्षों के अन्तराय से बड़ी धूम-धाम, बहुत क्रियाकाण्ड और भारी द्रव्यव्यय से होता है। अनेक शिलालेखों में विभिन्न कालों में महामस्तकाभिषेक का वर्णन मिलता है। इसमें दूध, दही, केला, पुष्प, नारियल नारियल का चूरा, घृत, चन्दन, सर्वोषधि, इक्षुरस, लालचन्दन बादाम, खारक, गुड़, शक्कर, खसखस आदि वस्तुओं से १००८ जल

के कलशों से अभिषेक कराया जाता है।

चन्द्रगिरि पर्वत

चन्द्रगिरि एवं चिक्कबेट पर्वत पर जैन मन्दिर ई० पू० तीसरी शताव्दी से लेकर १७ वीं शताव्दी तक के द्राविड़ स्थापत्य कला के उत्तम नमूने हैं। पर्वत केवल १७५ फुट ऊँचा है।

(१) पार्श्वनाथ वस्ती—यह सुन्दर एवं विशाल मन्दिर की लम्वाई ५६ फुट तथा चौड़ाई १६ फुट है। सप्तफणी नाग की छाया के नीचे भगवान पार्श्वनाथ की १५ फुट अवगाहना की मनोज्ञ प्रतिमा है। मन्दिर के सामने वृहत एवं सुन्दर मानस्तम्भ है।

(२) कत्तले एवं पद्मावती वस्ती—यह सबसे विशाल मन्दिर १२० फुट से ४० फुट का है। मूलनायक भगवान ऋषभदेव की छह फुट अवगाहना की पद्मासन मूर्ति बड़ी ही हृदय-ग्राही है। मन्दिर का निर्माण होयसल-नरेश विष्णुवर्धन के सेनापति गंगराज ने शक सं० १०४० में कराया था।

(३) चन्द्रगुप्त वस्ती—यहां का सबसे लघु जिनालय है किन्तु प्राचीनतम लगता है। भगवान पार्श्वनाथ की पद्मासन प्रतिमा विराजमान है तथा दायें-वायें कोठों में क्रमशः पद्मावती और कुष्मांडिनी देवी की मूर्तियां हैं। यहां सर्व प्रथम वशेषता ६० जालियो में श्रुतकेवली भद्रवाहु तथा मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त के कुछ जीवन-दृश्य उत्कीर्ण हैं, जो अपूर्व कौशल का नमूना है और इस वात का पूर्ण विश्वास योग्य प्रमाण है कि चन्द्रगुप्त मौर्य जैन थे।

(४) शान्तिनाथ वस्ती—इसमें भगवान शान्तिनाथ की मूर्ति खड्गासन १६ फुट अवगाहगा की विराजमान है।

(५) पार्श्वनाथ वस्ती—पार्श्वनाथ भगवान की तीन फुट ऊँची, जिसके ऊपर सप्तफणी नाग की छाया हो रही है विराजमान है।

(६) चन्द्रप्रभु वस्ती—मन्दिर का क्षेत्रफल ४३ से २५ फुट है

और चन्द्रप्रभु भगवान की तीन फुटी प्रतिमा विराजमान है। सम्भवत: यह वस्ती सन् ८०० के लगभग की है।

(७) चामुण्डराय वस्ती—यह विशाल भवन वनावट और सजावट से इस पर्वत पर सबसे सुन्दर है और भगवान नेमिनाथ की पांच फुटी मनोहर प्रतिमा विराजमान है। इसका निर्माण चामुण्डराय ने कराया था किन्तु प्रतिमा पर एक अन्य लेख सन् ११३८ के अनुसार गंगराज सेनापति के पुत्र 'एचण' ने कराया था। मन्दिर के ऊपर के खन्ड में भगवान पार्श्वनाथ की तीन फुट अवगाहना की मूर्ति है।

(८) शासन वस्ती—गर्भगृह में आदिनाथ भगवान की पाँच फुट ऊँची मूर्ति है तथा सुखनासी में यक्ष-यक्षिणी गौमुख और चक्रेश्वरी की प्रतिमाएँ है।

(९-१०) मीज्जगण्ण तथा एरकट्ट वसतियां—इनमें भगवान अन्ततनाथ की तीन फुट की तथा आदिनाथ स्वामी को मूर्ति पाँच फुट ऊँची, प्रभावली से अलंकृत हैं।

(११) सवतिगन्धवारण या गंधवारण वस्ती—का निर्माण विष्णुवर्द्धन नरेश की रानी शाँतलदेवी ने शक सं० १०४४ में कराया था। शान्तिनाथ स्वामी की मूर्ति प्रभावशाली-संयुक्त पाँच फुट ऊँची है।

(१२) तेरिन वस्ती—इसमें वाहुवली स्वामी की पाँच फुटी मूर्ति है। मन्दिर के सम्मुख रथाकार मंदिर पर चारों ओर ५२ जिन मूर्तियाँ खुदी हुई हैं।

(१३) भद्रबाहु को गुफा—अंतिम श्रुतकेवली भद्रवाहु स्वामी ने यहीं से देहात्सर्ग किया था। चरण अंकित हैं।

अन्य स्थल—(१४) शांतीश्वर वस्ती (१५) कूगेब्रह्मदेव स्तम्भ (१६) महानवमी मण्डप (१७) भरतेश्वर की मूर्ति (१८) इरवे ब्रह्मदेव मन्दिर (१९) कन्चिन दोणे (२८) लक्कि दोणें (२१)

चामुण्डराय ी शिला।

नगर के मन्दिर

इस पर्वत के उत्तर द्वार से उतरने पर जिननाथपुर जिसे होय्सल सेनापति गंगराज ने सन् १११७ में बसाया था, का पूर्ण दृश्य दिखाई पड़ता है। सेनापति रेचिमथ्या ने अतीत 'शान्तिनाथ बस्ती' नामक मन्दिर का निर्माण कराया, जो होयसल शिल्पकारी का अद्वितीय नमूना है। स्तम्भ भी कसौटी के पत्थर के हैं। इसी गांव के दूसरे छोर पर तालाब के किनारे 'ओरगल बस्ती' नामक मन्दिर है, जिस की प्राचीन प्रतिमा खण्डित हुई तालाब में पड़ी है एवं नई प्रतिमा विराजमान है।—श्रवणबेलगोल गाँव में कई दर्शनीय मन्दिर हैं। इनमें 'भण्डारी बस्ती, नामक मन्दिर सबसे विशाल है। इसके गर्भगृह में लम्बे, अलंकृत पाद-पीठ पर दो फुट ऊँची २४ तीर्थकरों की खड्गासन प्रतिमाएँ विराजमान है। मन्दिर के सामने एक अखण्ड शिला का मानस्तम्भ है। होयसल नरेश नरसिंह प्रथम के भण्डारी ने यहाँ मन्दिर बनवाया था।—अक्कन बस्ती' नामक मन्दिर भी होय्सल-शिला-शैली का है, इसमें सप्तफणमंडित भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा विराजमान है। इसके स्तम्भ-छत एवं दीवारों पर शिल्प-कला के अपूर्व कार्य हैं, इसका निर्माण काल सन् ११८१ का है। इस मन्दिर के प्रकार के पश्चिम भाग में 'सिद्धान्त बस्ती नामक मन्दिर है, जिसमें पहले सिद्धान्त ग्रन्थ रहते थे।—बाहर द्वार के पास 'दानशाले बस्ती' है, जिसमें पंचपरमेष्टी की मूर्ति विराजित हैं। नगर जिनालय' बहुत छोटा है। 'मंगईबस्ती, शान्ति नाथ स्वामी का मन्दिर है। चारुकीर्ति पण्डिताचार्य की शिष्या, राजमन्दिर की नर्तकी चूंड़ामणि ने १३२५ ई० में बनवाया था।—'जैनमठ' श्री भट्टारक चारुकीर्ति का निवास स्थान है। इसके द्वार मण्डप के स्तम्भों पर कौशल पूर्ण खुदाई का काम है। मन्दिर में तीन

गर्भगृह हैं, जिनमें अनेक जिनबिम्ब विराजमान हैं। इनमें 'नव देवता मूर्ति, अनुठी है।

वैणूर

वैणूर जैनों का प्राचीन क्षेन्द्र हलेबिड से लगभग ६६ कि० मी० तथा हासन स्टेशन से थोड़ी दूर अवस्थित हैं। भट्टारक चारुकीर्ति की प्रेरणा से १६०४ में चामुण्डराय के कुटुम्बी थिम्मराज ने गुरपुर नदी के वाएँ तट पर अत्यन्त मनोज्ञ और मनोहर ३७ फुट खड्गासन अवगाहना की भगवान वाहुवली की प्रतिमा प्रतिष्ठित कराई थी। इसके अतिरिक्त चार अन्य मन्दिर हैं, जिनमें सहस्रों प्राचीन मूर्तियाँ विराजमान हैं।

मूडबिद्री (श्री मुड़ विदुरे

यह अतिशय क्षेत्र एवँ जैनधर्म की संस्कृति का केन्द्र वैणूर से १९ कि० मी० दूरी पर अवस्थित हैं। यह नगर भी होयसल राज्यकाल में जैनों का प्रमुख केन्द्र था और चौटेर वंश के राजा राज्य करते थे जो कट्टर जैनधर्मी थे। इतिहास का प्रमाण है कि ई० पूर्व चौथी शताब्दी में श्रुतकेवली भद्रबाहु के शिष्यों ने तामिल, तेलुगु, कर्णाटक एवँ तौलव देशों में जाकर धर्म प्रचार किया था और यत्र-तत्र निवास किया था तव इस मूडविद्रो में भी जैन लोगों ने आकर वाणिज्य-व्यवसाय करते हुए अनेक जैन मन्दिरों का निर्माण कराया था। यह श्रावक जहाजों के द्वारा द्वीपांतर पश्चिम देशों में जाकर वाणिज्य करते थे और देशांतर जाते समय देवदर्शन के निमित रत्नों को जिन प्रतिमा अपने पास रखते थे। अंततः इनकी सुरक्षा हेतू यह विचार करके कि इन्हें घर में रखना उचित नहीं है, गुरुवत्तों नें सुरक्षित

रख जाते थे ।

मूडविद्री में प्राचीन मन्दिर १६ ही हैं तथा दो मन्दिर निकटवर्ती मार्नाडु और होंसगांड में हैं ।

गुरु वस्ती सिद्धान्त वस्ती

काल दोप से धन-जन-सम्पन्न मूडविद्री में भी जैनों का अभाव हो जाने से यहां के जिन मन्दिर चारों ओर पेड़ों और बाँस-वृक्षों से घिर गये थे । लगभग ८वीं शताब्दी में एक मुनिराज ने जहां आज गुरुवस्ती है, अन्योग्य स्नेह से खेलते हुये एक वांघ और गाय को देखा । यहाँ कुछ अतिशय का ध्यान करके घिरे हुए पेड़ों को कटवाया तब भगवान पार्श्वनाथ की हजारों वर्ष प्राचीन विशालकाय मनोज्ञ मूर्ति दृष्टिगोचर हुई । ई० सन् ७१४ में उसी स्थान पर मन्दिर बनवाकर उक्त मूर्ति की प्रतिष्ठा करके इस मन्दिर का नाम 'गुरु-वस्ती' रखा । पूर्वोक्त में ही धवल, जयधवल, एवं महाधवल नाम के महान ग्रंथ विराजमान होने से 'सिद्धान्त मन्दिर' भी कहते हैं । इस मन्दिर में नवरत्नों की ३७ प्रतिमाएं विराजमान हैं ! इनके दर्शन प्रायः दोपहर पश्चात् पंच लोग कुछ भंडार लेकर कराते हैं । यह रुपया मूडवद्री के मन्दिरों के जीर्णोद्धार पर व्यय होता है ।

(१) चन्द्रप्रभु, चांदी १० इंच (२) चन्द्रप्रभु चाँदी ८ इंच (३) पार्श्वनाथ सुवर्ण ७ इंच (४) चन्द्रप्रभु सुवर्ण ६ इंच (५) पंचप्रमेष्ठी कि पांच सवर्ण १० इंची (६) अरहन्त पन्ना ४ इंच (७) सिद्ध स्फीटक ४ इंच (८) अरनाथ स्फीटक १ इंच (९) मल्लिनाथ स्फीटक १ इंच (१०) मुनिसुव्रत नीलमणि १ इंच (११) विमलनाथ पन्ना १ इंच (१२) अनन्तनाथ नीलम १ इंच (१३) धर्मनाथ माणिक्य १ इंच (१४) चौमुखी अरहन्त पुखराज डेढ़ इंच (१५) चौमुखी अरहन्त पन्ना २ इंच (१६) पार्श्वनाथ ताड़ वृक्ष की जड़ ६ इंच (१७) अरहन्त गोमेद ३इंच (१८) पार्श्वनाथ

फिरोजिया पन्ना ४ इंच (१९) पार्श्वनाथ गरुढ़ मीण सर्प विप हारी ६ इंच (२०) मुनिसुव्रत नीलम ३ इंच (२१) सिद्ध स्फीटक ६ इंच (२२) अरहन्त वैडुर्य २ इँच (२३) वाहुवली पाषाण पन्ना साढ़े दो इंच (२४) पद्मप्रभु मूंगा १ इंच (२५) नेमिनाथ नीलम ३ इंच (२६) पार्श्वनाथ प्रवाल २ इंच (२७) अरहन्त पाषाण पन्ना साढ़े तीन इंच (२८) आदिनाथ माणिक्य १ इंच (२९) वाहुवली मोती आधा इंच (३०) वासुपुज्य नीलम डेढ़ इंच (३१) पद्मप्रभु मणिक्य १ इंच (३२) वासुपुज्य मणिक्य डेढ़ इंच (३३) चन्द्रप्रभु मोती सवा इंच (३४) चन्द्रप्रभु हीरा २ इंच (३५) अरहन्त पन्नाराज ढाई इंच (३६) पार्श्वनाथ इन्द्रनील मणि ३ इंच (३७) सिद्ध स्फाटिक रत्नाकर १० इंच ।

त्रिभुवनतिलक-चूड़ामणिवस्ती

इस मन्दिर में एक हजार शिला स्तम्भ विद्यमान होने से इसे "सहस्त्र स्तम्भ मन्दिर" भी कहते हैं । इसका निर्माण १८६२ ई० में आठ-दस करोड़ रुपये से हुआ तथा १४६२ में भैरोंदेवी मंडप भैरौदेवी ने वनवाया । मानस्तम्भ को, जो लगभग ५० फुट ऊँचा है भैरवराजा की पटरानी नागल देवी ने इसका निर्माण कराया कला को दृष्टि में सर्वोत्कृष्ट पीतल का ढला हुआ मन्दिर है । और मूलनायक चन्द्र प्रभु स्वामी की मूर्ति ९ फुट अवगाहना की पंचधातु की विराजमान है, अति मनोहर सुवर्णमयी प्रतीत होती है । इसके तीन खंडों में पहले खँड में मुख्य मन्दिर है । दूसरे खँड में सहस्त्रकूट चैत्यालय है जिसमें १००८ प्रतिमाएं हैं । इस मन्दिर में २९ स्फटिक मणि की मूर्ति हैं । इनके अतिरिक्त जैनमठ एवँ पीठशाला है और चार विशाल धर्म-शालाएं हैं ।मन्दिर इस प्रकार है—

(१) गुरुवस्ती-श्री पार्श्वनाथ, (२)होसलवस्ती (त्रिभुवन तिलक चूणामणि) चन्द्रप्रभु जी, (३) वडगवस्ती-श्रीचन्द्र प्रभुजी, (४)

सेहरवस्ती—भगवान महावीर, (५) अम्मनवरवस्ती (हिरेवस्ती)-भगवान शान्तिनाथ, (६) वेट्टकेरिवस्ती—भगवान महावीर, (७) कोटि वस्ती—श्री नेमिनाथ जी, (८) विक्रसेट्टि वस्ती-श्री आदिनाथ जी, (९) कल्लु वस्ती-श्री चन्द्रनाथ जी, (१०) लेप्पदवस्ती-श्री चन्द्र-नाथ जी, (११) देरमसेट्टिवस्ती—श्री अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत जी, (१२) चोलमेट्टि वस्ती—श्री सुमति, पद्मप्रभु सुपार्श्वजी (१३) मादायिसेट्टिवस्ती—श्री आदिनाथ जो (१४) वैकणतिकारी वस्ती—श्री अनन्तनाथ जी (१५) केरेवस्ती—श्री मल्लिनाथ जी, (१६) पडुवस्ती—श्री विमल, अनन्त, धर्मनाथ जी (१७) श्री मठ में श्री पार्श्वनाथ जी, (१८) जैन पीठशाला में श्री मुनि सुव्रत जी ।

कारकल

कारकल अतिशय क्षेत्र मुडवद्री से केवल १६ कि० मी० है। यहाँ १२ प्राचीन दिगम्बर जैन मन्दिर हैं। पूर्व की ओर मठ मन्दिर के पीछे एक छोटी सी पहाड़ी की चोटी पर वाहुवली स्वामी की ४२ फुट अवगाहना वाली प्रतिमा है। ई० सन् १४३२ में कारकल नरेश वीर पांडय ने इस मूर्ति का निर्माण कराया था। यहाँ के भैरव ओडेयर वंश के सभी राजा जैन मतावलम्वी थे। सान्तार वंश के प्रसिद्ध महाराजधिराज लोकनाथरस के शासन काल में सन् १३३४ में कुमुदचन्द भट्टारक के वनवाए भगवान शान्तिनाथ के मन्दिर को नकी वहनों एवं राज्याधिकारियों ने दान किया था। इम्मडिभैरव नामक राजा ने सन् १५६८ में यहाँ सामने पहाड़ी पर 'चतुर्मुखी वस्ती' नामक विशाल मन्दिर वनवाया था। इस मन्दिर के चारों दिशाओं में द्वार हैं और चारों ओर १२ प्रतिमाएँ १२-१२ फुट की

खड्गासन बिल्कुल एक समान महामनोज्ञ विराजमान हैं। चौमुखा मन्दिर के स्तम्भ अपनी विशालता और चित्रकला से भारत में अद्वितीयता प्रगट करते हैं। इस मन्दिर में और भी सैकड़ों प्रतिमाएँ विराजमान हैं। यहां से पश्चिम की ओर ११ कलापूर्ण मन्दिर बने हुए हैं।

मूडबिद्री पाटन

कारकल से १२ कि. मी. पर अवस्थित है तथा एक विशाल मन्दिर और सैकड़ों प्राचीन प्रतिमाएँ हैं। यहां से कारकल लौट आना चाहिये। कारकल में धर्मशाला है।

वारँग क्षेत्र

कारकल से ५४ कि. मी. की दूरी पर यह क्षेत्र है। यहां कोट के भीतर नेमीश्वर-बस्ती नामक प्रसिद्ध विशाल मन्दिर है। मन्दिर के उत्तर द्वार के सामने ६० फुट ऊँचा मानस्तम्भ है और पूर्व में ध्वज-स्तम्भ है। मन्दिर में पांच वेदियों पर बहुत सी प्राचीन प्रतिमाएँ हैं। मूलनायक प्रतिमा भगवान नेमिनाथ की है तथा एक प्रतिमा चन्द्रप्रभु भगवान की अमृतशिला की है। यहां से निकट ही एक सरोवर के मध्य में जलमन्दिर है, जो बड़ा रमणीक है और चौमुखी ३-३ फुट ऊँची खड्गासन कृष्ण पाषाण की तथा और अनेक प्रतिमाएँ हैं। इस क्षेत्र सम्बन्धी स्थल पुराण व महात्म्य यहाँ के मठ के स्वामी भट्टारक जी के पास सुरक्षित है। क्षेत्र पर धर्मशाला है।

मद्रास

दक्षिण भारत के भूमि-पटल पर मन्दिर बिखरे पड़े हैं, बड़े-बड़े नगरों में ही नहीं छोटे ग्रामों में भी हैं। मद्रास दक्षिण का प्रधान एवं

भारत का तीसरा विशाल नगर है। देखने योग्य स्थल, मरीना और अड्यार—१२ कि. मी. लम्बा मरीना संसार का दूसरा समुद्री तट है, विलक्षण "वर्फ घर"—ईस्ट इंडिया कम्पनी के अंग्रेजी व्यापारियों के लिए उत्तर अमेरिका से तेज जहाजों पर वर्फ लाकर रखी जाती थी, गार्डन आफ रिमेम्बरेन्स—जहां डा० एनीबेसेन्ट और कर्नल आल्कर का दाह-संस्कार हुआ था, तथा संसार के सबसे बड़े वृक्षों में वट-वृक्ष भी यहीं हैं, किले के पास हाईकोर्ट एवं कालेज, प्रकाश स्तम्भ—१६० फुट ऊँचा है, चिड़ियाघर आदि मद्रास को आधार शिविर वनाकर अनेक ऐतिहासिक एवं प्राचीन स्थानों की यात्रा की जा सकती हैं। इनमें से मुख्य यात्रायें तिरुक्कलुकुन्द्रम, जिन्जी, तिरुपती और तिरुवरणमलई को देखते हुए महाबलीपुरम् और कांचीपुरम की होंगी।

हुम्मच पद्मावती (अतिशय क्षेत्र)

हुम्मच, आठवीं शताब्दी में जिनदत्तराय नरेश की राजधानी थी और उसी समय उसने यहां पर भट्टारक जी की गद्दी (मठ) का श्रीगणेश किया था। यहां की लोकप्रियता का मुख्य कारण यहां की पद्मावती देवी का मन्दिर है। हर वर्ष इनका पंचामृताभिषेक का महोत्सव बड़ी धूमधाम से होता है विरुर जंकशन से अडसाल जाते हैं और अडसाल, शिमोगा, आर्सिकेरे और हरीहर से बसें जाती हैं।

पेरुमंडूर (अतिशय क्षेत्र)

दक्षिण रेलवे की मद्रास धनुस्कोडि लाइन पर तिंडिवनम् स्टेशन से लगभग ६ कि. मी. दूरी पर पेरुमंडूर ग्राम है। ग्राम में दो जैन मन्दिर हैं जिनमें सहस्त्राधिक मूर्तियाँ हैं। जब मेलापुर समुद्र में डूबने लगा तब उस स्थान की मूर्तियां लाकर यहां रखी गयीं थीं। यहां

प्राचीन मन्दिर में ताड़पत्रों पर लिखित १५० शास्त्र हैं।

पोन्नूर—वंदीवाग (अतिशय क्षेत्र)

उपर्युक्त तिंडिवनम स्टेशन से लगभग ४० कि, मी. दूर पहाड़ की तलहटी में यह ग्राम है। ग्राम में शिखर वंद दिगम्वर मन्दिर है। पहाड़ पर एलाचार्य (कुन्दकुदाचार्य) के प्राचीन सातिशय चरणचिन्ह है। यह स्थान कुन्दकुन्द स्वामी की तपोभूमि है।

तिरुमलय (अतिशय क्षेत्र)

पोन्नूर से ६ कि. मी. दूरी पर १,००० फुट ऊँचा तिरुमलय पर्वत है। तीन सौ फुट ऊँचाई पर जाकर चार मन्दिर हैं जि के आगे क गुफा में दो प्राचीन प्रतिमाएँ व भगवान ऋषभदेव के मुख्य गणधर वृषभसेन की चरणपादुका हैं। गुफा की चित्रकला दर्शनीय है। आगे चोटी पर तीन मन्दिर और हैं, यहाँ के शिलालेखों से प्रगट है कि यहाँ वड़े-वड़े राजाओं द्वारा मन्दिर वनवाये गये थे और मुनिगण यहां तपस्या करते थे। यहाँ के कुदवई जिनालय को सूर्यवंशी महाराज की पुत्री अथवा पांचवें चालुक्य राजा विक्रमादित्य की वड़ी वहिन ने वनवाया था। श्री पखादिभल्ल के शिष्य श्री अरिष्ठनेमि आचार्य द्वारा स्थापित एक यक्षिणी की मूर्ति भी है। दहलान शिल्प कलायुक्त है। इसके सामने दो और दहलान हैं। जिसके मध्य में पांच फुट ऊँची श्री पार्श्वनाथ स्वामी की कायात्सर्ग प्रतिमा विराजमान है। वड़े दहलान के सामने तीन मन्दिर है जिनकी चित्रकला दर्शनीय है। एक में ब्रह्मा, दूसरे में कूष्माण्ड देवी, तीसरे में भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा विराजमान है। भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा दो शिकारियों को जमीन खोदते समय प्राप्त हुई थी। वाद में एक मुनिराज ने पण्डाईवेडू की राज्य कन्या की भूतपीड़ा का निदान

दूर करवाकर राजा द्वारा मन्दिर का निर्माण करवाया और उसमें यह मूर्ति विराजमान की गई। यह क्षेत्र तभी से प्रसिद्ध है।

चित्तम्बूर

तिंडिवनम से १६ कि. मी. वायव्यकोण में यह स्थान है। यहां दो जैन मन्दिर हैं इनमें एक डेढ़ हजार वर्ष से पूर्व का है।

विल्लुक

चित्तम्बूर से दो मील की दूरी पर यह ग्राम अवस्थित है। यहां १००० वर्ष प्राचीन मन्दिर तथा सरोवर तट पर गुणसागर महाराज के चरण हैं।

पेराम्बूर

तिंडिवनम् से लगभग २४ कि० मी० की दूरी पर यह क्षेत्र अवस्थित है। यहां एक प्राचीन शिखरयुक्त मन्दिर है जिसमें भगवान पार्श्वनाथ स्वामी की श्यामवर्ण ६ फुट ऊँची मनोज्ञ प्रतिमा है।

वेल्लूर

पेराम्बूर से लगभग १६ कि० मी० की दूरी पर यह क्षेत्र अवस्थित है। यहां श्री वीरसेनाचार्य का समाधिस्थान है। एक मन्दिर जी में उनके द्वारा श्रवणबेलगोल से लाई हुई पार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा विराजमान है।

पुंडी

दक्षिण रेलवे की विल्लुपुरम-रेनीगुटाँ लाइन पर आरणी रोड स्टेशन से लगभग ५ कि० मी० दूरी पर यह क्षेत्र है यहां एक विशाल प्राचीन मन्दिर है जिसके चारों ओर कोट है, अन्दर १६ स्तम्भों का दहलान है।

कुलपाक

मध्य रेलवे की वाड़ी-काजीपेट मुख्य लाइन पर अलीर स्टेशन से ४ मील दूर यह प्राचीन क्षेत्र अवस्थित है। यहां के मन्दिर में भगवान ऋषमदेव की माणिक स्वामी, नामक प्रतिमा विराजमान है।

आस्टे (अतिशयक्षेत्र)

दक्षिणी रेलवे की कुर्दुवाडी-रायचूर लाइन पर आलंद से लगभग २६ कि० मी० दूर यह क्षेत्र है। यहाँ एक प्राचीन मन्दिर में भगवान पार्श्वनाथ स्वामी की सातिशय प्रतिमा है, जो विघनहरण पार्श्वनाथ के नाम से भी प्रसिद्ध है।

महाराष्ट्र के जैन तीर्थ

बम्बई

बम्बई प्रसिद्ध औद्योगिक और महाराष्ट्र प्रदेश की राजधानी

तथा प्रमुख नगर है।'। मध्य एवं पश्चिम रेलवे लाइनों पर स्थित है। दिल्ली से मध्य रेलवे से १५४२ कि० मी० तथा पश्चिम रेलवे से १३८८ कि० मी० है। जैनों का केन्द्र है भूलेश्वर में १ चौपाटी पर ३ वालकेश्वर रोड में १ तारदेव में २ गुलालवाड़ी में १ जौहरी वाजार में नया १ मांदूंगा में एक इस प्रकार से आठ मन्दिर और चैत्यालय हैं। सी० पी० टैंक के समीप गिरगांव पोस्ट आफिस के पास हीरावाग नाम की एक धर्मशाला है तथा बड़ी सुभीता है। अन्य दर्शनीय स्थान मेरीन-डराईव, चौपाटी, कमला नेहरु व हैंगीगं पार्क, विधान सभा भवन, राज्यपाल भवन, गेट-वे-आफ इंडिया, ताज महल होटल, संग्रहालय, विहार झील, आर० के० दुग्ध कालोनी, तुलसी वाग, तारदेव में जैन वौर्डिंग एवं महिलाश्रम आदि। एलिफेंटा की गुफाएँ, मँजगाँव एवं अपोलो बंदर से स्टीमर जाता है। अधेरी लोकल स्टेशन से २ कि० मी० दूरी पर अंधेरी की गुफाएँ भूमि के भीतर है। कनेरी की गुफाएं, वरौली लोकल स्टेशन से लगभग दस कि० मी० है। कई इतनी विशाल हैं कि २-३ हजार आदमी वैठ सकते हैं।

मांगी-तुंगी सिद्ध क्षेत्र

मध्य रेलवे के मनमाड़ जंकशन से लगभग ९६ कि० मी० की दूरी पर क्षेत्र अवस्थित है। इस क्षेत्र से श्री रामचन्द्रजी, हनुमान जी, सुग्रीव, गवय, नील, महानील आदि ९९ करोड़ मुनिगण मोक्ष गये हैं। मांगी एवं तुंगी दो पृथक्-पृथक अत्यन्त रमणीय पहाड़ हैं। पहले मांगी पड़ता है और लगभग २ कि० मी० अन्तर से तुंगी है। दोनों पर्वतों के वीच में छतरियों में चरण विराजमान हैं। यहां एक कुण्ड है जहां पर श्री कृष्ण का दाह संस्कार होना वताया जाता है।

थानागृह और डोंगरदेव की गुफा के सम्वन्ध में घटनायें इस प्रकार हैं। धानागृह के वारे में प्रचलित है कि जिस समय श्री कृष्ण का (पभौसा उत्तर प्रदेश में) उनके लघु भ्राता जदकुमार द्वारा वध हो गया तो उनके भाई वलभद्र उनके मृतक शरीर को दुःख से पीड़ित हो छह माह तक जहां-तहां लिये फिरने लगे और जव इस पर्वत पर आये तो देवताओं ने धानागृह पर्वत पर एक कोल्हू में वालू रेत पेलकर तेल निकालने का प्रयत्न करना शुरू किया। तव वलभद्र ने कहा 'यह क्या मूढ़ता है, कही वालू से भी तेल निकलता है।' तव देवताओं ने वलभद्र को सम्वोधा और कहा 'कहीं कृष्ण के मृतक शरीर में प्राण पड़ने लगे हैं। इससे वलभद्र को चेतना मिली और उन्होंने श्री कृष्ण का दाह संस्कार उपरोक्त स्थान पर कर दिया। डोंगर देव की गुफा, भील लोगों की मान्यता है और प्रचलित है कि इस गुफा में वड़ा अन्धेरा है तथा अन्दर जाकर एक दूसरा द्वार कुण्डल के आकार का है फिर तीसरा द्वार है, वहाँ पर पानी है और पहाड खोखला है, पानी पार करने के पश्चात वहां पर अन्तरिक्ष प्रतिमा के दर्शन होते हैं। अन्दर पानी गहरा तथा गन्दा है रास्ता भी भयानक है वातावरण भी ऐसा है कि पानी में आगे जाने का साहस नहीं होता।

माँगी पर्वत—एक चोटी के रूप में 'चुलिका के नाम से विख्यात है। चढ़ाई ३ मील की है इसकी प्रदक्षिणा की चार गुफाओं में ११ वीं १२ वीं शताब्दी की ३५६ प्रतिमाएं हैं, जिनमें मूलनायक भद्रवाहु स्वामी की प्रतिमा है। कुछ नीचे वायीं ओर एक विशाल गुफा में युगल चरण हैं। तुंगी की चढ़ाई कुछ कठिन है। चोटी पर चूलिकानुमा एक वड़ा कूट है। उसके भी चारों ओर मांगी के समान प्रदक्षिणा में तीन गुफाओं में उकेरी हुई १८ प्रतिमाएं हैं। मूलनायक प्रतिमा चन्द्रप्रभु स्वामी की ४ फुट अवगाहना की पद्मासन विराजमान है। पर्वत से उतरते हुए सिद्ध वुद्ध की गुफाएं तथा 'अद्भुतजी' नामक स्थान है जहाँ मनोज्ञ एवं प्राचीन प्रतिमाएं हैं

औरंगाबाद

यह नगर मध्य रेलवे की पुरनामनमाद मुख्य लाइन पर स्थित है। यहां ६ जैन मन्दिर व कई चैत्यालय हैं, इनमें एक प्राचीन विशाल मन्दिर है। मन्दिर जी में वेदियों के अतिरिक्त एक भोंहरे में सैकड़ों प्राचीन प्रतिमाएँ हैं।

गोमापुरा (अतिशय क्षेत्र)

यह क्षेत्र उपर्युक्त औरंगावाद स्टेशन से लगभग ढाई कि. मी. दूरी पर स्थित है। यहां एक प्राचीन मन्दिर है जिसमें बहुत प्राचीन प्रतिमाएँ हैं। निकट ही एक पहाड़ पर एक मन्दिर है जिसमें भगवान नेमिनाथ की ४ फुट ऊँची अत्यन्त मनोहर प्रतिमा विराजमान है। मन्दिर के आगे तीन गुफायें हैं जिनमें बहुत सी जैन व बौद्ध प्रतिमाएँ हैं।

कचनेरा (अतिशय क्षेत्र)

यह क्षेत्र उपर्युक्त औरंगावाद स्टेशन से लगभग ३२ कि. मी. की दूरी पर स्थित है। यहां के मन्दिर जी में, जो कि विशेष प्राचीन है, अन्य प्रतिमाओं के साथ एक प्रतिमा सातिशय भगवान पार्श्वनाथ जी की विराजमान है। लोकोक्ति के अनुसार इस मूर्ति का सिर अकस्मात् धड़ से अलग हो गया और श्रावकों ने उसके स्थान पर अन्य मूर्ति स्थापित करने की योजना की तो एक श्रावक को स्वप्न हुआ कि जमीन के नीचे कोठरी बनाकर उसमें धड़ पर सिर रखकर एक माह तक रहने देने पर सिर जुड़ जायेगा। तदनुसार व्यवस्था की जाने पर मूर्ति पूर्ववत् हो गई और यथा-स्थान विराजमान कर दी गई। तभी से इनका विशेष अतिशय है। प्रतिवर्ष मेला भी लगता है। यहाँ एक जैन धर्मशाला भी है।
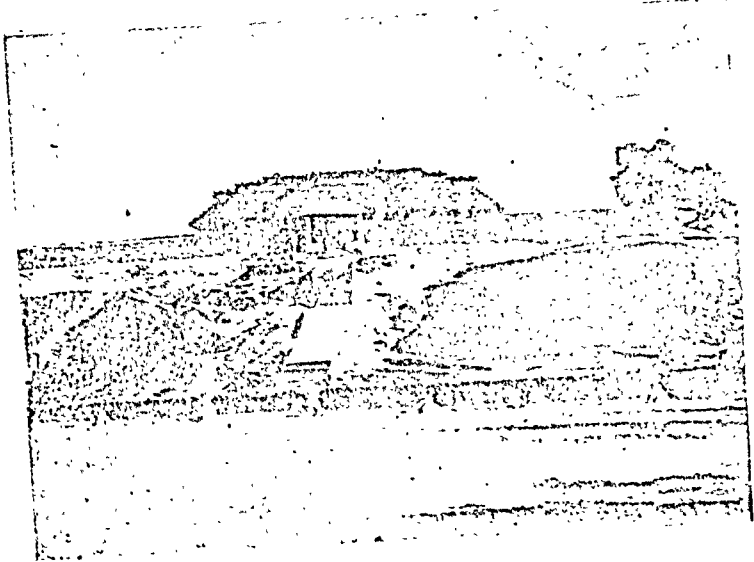
चौमुखा मन्दिर, कारकल
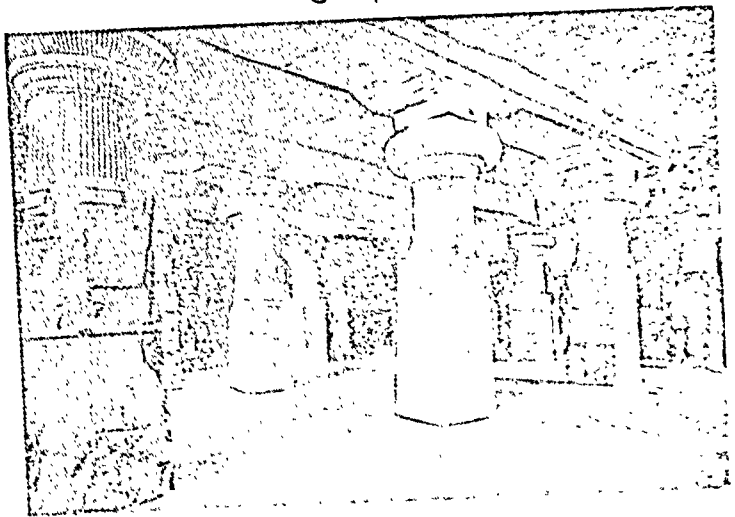
इलोरा की गुफाएं
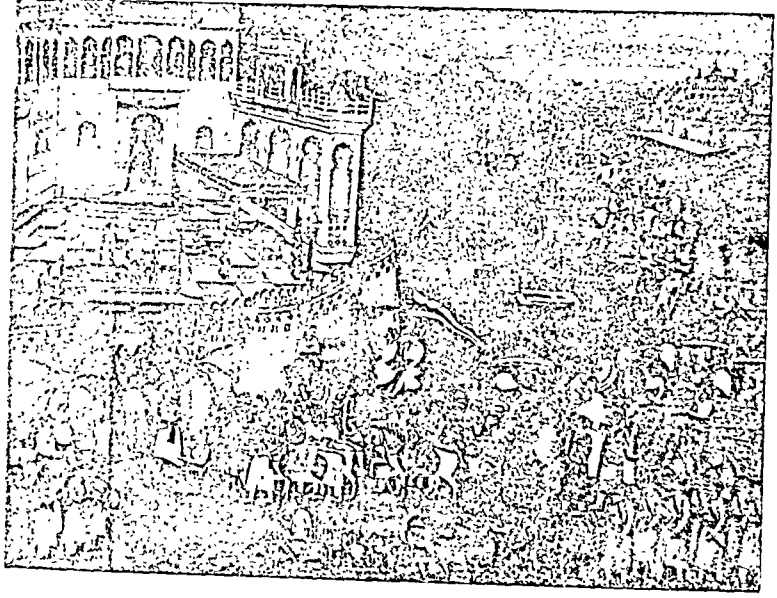
गिरनार

ऐलोर।

मध्य रेलवे की पूर्णा-मनमाड लाइन पर दौलताबाद स्टेशन से ७२ कि. मी. दूर पर यह स्थान है, यहां से निकट ही ढाई कि. मी. लम्बा एक पहाड़ है, जिसमें ४५ गुफाएँ हैं। इन गुफाओं में पार्श्वनाथ नाग शय्या एवं 'गणेश भवन' नामक की ३ गुफाएँ नौ-नौ खंड की विशेष महत्वपूर्ण हैं। यह गुफाए अपनी चित्रकारी व शिल्पकला के लिए संसार प्रसिद्ध हैं। इनके निकट गर्म जल के १३ कुण्ड हैं। ऐलोरा ग्राम के निकट एक छोटा पहाड़ भी है जिस पर पार्श्वनाथ जी का मन्दिर है जिसमें अनेक प्राचीन प्रतिमाएँ हैं। यहां पर पत्थर का हाथी, सिंह इत्यादि की रचना चिताकर्षक है। नीचे उतरने पर सात गुफाएँ और हैं जिनमें अनेक प्रतिमाएँ हैं।

ऊखलद (अतिशयक्षेत्र)

मध्य रेलवे की पूर्णा-मनमाड लाइन पर पिंगली स्टेशन से ६ कि० मी० दूर पूर्णा नदी के तट पर यह क्षेत्र अवस्थित है। नदी के किनारे पत्थर का बना एक विशाल मन्दिर है। जिसमें श्यामवर्ण नेमिनाथ भगवान की एक विशाल सातिशय प्रतिमा विराजमान है। ऐसा कहा जाता है कि इस प्रतिमा के अंगुष्ठ में पारसमणि रत्न था (उसके निकल जाने का निशान अभी भी है) जिसको निकालने का प्रयत्न एक मुसलमान राज्याधिकारी ने किया। परन्तु ज्यों ही उसका स्पर्श हुआ त्यों ही दिव्यवाणी सहित मणि नदी में उछल कर गिर गई। सतत प्रयत्नों के बाद भी वह मणि उसके हाथों में न आई। इसी अतिशय के कारण वह क्षेत्र विश्व प्रसिद्ध है।

गजपंथा जी सिद्धक्षेत्र

गजपंथा जी नासिक रोड स्टेशन से १० कि० मी० तथा बम्बई से १९८ कि०मी० दूर मसरुल ग्राम के निकट ४०० फुट ऊँचे पर्वत पर है। इस पर्वत से वलभद्र आदि ८ करोड़ मुनियों ने मोक्ष प्राप्त किया है। धर्मशाला का भवन नवीन है, मध्य में मानस्तम्भ सहित जैन मंदिर है। पर्वत के शिखर पर ३५० सीढ़ियां चढ़ने पर दो मन्दिर हैं। जिनमें एक में भगवान पार्श्वनाथ स्वामी की विशालकाय प्रतिमा है। चोटी पर तीन गुफाएँ तथा एक सजल कुण्ड है। गुफाओं में १२वीं से १६वीं शताब्दी तक की प्रतिमाएँ है तथा शिल्प दर्शनीय है। नीचे तलहटी में एक छतरी में क्षेमेन्द्र कीर्ति भट्टारक के चरण हैं।

अंजनगिरि

अंजनगिरि नासिक रोड स्टेशन से २२ कि० मी० दूर है। यहाँ अनेक जीर्ण प्राचीन मन्दिर है जिनमें विविध स्थानों पर प्रतिमाएँ हैं। एक मन्दिर में एक अखण्डित प्रतिमा अत्यन्त प्राचीन विराजमान है।

दही गांव (अतिशयक्षेत्र)

बम्बई—रायचूर लाइन पर टवलस स्टेशन से क्षेत्र ३५ कि० मी० है। छोटा सा गांव है परन्तु महतिसागर मुनि का निर्वाण स्थान होने से यहाँ पर एक मन्दिर लाखों रुपये की लागत का प्रमुख हैं। मन्दिर तीन खण्ड का है, पहले खंड में मूलनायक भगवान महावीर की एक प्राचीन मूर्ति है। मध्य खंड में भगवान शान्तिनाथ जी की प्रतिमा है और निचले खंड में भगवान आदिनाथ तथा २४ तीर्थंकरों

की प्रतिमाएँ हैं । एक विशाल मानस्तम्भ भी है । साहित्य के अनुसार भगवान महावीर का समवसरण यहाँ आया था ।

धारा की गुफाएं

मध्य रेलवे की लाटूर- कुर्दुवाड़ी लाइन पर पेडशी स्टेशन से लगभग २ कि० मी० दूर यह प्राचीन नौ गुफायें हैं जो पर्वत को काट कर बनाई हैं । तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के तीर्थ में चम्पा के राजा करिकण्ड यहाँ दर्शन करने आये थे इन गुफा मन्दिरों का, जो मूलतः नील-महानील नामक विद्याधर राजाओं द्वारा वनवाये गये थे, जीर्णोद्धार कराया था और कुछ नवीन गुफा मन्दिर भी वनवाये थे । इसमें भगवान पार्श्वनाथ की वालू की वनी ९ फुट अवगाहना की प्रतिमा मनोज्ञ तथा कलामय है ।

कलिकुंड पार्श्वनाथ अतिशय क्षेत्र

यह क्षेत्र कुण्डल क्षेत्र के नाम से भी प्रसिद्ध है तथा मिरज के पास ही स्थित है । एक विशाल मन्दिर में अन्य वहुत सी प्रतिमाओं के अतिरिक्त एक प्रतिमा भगवान पार्श्वनाथ की रत्न के समान उज्जवल बढ़ी मनोज्ञ है । यहां से ३ कि० मी० की दूरी पर दो पर्वत भरी पार्श्वनाथ तथा झरी पार्श्वनाथ नाम से विख्यात हैं । मिरज से २५ किलो मीटर हाथकलंगड़ा और वहां से ६ किलो मीटर कुंभोज है ।

कुम्भोज अतिशयक्षेत्र

छोटा सा गांव है और गांव में एक जैन मन्दिर है । यहां से लगभग तीन कि० मी० की दूरी पर एक छोटा सा पर्वत है जिस

पर ऊपर जाने के लिए सीढ़ियाँ बनी हैं। पर्वत पर चार जैन मंदिर एवं धर्मशाला है। एक छोटी सी कुटी, एक सहस्रकूट चैत्यालय तथा पाषाणमय गोम्मट स्वामी की प्रतिमा है। यहां बाहुवली नाम के एक यति ने तपस्या की थी, यहाँ में थोड़ी ही दूर सांगली है, सांगली से २५ कि० मी० रोड़बाल और वहां से ६ कि० मी० खिद्रा-पुर है।

आतनूर

मध्य रेलवे की कुर्दुवाड़ी-रायचूर वाली दक्षिण पूर्व लाइन पर दूधनी स्टेशन से ६ कि० मी० दूरी पर यह क्षेत्र अवस्थित है। इस ग्राम में अनेक प्राचीन मन्दिर हैं जिनमें प्राचीन प्रतिमायें विराजमान हैं। यहाँ खुदाई में अनेकों प्राचीन प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं। इसी प्रकार खुदाई में प्राचीन मन्दिर निकला है। इस मन्दिर में दो हाथ ऊँची श्यामवर्ण चन्द्रप्रभु की एक सातिशय प्रतिमा विराजमान है।

अस्टे विदनेश्वर पार्श्वनाथ

दूधनी स्टेशन से आलंद होकर २८ कि० मी० दूर पर यह क्षेत्र अवस्थित है। यहाँ के प्राचीन मन्दिर में मूलनायक प्रतिमा भगवान पार्श्वनाथ की सातिशय है।

तड़कल

कुर्दुवाड़ी-रायचूर वाली दक्षिण-पूर्व मुख्य लाइन पर वाठागापुर स्टेशन से १९ कि० मी० की दूरी पर यह क्षेत्र है। यहां के मन्दिर में पत्थर में उत्कीर्ण भगवान शांतिनाथ स्वामी की ३ फुट ऊँची कृष्ण पाषाणीय प्रतिमा हैं। इसी मन्दिर में भगवान ऋषभदेव की

सन् १२१५ में प्रतिष्ठित प्रतिमा विराजमान है।

शोलापुर

मध्य रेलवे की कुर्दुवाड़ी-रायचूर लाइन पर प्रसिद्ध स्टेशन है। यहां कई मन्दिर व चैत्यालय विशाल व दर्शनीय हैं।

होठासलगी

मध्य रेलवे की कुर्दुवाड़ी-रायचूर वाली दक्षिण पूर्व मेन लाइन पर सांवला जी स्टेशन से लगभग ३ कि॰ मी॰ दूरी पर है। यहां श्री पार्श्वनाथ पद्मावती के नाम से प्रसिद्ध मन्दिर है। जिसमें ५-६ फुट ऊँची १२ प्रतिमाएँ हैं। इसके अतिरिक्त १२ यक्ष-यक्षिणियों की मूर्तियां हैं।

खिद्रापुर

कृष्णा नदी के तट पर छोटा सा ग्राम है पत्थर का बना हुआ एक प्राचीन मन्दिर हैं। जिसमें अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ प्रतिमा के समान विशाल पद्मासन प्रतिमा भगवान ऋषभदेव की सर्वांग पूर्ण विराजमान है।

कुंडल

दक्षिण रेलवे पर पूना मिरज लाइन पर सतारा जिले में कुण्डल स्टेशन से तीन कि॰ मी॰ दूरी पर यह क्षेत्र है ग्राम के निकट पर्वत पर दो मंदिर हैं एक को मंदिर झरी पार्श्वनाथ कहा जाता है। क्योंकि इसमें प्रतिमा पर जलवृष्टि होती है। दूसरा मन्दिर गिरि

पार्श्वनाथ का है। ग्राम में भी एक पार्श्वनाथ का मंदिर है।

कुंथलगिरि (सिद्धक्षेत्र)

मध्य रेलवे की मिरज पंढरपुर-लाटूर-लाइन पर वार्सीटाउन स्टेशन से यह क्षेत्र ३३ कि० मी० दूरी पर स्थित है। शोलापुर से भी बसें चलती हैं। यहां से देशभूषण व कुल भूषण मुनिवर मोक्ष गये हैं। यहां पहाड़ पर १० प्राचीन जैन मंदिर हैं।

पूना

स्टेशन से तीन किलो मीटर शुक्कवारी पेट में एक धर्मशाला के पास एक और दीतवारिया बाजार से चार जैन मंदिर हैं। पार्वती पहाड़ के ऊपर का मंदिर, पेशवाओं का हीरा वाग आदि देखने योग्य स्थान हैं।

स्तवनिधि अतिशय क्षेत्र

यह क्षेत्र वेलगांव-कोल्हापुर रोड पर वेलगांव से ६१ किलो मी०पर रमणीक जंगल में है। यहां ६ प्राचीन दिगम्बर मन्दिर है। जिनमें अनेक प्राचीन प्रतिमायें हैं। एक प्रतिमा नवखण्ड पार्श्वनाथ की सातिशत विराजमान है। कहा जाता है, कि बीजापुर में एक पुजारी जो कि क्षेत्रपाल का उपासक था, उसकी कन्या को वहाँ के नवाव ने वेगम वनाना चाहा। पुजारी क्षेत्रपाल की मूर्ति व कन्या को साथ लेकर वीजापुर छोड़ कर इस स्थान पर ठहर गया। उसे यहां जिन विम्ब स्थापना की इच्छा हुई। रात्रि में क्षेत्रपाल जी ने स्वपन दिया कि निकटवर्ती तालाव में पार्श्वनाथ स्वामी की मूर्ति

है। पुजारी ने मूर्ति को निकाला परन्तु उसके ६ टुकड़े हो गये। क्षेत्रपाल ने पुनः स्वपन दिया कि मूर्ति को विराजमान करो। प्रतिमा अखण्डित हो जावेगी। पुजारी ने वैसा ही किया। और मूर्ति जुड़ गई। मूर्ति पर जोड़ के चिन्ह अब भी हैं।

गुजरात के जैन तीर्थ

सूरत (विघ्नहर पार्श्वनाथ)

सूरत नगर (पश्चिम रेलवे) समुद्र से केवल १६ कि० मी० दूर है। यह एक उद्योगिक एवं व्यापार का मुख्य केन्द्र है। चन्दावाड़ी में जैन धर्मशाला तथा मन्दिर है इसकी प्रतिमाएँ मनोज्ञ हैं। अन्य लगभग ६ दि० मंदिर गौधीपुरा तथा नवापुरा में हैं। सूरत नगर के निकट कटार ग्राम में मुनि श्री विद्यानंद जी की चरणपादुकाये हैं—वह उनका समाधि स्थान है।—महुआ ग्राम भी सूरत के निकट है, जहाँ विघ्नहर भगवान पार्श्वनाथ की मनोज्ञ एवं प्राचीन अतिशय युक्त प्रतिमा विराजमान है। प्राचीन सचित्र ग्रन्थ भी विराजमान हैं।

वड़ौदा

वड़ौदा में केवल दो दि० जैन मन्दिर हैं तथा नईपोल के पास जैन धर्मशाला है। राजमहल आदि देखने योग्य स्थान है।

पावागढ़ सिद्ध क्षेत्र

बड़ौदा-रतलाम लाइन पर चापानेर स्टेशन से आधा कि० मी० चापानेर में क्षेत्र अवस्थित हैं। ३ धर्मशाला दो मन्दिर तथा मानस्तम्भ है। धर्मशाला के पीछे ही पर्वत पर चढ़ने का कंकरीला तथा दुर्गम मार्ग है। लगभग ६ मील की चढ़ाई है। कोट के सात विशाल द्वार हैं। छटे द्वार के वाहर पहले भीत में एक प्रतिमा १॥ फीट की जिसपर सं० ११३४ अंकित था उकेरी हुई थी। सातवें द्वार पार करने पर विशाल दि० जैन पांच मन्दिर अवस्थित हैं। मध्यकाल (१५४०) में मुसलमान वादशाह वेगड़ा ने यहां अधिकार के काल में यहाँ के प्राचीन मन्दिरों व मूर्तियों को बिल्कुल नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था, जिनके अवशेष अव भी पड़े हैं। कतिपय मन्दिरों के शिखर फिर वनवा दिये हैं। इस पर्वत से अयोध्यापति रामचन्द्र के पुत्र लव कुश और लाट देश का राजा पाँच करोड़ मुनियों के साथ मोक्ष गए वताये जाते हैं। यहां सं० १५४६ से १९६७ तक की प्रतिमाएं विराजमान हैं। वड़ौदा से वसें भी जाती हैं। पहले मन्दिर के सामने एक चवूतरे पर दो प्रतिमाएँ मध्य कालीन प्रतिष्ठित हैं। दूसरे मन्दिर में सं० १९६० की श्री चिंतामणि पार्श्वनाथ भगवान की हरित पाषाण की अति मनोज्ञ अतिशय युक्त प्रतिमा है। थोड़ी दूर आगे चलने पर एक अन्य मन्दिर में सं० १९६७ की प्रतिमा विराजमान है। फिर तालाव के किनारे दो मन्दिर हैं। एक मन्दिर वड़ा है, जिसके प्राकार की दीवार पर कतिपय मनोज्ञ जैन प्रतिमाएं अच्छे शिल्प चातुर्य की वनी हुई हैं और प्राचीन हैं। भगवान सुपार्श्वनाथ जी प्रभृति तीर्थंकरों की पाँच छह प्रतिमाएँ हैं। इस मन्दिर के सामने लव कुश महामुनियों के सं० १३३७ के चरण युगल एक गुमटी में विराजमान हैं। इनके आगे सीढ़ियों की चढ़ाई है, जिनके दोनों ओर जैन प्रतिमाएँ लगी हुई हैं। कालिका देवी मन्दिर है इन्हीं सीढ़ियों

से एक ओर थोड़ा चलने पर पर्वत के शिखर है, यही लव-कुश का निर्वाण स्थान माना है। पावागढ़ से वापस वड़ौदा आकर-वस द्वार खंभात जावें।

खंभात अतिशय क्षेत्र

पश्चिमी रेलवे की दिल्ली-वम्बई सेंट्रल लाइन पर आनन्द जंक्शन स्टेशन से लगभग ५२ कि० मी० की दूरी पर यह क्षेत्र अवस्थित है। यहां के मन्दिर में डेढ़ हाथ ऊँची भगवान विमलनाथ की मनोज्ञ प्रतिमा विराजमान है। इ१के अतिरिक्त ७५ प्रतिमायें और भी हैं। प्राचीन काल में यहाँ वहुत मन्दिर थे जिनको मुसलमानी शासनकाल में विध्वंस किया गया। इन्हीं मन्दिरों के पत्थर मुहम्मदशाह की मस्जिद में प्रयोग किये गये हैं। मस्जिद के खंभो पर जैन प्रतिमायें उत्कीर्ण हैं जो अव भी स्पष्ट हैं। यहाँ से वस द्वारा अहमदावाद आवें।

अहमदावाद

अहमदावाद प्राचीन काल में जैन केन्द्र था और अव मुख्यतय: कपड़े का औद्योगिक केन्द्र है। स्टेशन से लगभग २ कि० मी० चौंक वाजार में दि० जैन वोर्डिंग हाउस है। यहीं पर एक दि० धर्मशाला एवँ जैन मन्दिर है। दो प्राचीन मन्दिर माँडवी पाले में है, एक चैत्यालय स्टेशन के निकट है।—श्वेताम्वरीय मन्दिर दर्शनीय शिल्प का देखने योग्य है। यहां से वस द्वारा पालिताना जावें, रेल द्वारा विरमगांव सिहोर होकर मार्ग हैं।

अमीझरा पार्श्वनाथ (अतिशयक्षेत्र)

अहमदावाद—खेडब्रह्मा लाईन पर ईडर स्टेशन से १८ कि० मी०

दूरी पर क्षेत्र है। यहां के प्राचीन मन्दिर में चतुर्थकालीन भगवान पार्श्वनाथ की पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। यहां के अन्य मन्दिर भी कलापूर्ण हैं।

पालीताना शत्रुंजय

यह सिद्ध क्षेत्र महसाना से ३०३ कि० मी० तथा अहमदाबाद से पालीताना रोडवेज की वसें जाती हैं। पालीताना स्टेशन से लगभग डेढ़ कि० मी० दूर नदी के पास विशाल जैन दि० धर्मशाला है। नगर में एक अर्वाचीन दि० जैन मन्दिर में, मूलनालक भगवान शांतिनाथ की प्रतिमा सं० १९५१ की है।।—शत्रुंजय पर्वत पर मूलतः श्वेताम्वर समाज के ही विशाल एवं लघु मन्दिर हैं। पर्वत पर दि० समाज के केवल दो मन्दिर थे, परन्तु छोटे मन्दिर पर भी श्वेताम्वर समाज ने अधिकार कर लिया है। इस पर्वत से तीन पांडव कुमर युधिष्ठिर अर्जुन भीम द्रविड़ देश के राजा और आठ करोड़ मुनि मोक्ष पधारें हैं।

शत्रुंजय—पालीताना नगर के पास एक पहाड़ी पर स्थित है एवं श्वेताम्वर समाज का सवसे मान्य तीर्थ सिद्धाचल में है। इस प्रकार यह पर्वत जैन मन्दिरों की एक सुन्दर नगरी है। विशाल नौ मन्दिर नौं टून्कों के नाम से प्रसिद्ध हैं। एक-एक मन्दिर में सैकड़ों देवालय और हजारों मूर्तियाँ विराजमान हैं। श्वेताम्वर मान्यतानुसार यहां भगवान नेमिनाथ के अतिरिक्त २३ तीर्थकर पधारे थे इसी कारण शत्रुंजय पर्वत का कंकड़-कंकड़ पवित्र एवं तीर्थ माना जाता है। मुख्य पहाड़ों की प्रदक्षिणा की दो अन्य पहाड़ियां पद्मगिरि और चन्द्रगिरि तथा शत्रुंजय नदी भी तीर्थरूप में प्रसिद्ध है। मुसलमानी साम्राज्य के

काल में कई वार इस तीर्थ को वड़ी हानि पहुँची, पर प्रवल भक्ति के कारण जीर्णोद्धार होते रहे।—परकोटे के निकट पहुँचते ही पांडव कुमारों की दर्शनीय खड्गासन मूर्तियां हैं। परकोटे के अन्दर लगभग ३५०० प्रतिमाएँ अपूर्व शिल्पचातुर्य के दर्शनीय हैं। श्री आदिनाथ मन्दिर, सम्राट कुमारपाल मन्दिर विमलशाह मन्दिर तथा चतुर्मुख मन्दिर उल्लेखनीय हैं।—रतन पोल के पास फाटक के भीतर दि० जैन मन्दिर है।

झालरा पाटन

यहां १२ शिखर युक्त मन्दिर तथा अनेक चैत्यालय हैं। इनमें से एक मन्दिर नगर के वाहर ईसा की दसवीं शताब्दी का भगवान पार्श्वनाथ के नाम से प्रसिद्ध है। इसी मन्दिर की ईशान दिशा में लगभग सन १०४३ के समय का लाखों रुपये की लागत का विशाल मन्दिर है, जिसमें ११ फुट ऊँची भगवान शान्तिनाथ की खड्गासन प्रतिमा है और यह भूगर्भ से प्राप्त हुई थी।

शंखेश्वर पार्श्वनाथ

शत्रुंजय पालीताना से १६ कि० मी० दूरी पर यह क्षेत्र स्थित है। यहाँ का जैन मन्दिर विशाल है। मुख्य मन्दिर के समीप मन्दिरों का एक समूह है, जिनमें विभिन्न तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ हैं। मुख्य मन्दिर में पार्श्वनाथ स्वामी की अतिशय—युक्त एवं अत्यन्त प्राचीन प्रतिमा है जिसे शंखेश्वर पार्श्वनाथ कहते हैं। मन्दिर नवीन हैं तथा प्राचीन मन्दिर नष्ट हो जाने पर नवीन मन्दिर का निर्माण करा कर उसमें मूर्ति की प्रतिष्ठा हुई है।

भाव नगर

पश्चिम रेलवे की भावनगर-सुरेन्द्र नगर लाइन पर स्थित है। यहां कई विशाल मन्दिर है, जिनकी स्थापत्य कला दर्शनीय है।

सोन गढ़

भावनगर—सुरेन्द्रनगर लाइन पर स्टेशन है। यहाँ प्रसिद्ध अध्यात्मिक संत श्री कान जी स्वामी का कार्यालय है। उनके द्वारा वनाया गया भगवान् श्रीमंधर स्वामी का दर्शनीय मन्दिर है तथा अध्यात्म पिपासुओं के लिये कानजी स्वामी द्वारा संस्थापित आश्रम भो है।

द्वारिका

वीरमगांव-सुरेन्द्रनगर-राजकोट लाइन पर स्थित है। इसका यादव वंशी श्री कृष्ण ने शोरीपुर, मथुरा आदि से (देखें शोरीपुर विवर्ण में) जरासंध (देखें राजगृह के विवरण में) के वार-वार आक्रमणों के भय से यादवों को लाकर इस विशाल नगरी का निर्माण किया था। द्वारिका से ही उन्होंने जरासंघ को पराजित किया था। कुछ साहित्यकारों के अनुसार भगवान नेमिनाथ का जन्मस्थान शोरीपुर है और जिस समय यादव शोरीपुर छोड़कर द्वारिका आये तो नेमिनाथ वालक थे अन्य के अनुसार उनका जन्म द्वारिका में ही हुआ। यहाँ पर एक दि० जैन मन्दिर में भगवान नेमिनाथ की प्रतिमा तथा चरण विराजमान हैं।

गिरनार पर्वत

यह क्षेत्र वेस्टर्न रेलवे के महासाना जंकशन से राजकोट २४६

कि० मी० और राजकोट से जूनागढ़ १०३ [कि० मी० है। जूनागढ़ स्टेशन से तांगा द्वारा गिरनार जी की तलहटी में जाना चाहिये। गिरनार का ऊर्जयंतीगिरि, रैवतक, रामगिरि नाम से भी इसका उल्लेख मिलता है। धर्मशाला से लगभग १०० कदम के फांसले पर पर्वत पर चढ़ने का द्वार है। इस द्वार से ही पर्वत पर चढ़ने की सीढ़ियाँ प्रारम्भ होती हैं। गिरनार सिद्ध क्षेत्र से वाईसवें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ तथा अन्य करोड़ों मुनि मोक्ष को प्राप्त हुए। अनेक तीर्थंकरों के समवशरण यहां आये थे। भगवान नेमिनाथ के दीक्षा, केवल ज्ञान तथा मोक्ष यह तीन कल्याणक यहां हुए। श्री नारायण कृष्ण और वलभद्र ने यहां आकर तीर्थंकर भगवान की वन्दना की थी। भगवान के उपदेश से प्रभावित होकर श्री कृष्ण के पुत्र प्रद्युमन शंखकुमार आदि ने मुनि दीक्षा ली थी। राजकुमार मुनि पर सोमल-विप्र ने यहीं उपसर्ग किया था और गजकुमार मुक्त हुए थे। भगवान नेमिनाथ के गणधर श्री वरदत्त यहीं से मोक्ष सिधारे थे। इनके अलावा १२ करोड़ मुनियों ने निर्वाण पद प्राप्त किया था।

भगवान नेमिनाथ विवरण

भगवान् मुनिसुव्रत नाथ के निर्वाण होने के अनन्तर छह लाख वर्ष पश्चात नेमिनाथ भगवान का जन्म द्वारिका में हुआ उनके पिता का नाम विजयरथ जो यदुवंशियों में प्रधान थे तथा माता का नाम वप्रा देवी था। साहित्य में एक जगह भगवान नेमिनाथ का जन्म शोरीपुर में बताया है और जिस समय यादव शोरीपुर--मथुरा आदि छोड़ कर द्वारिका आये तो वह वालक थे। श्री कृष्ण नेमिकुमार के चचेरे भाई थे तथा अवस्था में बड़े थे, श्री कृष्ण द्वारिका को अपनी राजधानी बनाकर निष्कंटक राज्य कर रहे थे। उनका सत्य-भामा आदि सोलह हजार राजकुमारियों से विवाह हुआ। एक वसन्त ऋतु के सुख पूर्ण दिनों में श्री कृष्ण अपने अंतःपुर सहित वन क्रीड़ा करने को गये और श्री नेमिनाथ को भी साथ ले गये

काफी समय तक जल क्रीड़ा करते श्री कृष्ण जल से बाहर निकल कर कहीं चले गये तब कृष्ण के जाते ही रानियों ने नेमिनाथ के साथ नाना प्रकार की हंसी करने लगीं, केशर डालने लगीं, पिचकारियाँ मारने लगीं और विवाह न करने पर बड़-बड़े ताने मारने लगीं। क्रीड़ा समाप्त होने पर सब स्त्रियां जल से बाहर निकली। नेमिनाथ भी वाहर आ गये। अपने गीले वस्त्रों को पृथक करके सत्यभामा की ओर फेंक कर बोले हमारे वस्त्रों को निचोड़ दो। सत्यभामा यह सुनकर वहुत रुष्ट हुई और बोली—'यह काम अपनी स्त्री से करवाइए। तुम जानते हो—जो सुदर्शन चक्र चला सकते हों, नाग शय्या पर सोने की जिसमें शक्ति हो, जो पांचाजन्य, शंख पूर सकता हो जो सारंग धनुष पर ज़्या, चढ़ा सकें वही मुझे आज्ञा दे सकता है। सत्यभामा के ऐसे उण्डता से भरे हुए वचन सुनकर नेमिनाथ उसी समय श्री कृष्ण की युद्धशाला में पहुंचे। वहाँ उन्होंने सुदर्शन चक्र को पांव के अंगूठे से घुमाया। नाग शय्या पर शयन किया। धनुप पर ज्या चढ़ाई और पाँचजन्य शंख भी उन्होने पूर दिया। धनुप की टंकार और शंख का नाद होते ही भारी कोलाहल मच गया। लोग भयभीत होकर प्रलय काल की कल्पना करने लगे। श्री कृष्ण भी घवरा गये। किसी सेवक ने सारा वृताँत वताया। सुनते ही श्री कृष्ण आयुद्धशाला में आए और ऊपर से कुछ हंसकर कहा—'विभो! आपके किंचित क्रोध से वेचारे लोग विहल हुए जाते हैं।' इस अनुपम पराक्रम को देखकर कृष्ण मानसिक व्यथा से वहुत दुखी हुए और उन्हें शंका हुई कि वे कभी राज्य छीन लें तदन्तर कृष्ण ने वलदेव से परामर्श करके नेमिनाथ का विवाह जूनागढ़ के नृप उग्रसेन की पुत्री राजीमती (राजुल) से करना निश्चित कर दिया। नेमिनाथ की वारात ख़ूब सजधज कर वड़े समोराह और वैभव के साथ जूनागढ़ में पहुंची वहाँ पर एक सँकीर्ण स्थान में मृगादिक अनेक प्रकार के वहुत से

पशु बंधे हुए करुणाजनक शब्द कह रहे थे। नेमिनाथ को वड़ी दया आई और अपने सारथी से पशुओं के विलविलाने का कारण पूछा। सारथी ने उत्तर दिया—'महाराज ; आपके विवाह में जो मांसाहारी मलेक्ष राजा पहुँचे हैं उनके भोजन के लिए इनका वध किया जाएगा।' वह उसी समय लोगों के देखते-देखते रथ को लौटा ले गए उन्हें वैराग्य होगया। राजुल का रुग्न भी भगवान को नहीं रोक सका। तत्काल ही रथ से उतर पडे और विवाह का सारा शृंगार उतार कर जूनागढ़ के निकटस्थ नाना प्रकार के छायाकार वृक्षों से सुशोभित गिरनार पर्वत के सहस्त्राभ्रवन में जैनेन्द्री दीक्षा स्वीकार करली। राजुलजी ने भी मेहन्दो रचे हाथों से दोक्षा ग्रहण कर ली। भगवान नेमिनाथ को ५६ दिन के उपरान्त शुक्ल ध्यान द्वारा कर्मों का नाश कर गिरनार पर्वत पर केवल ज्ञान प्राप्त हुआ।

गिरनार पर तीर्थों, मन्दिरों, राजमहलों क्रीड़ाकुंजों, झरनो और हरे-भरे लहलहाते वनों ने अनूठी शोभा वना दी है। उसकी प्राचीनता भी श्री ऋपभदेव के समय की है। भरत चक्रवर्ती अपनी दिग्विजय के समय यहाँ आये थे। एक ताम्र पत्र से प्रकट है कि ई० पू० ११४० में गिरिनार (रैवत) पर भगवान नेमिनाथ के विशाल मन्दिर थे। गिरनार के पास ही गिरि नगर था सम्भवतः जो आजकल जुनागढ़ कहलाता है। यहीं पर चन्द्रगुफा में श्री धरसेन आचार्य तपस्या करते थे और यहीं पर उन्होंने भूतवलि और पुष्पदंत नामक आचार्यो को अवेशिष्ट श्रुत ज्ञान को लिपिवद्ध करने का आदेश दिया था। सम्राट अशोक ने यहीं पर जीव दया के प्रतिपादक धर्म लेख पाषाणों पर लिखवाये थे। मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त के गुरु भद्रबाहु स्वामी भी गिरनार पधारे थे आचार्य समन्त भद्र ने वि, ३-४ शताब्दी में यहां की यात्रा की थी, उन्होंने 'स्वयम्भू स्तोत्र' में भगवान नेमिनाथ का स्तवन करते हुए लिखा है कि आज भी मुनिगण यात्रार्थ आते हैं। १० वीं० शताब्दी में यहां चूड़ा समास वंश

के राजा खंगार हुए, वह दिगम्बर जैन धर्म के संरक्षक थे। उन्हीं के वंश में राजा मंडलीक हुए, जिन्होंने भगवान नेमिनाथ का सुन्दर एवं विशाल मन्दिर 'गिरिनार' नाम का निर्माण कराया था। वह वंश १६ वीं शताब्दी तक चला।

तलहटी से लगभग ३॥ कि० मी० पर्वत पर चढ़ने के पश्चात चूड़ासमास वंश के राजाओं का गढ़ सोरठ का महल आता है। महल के पहले ही मार्ग में एक सुखा कुंड मिलता है, जिसके ऊपर गिरनार पर्वत पार्श्व में एक पद्मासन दि० प्रतिमा अंकित है, समीप ही जरा हटकर एक चरणपट्ट है जिनके ऊपर एक छोटे चरण चिन्ह बने हुये हैं। लेख घिस गया है। सौरठ महल से जैन मन्दिर प्रारम्भ हो जाते हैं। प्राय: श्वेताम्बरों का अधिकार है, कुमार पाल तेजपाल आदि के वनवाये हुए अनुपम एवं अनूठे शिल्प कार्य के दर्शनीय मन्दिर हैं। यहाँ से आगे एक कोटे में दि० जैनों के दो विशाल एवं रमणीक तथा एक छोटा मन्दिर है। दो विशाल मन्दिरों का निर्माण सं० १९१५ का है। छोटे मन्दिर में यहाँ पर सबसे प्राचीन खड्गासन प्रतिमा विराजमान है, जिसपर कोई लाँछन और लेख पढ़ने में नहीं आता। वैसे श्री शान्तिनाथ की सं० १६६५ की प्रतिमा भी है सं० १९२० की भगवान नेमिनाथ की प्रतिमा गिरिनार जी की प्रतिष्ठित की हुई है। इस मन्दिर समूह के पास ही--राजुल जी की गुफा है—यहां राजुल जी ने तप किया था। इसमें वैठकर घुसना पड़ता है। उसमें राजुल जी की मूर्ति पाषाण में उकेरी हुई है और एक युगल चरण हैं।

यहाँ से दूसरी टोंक पर जाते हैं, जो अम्बादेवी की टोंक कहलाती है। यहां अम्बादेवी का मन्दिर है, जो मूलत: जैन था। अब इसे जैन एवं हिन्दु दोनों ही पूजते हैं। यहां पर चरणपादुकाएं बनी हुई हैं। —आगे तीसरी टोंक आती है। जिसपर नेमिनाथ स्वामी के चरण-चिह्न हैं। (यहीं वावा गोरखनाथ के चरण और मठ है) यहाँ से

श्रवणवेलगोल—भद्रवाहु गुफा एवं चरण

गिरनार—पांचवें पर्वत पर भ० नेमिनाथ के चरण
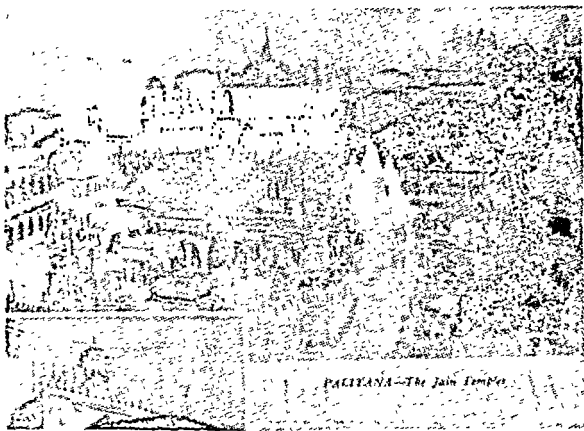
शत्रुंजय पर्वत के जैन मन्दिरों का दृश्य
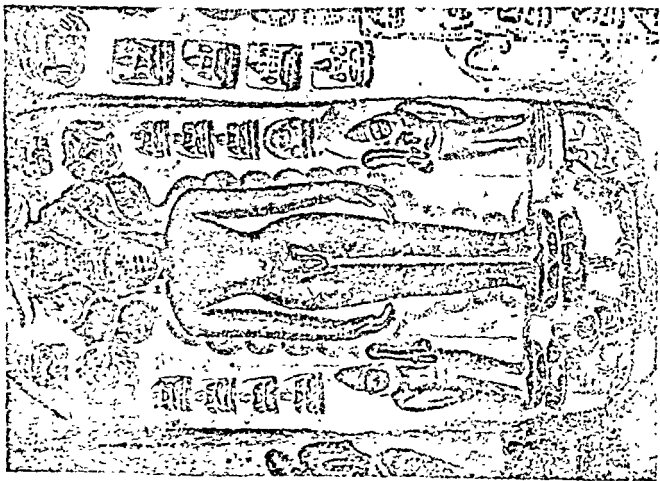
कटक, जैन मन्दिर की प्राचीन प्रतिमा

चौथी टोंक पर जाना होता है, इस पर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ नहीं हैं—बड़ी कठिन चढ़ाई है। टोंक के ऊपर एक काले पाषाण पर नेमिनाथ भगवान की दि० प्रतिमा और पास ही दूसरी शिला पर चरण चिह्न है। सं० १२४४ का लेख है। कुछ लोगों की धारणा है कि यहीं से भगवान मोक्ष पधारे थे और कुछ अन्य कहते हैं कि पांचवीं टोंक से मोक्ष गये थे। इस टोंक से नीचे उतर कर फिर पांचवीं टोंक पर जाते हैं। - यह शिखर सबसे ऊंचा और अत्यन्त रमणीक है। टोंक पर एक मढिया के नीचे नेमिनाथ स्वामी के चरण चिह्न हैं। जिनके नीचे पास ही शिला भाग में उकेरी हुई एक प्राचीन दि० प्रतिमा पद्मासन में है। (वैष्णव लोग इसे गुरुदत्तात्रय का स्थान कहकर पूजते हैं) इस टोंक से ५-७ सीढ़ियां उतरने पर संवत ११०८ का एक लेख मिलता है। नीचे उतर कर वापिस दूसरी टोंक तक आकर गोमुख कुंड से दाहिनी ओर सहसा भवन (सेसावन) को रास्ता जाता है जहां भगवान नेमिनाथ ने वस्त्राभूषण त्याग कर दिगम्बर मुद्रा धारण की थी यह भगवान का 'दीक्षा कल्याणक' स्थान है। चरण बने हुए हैं। यहाँ से तलहटी को जाते है किन्तु यह मार्ग ठीक नहीं है तथा वापिस दूसरी टोंक पर आकर नीचे उतर कर आवें। तलहटी में सुन्दर मन्दिर तथा धर्मशाला है।—जूनागढ़, ऐतिहासिक नगर है, जैन मन्दिर तथा धर्मशाला हैं निकट ही प्राचीन किले में अनेक गुफाओं में जैन मूर्तियां हैं। किले में एक वृहत तालाब तथा बावड़ी देखने योग्य है।

तारंगा जी सिद्ध क्षेत्र

वेस्टर्न रेलवे की महसाना से ब्रांच लाइन पर ५७ कि० मी० तारंगा हिल स्टेशन है। स्टेशन के समीप ही एक छोटी सी धर्मशाला

है। यहां से ५ कि० मी० दूर तलहटी है—पर्वत पर चढ़ाई लगभग डेढ़ कि० मी० है पैंदल एवँ डोली द्वारा जाते हैं। ऊपर दि० जैन धर्मशाला तथा क्षेत्र का कार्यालय है। यहां पर १२ दि० जैन मन्दिरों में दो विशाल हैं। धर्मशाला एवँ मन्दिरों के चारों ओर कोट खींचा हुआ है। दि० धर्मशाला के पीछे एक कि० मी० चढ़ाई पर कोटिशिव नाम का पहाड़ है, मार्ग में दाहिनी ओर दो मढ़ियों में भट्टारक रामकीर्ति तथा पद्मानन्द के चरण चिह्न हैं। मढ़िया के समीप पहाड़ की खोह में लगभग डेढ़ हाथ ऊँच एक स्तम्भ तथा खड्गासन खण्डित प्रतिमा पड़ी हैं, स्तम्भ पर प्राचीन दि० प्रतिमा अँकित है। ऊपर पर्वत के शिखर पर एक मन्दिर में साढ़े चार फुट खड्गासन प्रतिमा एवँ चरण विराजित हैं। प्रतिमा पर सं० १६२१ का लेख है। यहां सबसे प्राचीन प्रतिमा श्री वस्तचिह्न अंकित सं० ११६२ की है।—दूसरी ओर १ कि० मी० ऊँची पहाड़ी है इसके मार्ग में बड़ी ही सुन्दर प्राकृतिक गुफा है ऊपर शिखर हर दो टोकें हैं। पहली में भगवान पार्श्वनाथ और मुनिसुव्रतनाथ जी की श्वेत पाषाण की खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। दूसरी टोंक पर भगवान नेमिनाथ की पद्मासन हरित पाषाण की मनोज्ञ प्रतिमा सं० १६५४ की विराजमान है।—यहां से साढ़े तीन करोड़ मुनि मोक्ष गये है।

श्री सिद्धवर कूट

वेस्टर्न रेलवे के अजमेर खंडवा के बीच मोरटक्का स्टेशन से लगभग ११ कि० मी० वड़वाह स्टेशन से १० कि० मी० बैलगाड़ी के रास्ते पर और सनावद से साढ़े बारह कि० मी० दूर है। मोरटक्का से जाते ही रास्ते में नर्मदा नदी के दाहिने तट पर हिन्दुओं का भव्य तीर्थ ओंकारेश्वर हैं। यहां से नाव द्वारा नर्मदा को पार कर सिद्धवर कूट जाते हैं। यहां से दो चक्रवर्ती और १० कामदेव आदि साढ़े तीन करोड़ मुनि मोक्ष पधारे। एक कोट के

अन्दर आठ दि० जैन मन्दिर और चार धर्मशालाएं हैं। एक मन्दिर जंगल में भी है। यहाँ का प्राकृति दृश्य अत्यन्त मनोहर है। यहाँ से ओंकारेश्वर होकर सनवाद आना चाहिए।

विदिशा

यह नगर मध्य रेलवे की इटारसी झांसी वाली नार्थ ईस्ट मेन लाइन पर स्थित है। यहाँ एक विशाल दिगम्बर जैन मन्दिर है जो विशेष प्राचीन हैं। इसके अतिरिक्त कई सुन्दर मन्दिर व चैत्यालय हैं नगर से लगभग ६ कि० मी० की दूरी पर उदयगिरि पर्वत तथा साँचीं का स्तूप ऐतिहासिक दर्शनीय स्थान हैं। उदयगिरि में २० गुफायें तथा कई मन्दिर है। इन गुफाओं में प्रथम व बीसवीं जैन हैं। दोनों गुफाओं में प्राकृति भाषा व ब्राह्मी लिपि में दो लेख है। दूसरी गुफा के एक आले में दो चरण चिन्ह हैं और दीवालों पर अर्हत प्रतिमायें खंडितावस्था में है। इस गुफा को गुप्त वंश के राजाओं के समय में उनके एक जैन सेनापती ने जैन मुनिराजों के लिए निर्माण कराया था। इन प्रमाणों से यह अनुमान किया जाता है कि संभवतः यह क्षेत्र ही दसवें तीर्थंकर भगवान शीतलनाथ जी की जन्मनगरी भद्दलपुर रही हो। स्टेशन के निकट जैन धर्मशाला है। विदिशा और उसके समीपवर्ती प्रदेश के दर्शनीय स्थान, लोहांगी चट्टान, वेसनगर के भग्नावशेष ईसा पूर्व की ३ से ११वीं शताब्दी तक के हैं, हेलियोडोरस स्तम्भ हलिटोडोरम नामक एक यूनानी ने हिन्दू धर्म अंगीकार कर विष्णु के सम्मान में इसका निर्माण कराया। उदयपुर में उदयेश्वर का मन्दिर, बीजा मण्डल, बाराखम्भी, पिसनारी का मन्दिर, महल आदि। ग्यारस में, अठखम्भा, वज्रमठ, मालदेवी, मंदिरों के खण्डहर तथा ८वीं व १०वीं शताब्दी का हिंडोला तोरण। दाँत

में, जैन मन्दिर, गुड़मल मन्दिर, सोलह-खम्भी हाल, दशावतार मन्दिर, सतमढ़ी मन्दिर आदि ।

रामटेक (अतिशयक्षेत्र)

दक्षिण – पूर्वी रेलवे की रामटेक नागपुर लाईन पर यह क्षेत्र रामटेक स्टेशन से लगभग २ कि० मी० दूर जैन धर्मशाला के निकट है। शहर के निकट ही जंगल में अत्यन्त रमणीक मन्दिर समूह है। कुल १० मन्दिर हैं जिनमें दो मन्दिर दर्शनीय विपुल लागत के हैं। एक मन्दिर में १८ फुट अवगाहना वाली कायोत्सर्ग पीले पाषाण की भगवान शान्तिनाथ की प्रतिमा अति मनोज्ञ चौथे काल की है। अन्य मन्दिर प्राय: सं० १९०२ के बने हुए हैं। ऐसा अनुमान है कि श्री अप्पा साहब भोंसले के राजमन्त्री वर्धमान साव ने यहां कई मन्दिरों का निर्माण कराया था।

भद्रावती (भांदक)

मध्य रेलवे की वर्धा—विजयवाड़ा लाईन पर भाँदक स्टेशन है। इसका प्राचीन नाम भद्रावती था। ग्राम से थोड़ी दूर एक पहाड़ी पर तीन ओर गुफाएँ हैं, जिनमें प्राचीन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। इन्हें विभ्भा-सन की गुफाएँ कहते हैं। टेकरी पर पार्श्वनाथ मन्दिर है जिसमें निकट के सरोवर से अनेक प्राचीन मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा भी स्वप्नादेश पर जमीन से निकाली गई थी। इस मन्दिर के अतिरिक्त आदिनाथ स्वामी के मन्दिर के शिखर-भाग में मनोहर चौमुखी प्रतिमा विराजमान है।

श्री मुक्तागिरि-मेढगिरि सिद्ध क्षेत्र

मध्य रेलवे की मुर्तजापुर-एलिचपुर लाइन पर एलिचपुर से लगभग १४ कि. मी. दूर यह क्षेत्र है। इस पर्वत से साढ़े तीन करोड़ मुनि मुक्त हुए हैं, इस कारण सिद्ध क्षेत्र है तथा मुक्त के नाम पर मुक्तागिरि पड़ा है। पर्वत की तलहटी में एक जैन धर्मशाला और एक मन्दिर है। तलहटी से लगभग २ फर्लांग की चढ़ाई है तथा चढ़ने हेतु सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। पर्वत पर गुफाओं के आस-पास ३५ मन्दिर हैं, जिनमें अधिकांश १६ वीं० शताब्दी के हैं किन्तु कुछ मन्दिर अधिक प्राचीन हैं। यहां से प्राप्त एक ताम्रपत्र से इस क्षेत्र का सम्बन्ध सम्राट श्रेणिक बिम्बसार (देखें राजगृह के विवरण में) के साथ प्रकट होता है। यहाँ ४० नं. का मन्दिर पर्वत के गर्भ में खुदा हुआ है, वह प्राचीन है। इस मन्दिर की नक्काशी का काम अति सुन्दर है। स्तम्भों और छत की रचना अपूर्व है। भगवान शान्तिनाथ की प्रतिमा अति मनोज्ञ एवं दर्शनीय है। मन्दिर के समीप ही लगभग २०० फीट ऊँचाई से पानी की धारा पड़ती है, जिससे रमणीय जल प्रपात बन गया है। भगवान पार्श्वनाथ का मन्दिर भी प्राचीन एवं दर्शनीय शिल्प कला का नमूना है। यह प्रतिमा सप्त फणमन्डित प्राचीन है। यहां निरन्तर केशर की वर्षा होती बताई जाती है।

अमरावती

बदनेरा-अमरावती शाखा लाइन पर क्षेत्र अवस्थित है। नगर के चारों ओर कोट है। यहाँ पर १४ दि० जैन मन्दिर तथा २२ जैन चैत्यालय है। एक मन्दिर में भोहरा है। दूसरे प्राचीन मन्दिर में स्फटिक की १५ पुखराज की १ चांदी की २ मूंगा की १ और हीरा की एक, इस प्रकार रत्नों की २० प्रतिमाएं हैं।

परतवाढ़ा

अमरावती नगर से लगभग ५२ कि० मी० दूर यह कस्बा है। यहाँ एक दि० मन्दिर दर्शनीय है। ४-५ कि० मी० की दूरी पर सुलतानपुरा ग्राम में एक विशाल दि० जैन मन्दिर एवं चैत्यालय है, जिसमें एक ८ अंगुल ऊंची मूंगा की प्रतिमा हैं।

भातकुली (अतिशय क्षेत्र)

अमरावती से १६ कि० मी० दूरी पर अवस्थित है। यहां तीन मन्दिर एवं चैत्यालय हैं। एक मन्दिर में भगवान ऋषभदेव की श्याम वर्ण प्रतिमा अति मनोज्ञ व सातिशय विराजमान है।

कारंजा

अमरावती से ६८ कि० मी० पर स्थित है। यहां एक प्राचीन विशाल मन्दिर व भट्टारकों की गद्दियां हैं। मन्दिर में धातु व पाषाण की प्राचीन अर्वाचीन सैकड़ों प्रतिमाएँ हैं। एक मन्दिर में सर्वधातु-मयी सहस्त्रकूट चैत्यालय है। अन्य मन्दिरों में नंदीश्वर द्वीप सम्बंधी ५२ पंचमेरू की ८० तथा अनेक प्रतिमायें हैं। ब्रह्मचर्याश्रम के भवन के ऊपरी व भूगर्भ भाग में चैत्यालय हैं। भूगर्भ चैत्यालय में मूंगा की ४ चांदी ३ सोने की १ गरुणमणि की १, स्फटिक की ४ व नीलमणी की १, इस प्रकार कुल १४ रत्नमय प्रतिमायें हैं। चैत्यालय के सामने विशाल मानस्तम्भ है।

अंतरिक्ष पार्श्वनाथ

यह अतिशय क्षेत्र मध्य रेलवे की भुसावल-नागपुर लाइन पर अकोला स्टेशन में ३० कि० मी० शिरपुर ग्राम के निकट अवस्थित

है। शिरपुर में दो मन्दिर हैं। एक प्राचीन मन्दिर के भोंहरे में १६ मनोज्ञ प्रतिमाएँ हैं। मूलनायक प्रतिमा भगवान पार्श्वनाथ की ढाई फुट ऊँची श्याम वर्ण की पृथ्वीतल से एक अंगुल ऊँची अधर विराजमान है केवल दक्षिण ओर का घुटना जमीन से सटा हुआ है। इस प्रतिमा के अधर होने से ही यह क्षेत्र अंतरिक्ष नाम से सम्बोधित किया जाता है। इस क्षेत्र को दिगम्बर व श्वेताम्बर समान रूप से पूजते हैं। शिरपुर से पश्चिम की ओर १ कोट में दि० जैन मन्दिर है। तथा चार निशियां हैं।

इन्दौर

इन्दौर मालवा प्रान्त का प्रधान नगर है। शहर के मध्य में नदी है और शहर दो भागों में विभक्त हो जाता है। यहां अनुमानतः १५ जैन मन्दिर हैं। छावनी में दो तुकोगंज में तीन माणिक चौक में दो शक्कर बाजार में तीन गोरा कुण्ड में एक। मल्हारगंज की निशियाँ में एक हुक्मचन्द्र मार्ग में तथा एक जवँरीबाग धर्मशाला के मध्य में है। इनमें शक्कर बाजार के तीनों मन्दिर बड़े विशाल बने हुए हैं। हुक्मचन्द्र मार्ग में उनके शीश महल के वाला मन्दिर विशाल मनोरंजक एवं देखने योग्य है।—अन्य दर्शनीय स्थल, राज्य भवन महाराजा का महल, लाल बाग, शीश महल, इन्द्र भवन, कल्याण भवन, विनोद भवन आदि हैं।

भोपावर

धार नगर से यह स्थान ४० कि० मी० है। यहां के विशाल प्राचीन मन्दिर में भगवान शान्तिनाथ स्वामी की १२ फुट ऊँची अति मनोज्ञ प्रतिमा प्रतिष्ठित है। अन्य तीर्थंकरों व गणधरों की प्राचीन प्रतिमायें हैं।

मक्सी पार्श्वनाथ (अतिशय क्षेत्र)

पश्चिमी रेलवे की नागदा—भोपाल वाली लाईन पर यह क्षेत्र अवस्थित है। स्टेशन का नाम मक्सी है। स्टेशन के पास ही धर्मशाला है। यहां से पौने दो कि० मी० दूर कल्याणपुर ग्राम में दो दि० जैन मन्दिर ;वं धर्मशाला है। मन्दिरों में कई प्रतिमाएँ मनोज्ञ हैं। यहां एक प्राचीन मन्दिर हैं जिसमें मूलनायक प्रतिमा पद्मासन श्याम वर्ण साढ़े तीन फुट अवगाहना की भगवान पार्श्वनाथ की विराजमान है इस प्रतिमा की पूजा वगैरह दिगम्बर व श्वेताम्बर दोनों समान रूप से करते हैं। उभयपार्श्वो में श्वेताम्बरीय प्रतिमायें विराजमान हैं। इस मन्दिर के चारों ओर ५२ देवरी बनी हैं जिनमें ५२ दि० प्रतिमाएं विराजमान हैं। यहाँ के अतिशय के बारे में यह प्रसिद्ध है -बादशाह हुमाँयू ने ससैन्य क्षेत्र को नृष्ट-भृष्ठ करना चाहा, तो इस कार्य को करने वाले सब अन्धे हो गये तो बादशाह ने इसे सुरक्षित रखा और अपने कार्य के प्रति क्षमा याचना की तब यह सैनिक सुरक्षित वापस हुए।

उज्जैन

प्राचीन एवँ ऐतिहासिक नगर पश्चिमी रेलवे की नागदा-उज्जैन-भोपाल लाइन पर अवस्थित है। यह प्राचीन अतिशय क्षेत्र है, जैन साहित्य में अवन्तिकापुरी का, उज्जैन या ·ज्जयिनी नाम जैन शासन के समय ही पड़ा। यहां की शमशान भूमि में भगवान महावीर ने तपस्या की थी और रुद्र ने उन पर उपसर्ग किया था। कालान्तर में यह स्थान चन्द्रगुप्त की राजधानियों में भी रहा। श्रुतकेवली भद्रबाहु यहाँ पधारे थे। यहाँ के प्राचीन खंडहर जैन वैभव पर प्रकाश डालते हैं। साहित्य का ऐसा कोई अंग नहीं, जिसमें अवन्तिका पुर प्रकाश न डलता हो। धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टि से

उज्जैन की पवित्रता और प्रमुखता सर्वत्र स्वीकार की गई है। महाभारत काल में भी बहुत उन्नत अवस्था में थी। पुरातन विद्यापीठ में अशोक, चन्द्रगुप्त और कालिदास आदि ने परीक्षाएँ दी थी,—ज्योतिष के अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों का यहाँ निर्माण हुआ था, अशोक उज्जैन का राज्यपाल बनकर वर्षों उज्जैन में रहा, विक्रमादित्य इतिहास प्रसिद्ध वीर महातेजस्वी और शकविजयी तथा संवत्—प्रवर्त्तक यहीं रहा। अन्य प्रमुख दर्शनीय स्थान, महाकालेश्वर मन्दिर—विक्रमादित्य की आराध्या देवी हरसिद्धि—क्षिप्रातट—चौबीस खम्बा द्वार—भर्तहरि की गुफा—काल भैरव—अशोक निर्मित नरकागार—सिद्धवट—कालियादह—वेधशाला आदि।

ऊन (पावागिरि)

सनवाद से बस द्वारा खरगोन आना चाहिए। यहां से अतिशय क्षेत्र ऊन (पावागिरि) ३ कि० मी० दूर है। एक धर्मशाला में मन्दिर है तथा श्राविकाश्रम है। यहां अनेक मन्दिर और मूर्तियां भूगर्भ से निकली हैं जो अत्यन्त मनोहर एवं दर्शनीय हैं। प्राचीन दि० जैन मन्दिर मालवा प्रान्त के उदयादित्य राजा के काल के बने हुए हैं। इस क्षेत्र और मन्दिरों के सम्बन्ध में लोगों में जनश्रुति प्रचलित है। यहां का राजा बल्लाल था, बाल्यकाल में भूल से वह छोटी सी नागिन को निगल गया था। जब वह बढ़ने लगी तब राजा को अत्यन्त कष्ट रहने लगा। कष्ट निवारण की कोई आशा न होने के कारण वह गंगा में प्राण विसर्जन करने हेतु काशी को चल पड़ा। मार्ग में एक रात को रानी ने राजा के पेट के भीतर की नागिन और बाहर रहने वाले एक नाग का वार्तालाप सुना। सांप ने नागिन से कहा 'कि यदि राजा को मालूम हो जाए कि पानी में बुझाया हुआ चूना खा लेने से तेरा अन्त हो सकता है तो तेरा जीना भी असम्भव

हो जायेगा।' नागिन ने उत्तर दिया 'कि यदि राजा को तेरे बिल में गर्म तेल डालने का ज्ञान हो जाये तो तू शीघ्र ही मर जायगा और जिस विशाल धन राशि की तू रक्षा कर रहा है यह भी से मिल जायेगी।' रानी ने सारा वृत्तान्त राजा को सुनाया। कुछ चूना खा लेने से राजा ठीक हो गया और उसने उक्त बिल का पता लगा कर गर्म तेल डाल दिया, साँप मर गया और राजा बल्लाल को विपुल धन प्राप्त होगया। उसने १०० तालावों, १०० मन्दिरों और १०० कुओं (बावड़ियों) को बनाने का संकल्प किया, किन्तु भाग्य ने साथ न दिया और १०० का संकल्प पूरा न होकर प्रत्येक में एक की कमी रह जाने से इस क्षेत्र का नाम 'ऊन' (अर्थात् कमी वाला नाम) पड़ा।

उन के देवालयों के बल्लाल द्वारा बनाये जाने की दंत कथा संगत जान पड़ती है। इसका उल्लेख मिली हुई एक मूर्ति पर खुदे लेख से उसकी पुष्टि होती है। उसमें 'राजा बल्लाल के समकालीन प्रभाचन्द्राचार्य' का नाम अंकित है। उन में अभी भी कमल युक्त तलाइयां भी देख पड़ती हैं। मन्दिर में मूलनायक प्रतिमा भगवान शान्तिनाथ की खड़गासन कृष्ण पाषाण की १५ फुट अवगाहना की विराजमान है तथा उभय पार्श्ववर्ती दोनों प्रतिमाएं ११-११ फुट अवगाहना की कृष्ण पाषाण में भगवान कुन्थुनाथ एवं अरहनाथ की हैं। इनकी प्रतिष्ठा सं० १२६३ की है। इस मन्दिर में इतनी मिट्टी हो गई थी कि केवल भगवान शान्तिनाथ का मुख ही दिखाई देता था। मन्दिर के निकट ही चेलना नदी है।

बड़वानी जी

वड़वानी—वेस्टर्न रेलवे के महू स्टेशन से जुलयनिया होकर

१५० कि० मी० और टीकेरी होकर १२७ कि० मी० की दूरी पर है। गुजरात की ओर से आने वालो को दोहद स्टेशन से मोटर द्वारा कुक्षी आना चाहिये, यहाँ से २।। कि० मी० पर तालनपुर अतिशय क्षेत्र है (यहाँ के दर्शन करें) यहाँ से लगभग २८ कि० मी० वडवानी है। एक विशाल दि० जैन मन्दिर एवं धर्मशालाएँ हैं। मन्दिर का समवसरण दर्शनीय है, मूलनायक प्रतिमा भगवान नेमिनाथ स्वामी की है जिस पर सं० १३८० अंकित है।

चूलगिरि (बावन गजा)

वड़वानी नगर से दक्षिण की ओर लगभग ७ कि० मी० की दूरी पर चूलगिरि पर्वत है। यहाँ से इन्द्रजीत और कुम्भकर्ण आदि ५३ करोड़ मुनिराजों ने मुक्ति प्राप्त की अतएव यह सिद्ध क्षेत्र है। पर्वत पर २२ दि० जैन मन्दिर व एक चैत्यालय है। इन मन्दिर में पहाड़ में उत्कीर्ण वावनगजा नामक ८४ फुट ऊँची भगवान आदिनाथ स्वामी की विशाल एवँ प्राचीन प्रतिमा है। ऐसा भी मत है कि यह प्रतिमा कुम्भकरण की है, उसी के पास ६ गज की प्रतिमा इन्द्रजीत की है। इस प्रतिमा जी के ऊपर पीछे की ओर एक दालान के मध्य में भगवान चन्द्रप्रभु तथा उभयपार्श्वों में चरण-चिन्ह विराजमान हैं। नीचे के मन्दिर की दो वेदियों में क्रमशः शान्तिनाथ, कुंथनाथ, अरहनाथ व मल्लिनाथ स्वामी और नेमिनाथ जी की मूर्तियां विराजमान हैं। अन्य मन्दिरों में भगवान मल्लिनाथ, चन्द्रप्रभु, मुनिसुव्रत नाथ आदि तीर्थकरों की प्रतिमाएँ विराजमान हैं जिनमें अधिकाँश यहीं जमीन के अन्दर से खुदाई में प्राप्त हुई थीं। कई मन्दिरों के भग्नावशेष भी पाये जाते हैं। एक छतरी में तीन प्रतिमाएँ कुंदकुंदाचार्य आदि की विराजमान हैं।

लेख वाली प्रतिमायों के अनुसार कुछ १३ वी शताब्दी की हैं।

इससे ज्ञात होता है कि यह क्षेत्र १३ वीं शताब्दी से पूर्व भी प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र था प्रति वर्ष पौष सुदी ८ से १५ तक मेला होता है। यह स्थान वास्तव में तपो भूमि है। धर्मशाला से ही चूलगिरि पर्वत की चढ़ाई प्रारम्भ हो जाती है जो लगभग १ कि० मी० हैं।

नीमच

रतलाम—खंडवा (मालवा-सेक्शन) वाली छोटी लाईन पर अवस्थित है। यहां एक जैन मन्दिर है।

मंदसौर

नीमच से ५१ कि० मी० शिवना नदी के किनारे पर अवस्थित है और मालवा प्रान्त का प्रसिद्ध नगर है। नगर के मध्य में और स्टेशन के निकट जैन धर्मशाला तथा पांच शिखर वन्द मन्दिर एवँ दो चैत्यालय हैं।

प्रतापगढ़

मंदसौर से ३० कि० मी० है तथा यहाँ महाराणा प्रताप ने सं० १६६८ में एक कोट को अपनी राजधानी बनाया था। इस समय यहां नौ शिखर वंद जैन मन्दिर एवं सात चैत्यालय हैं। नगर से एक कि० मी० की दूरी पर भी १ मन्दिर है। उसमें भगवान शान्तिनाथ की नौ फुट अवगाहना की पद्मासन सातिशय अति मनोज्ञ प्रतिमा विराजमान है।

बुन्देलखण्ड

विन्ध्यगिरि पर्वत हमारे देश के महान पर्वतों में से एक है।

ऐतिहासिक दृष्टि से भी इसका महत्व कम नहीं है। इसके नाम पर ही इस प्रदेश का विंध्येलखण्ड अपभ्रंश होकर बुन्देलखण्ड नाम पड़ा और यहां के शासक बुन्देले कहलाये जो अपनी शूर-वीरता के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। छत्रसाल जैसे वीर, मधुकर शाह जैसे नीतिवान् एवं हरदौल जैसे गौरवशील महापुरुष इस वसुन्धरा के पुण्य प्रतीक थे। प्राचीन काल में बुन्देलखण्ड को जेजाक-मुक्ति, जुझारखण्ड, वज्र-चेदि और दशार्ण आदि नामों से सम्बोधित किया गया है, महाभारत काल में यह 'चेदि' कहा जाता था चन्देरी यहां की राजधानी थी और शिशुपाल यहां का राजा था, जिसका श्री कृष्ण से नाता होते हुए भी विरोध था। महाकवि कालिदास ने मेघदूत काव्य में इसे 'दशाण' देश के रूप में स्मरण किया है। उस समय 'विदिशा' (भेलसा) इसकी राजधानी थी। यहीं चित्रकूट आदि वन भी हैं जहां पुरुषोत्तम राम ने अपने वनवास काल में इसे अपनी चरणरज से पवित्र किया था। वह द्रोणगिरि पर्वत भी शायद यहीं हो जहां लक्ष्मण को शक्ति लगने पर हनुमान जी जड़ी-बूटी लेने आये थे। पाण्डवों की भी यह वन भूमि रहा है।

विन्ध्यगिरि के सघन वनों अगम्य गुफाओं, कलकल करती बलखाती हुई सरिताएँ, लहलहाते शस्य-श्यामल हरे-भरे खेत एवं पवनान्दोलित विविध लतागृह गिरि-श्रेणियों से वेष्टित बुन्देलखण्ड जैन क्षेत्रों का घर है।

ग्वालियर

यह ऐतिहासिक नगर मध्य रेलवे की मेन लाईन पर देहली से ३१९ कि० मी० तथा आगरा से ११८ कि० मी० पर अवस्थित है। ग्वालियर का दुर्ग अनेक शूरवीरों तथा कला-प्रेमियों की गाथाएँ अपने अन्तराल में समेटे गंभीर मुद्रा में सतर्क प्रहरी की भांति खड़ा

यात्रियों को अपने गौरवमय अतीत और वर्तमान ऐश्वर्य की साक्षी दे रहा है। इसको कच्छवाहा राजा सूरसेन ने सन् २७५ में निर्माण कराया था। उस समय कदाचित यह गोपगिरि अथवा गोपदुर्ग के नाम से भी प्रसिद्ध था। यहाँ के राजाओं के शासनकाल में सदैव ही जैन धर्मानुयाइयों की बहुलयता रही तथा कई राजाओं के स्वयं जैन धर्मानुयायी होने के कारण जैन धर्म को राज-संरक्षण भी प्राप्त हुआ।

नगर में १५ विशाल मन्दिर हैं, इनमें चम्पावाग तथा पंचायती मन्दिरों में स्वर्ण-चित्रकारी दर्शनीय है पुरानी बस्ती में भी १२ मन्दिर हैं। चम्पा वाग में सुन्दर धर्मशाला है। दुर्ग के उरवाई द्वार के दोनों ओर ढाल पर वहुतसी छोटी-बड़ी जैन मूर्तियां बनी हुई हैं। इनमें कुछ खडगासन एवं कुछ पद्मासन तथा अन्य लेटी हुई हैं। कुछ मूर्तियाँ ताकों में भी वनी हुई हैं। इसी प्रकार की बहुत-सी मूर्तियां किले की चट्टानों पर जहां-तहाँ वनी हुई हैं। ग्वालियर दुर्ग की ये पत्थर की मूर्तियाँ उत्तर भारत की विशालतम मूर्तियों में से हैं। सबसे विशाल मूर्ति लक्ष्मण द्वार से उतरते हुए ढाल पर वायीं ओर ५७ फीट ऊँची है। लोकोक्ति है कि इन मूर्तियों की तैयारी में लगभग ३३ वर्ष लगे थे। निश्चय ही किले के भग्नावशेष व जैन मूर्तियां यह प्रकट करती हैं कि इ। क्षेत्र में जैनों का महत्व सदैव रहा है। मुसलमानों ने इन मूर्तियों को खण्डित करा दिया था, जिन्हें बाद में सुधारा गया है।

पनिहार क्षेत्र

ग्वालियर नगर से लगभग २४ कि० मी० तथा पनिहार ग्राम से थोड़ी दूरी पर एक दिगम्बर जैन मन्दिर है, जिसके एक भोंहरें में १४४ प्राचीन प्रतिमाएं विराजमान हैं। इस मन्दिर से लगभग

१ कि० मी० आगे एक अन्य मन्दिर में २४ फुट अवगाहना की तीन प्रतिमाएँ अति मनोज्ञ हैं।

सोनागिरि सिद्ध क्षेत्र

सोनागिरि जिसका प्राचीन नाम श्रमणगिरि एवँ स्वर्णगिरि है, विंध्यप्रदेश के दतिया प्रान्त में 'स्थित, सुन्दर एवँ मनोरम पहाड़ी है दिल्ली से वम्बई मेन लाईन पर झाँसी से ३६ कि० मी० तथा दतिया से ११ कि० मी० है। रेलगाड़ी से ही सोनागिरि के मन्दिरों के दर्शन होते हैं। मन्दिरों की पंक्ति स्वभावत: दर्शकों का मन मोह लेती है और उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करती है। स्टेशन से क्षेत्र ५ कि० मी० पक्की सड़क पर अवस्थित है।

सोनागिरि का धार्मिक महत्व के साथ-साथ इतिहासिक महत्व भी कम नहीं है। यह प्राचीन स्थान है, यह तो इसके प्राचीन नाम श्रमणाचल अथवा श्रमणगिरि से निश्चित हो जाता है। 'श्रमण' मुनियों को कहते हैं और गिरि या अचल पहाड़ का नामांतर है जिसका अर्थ हैं मुनियों की तपोभूमि। श्रमणों—जैन भिक्षुओं का—निवास स्थान होने से इसे श्रमणगिरि प्रख्यात किया गया। इसी का अपभ्रंश होकर सोनागिरि हो गया। तलहटी में जो गांव है उसे सनावल कहते हैं। जो श्रमणाचल का विकृत रूप है। इस पावन पूज्य भूमि से नंगानग कुमार सहित साढ़े पांच करोड़ मुनि कर्मों को नष्ट करके इस अवसर्पिणी काल के चतुर्थ काल में मोक्ष पधारे हैं। यह भी प्रसिद्ध है कि श्री चन्द्रप्रभु भगवान 'का समवशरण कई बार यहां ठहरा था। पर्वत पर ७७ शिखर युक्त जिन मन्दिर हैं जिनकी वंदना को जाने के लिए पक्के मार्ग बने हुए हैं और प्रत्येक पर क्रम संख्या पड़ी हैं, जिससे वन्दना करने में गलती नहीं होती। इनमें से

अनेक मन्दिर निर्माणशैली तथा निर्माण युग के प्रभाव की विशेषता के कारण ध्यान देने योग्य हैं।

श्री चन्द्रप्रभु का विशाल एवं दर्शनीय मन्दिर (नं० ५२) पहाड़ पर समतल भूमि पर है। उसमें मूलनायक अतिशय युक्त भगवान चन्द्रप्रभु की १२ फुट अवगाहना की ध्यान मुद्रा में विराजमान है। सचमुच शिल्पी ने इस मनोज्ञ मूर्ति में सजीवता भर दी है, इसके सन्मुख पहुँचते ही भक्ति से नत मस्तक हो जाता है। एक लेख के अनुसार इस मन्दिर का निर्माण सं० ३३५ की साल में पौष शुक्ला १५ को श्रवण सेन कनक सेन ने कराया था, जिसका जीर्णोद्धार वि० सं० १८८३ में सेठ लखमी चन्द मथुरा वालों ने कराया। पहाड़ पर एक छोटा सा कुण्ड नारियल की शक्ल का है तथा एक ही शिला में वना हुआ है, इसे नारियल कुण्ड कहते हैं। वाजनी शिला, १५ फुट लम्वी १० फुट चौड़ी है और एक पत्थर के सहारे टिकी है, इस शिला को वजाने से मधुर घंटी जैसी आवाज आती है।

पर्वत के नीचे तलहटी में १८ मन्दिर हैं जिन पर भी क्रम संख्या पड़ी है तथा १५ धर्मशालाएँ हैं। इनमें से दिल्ली वाले मन्दिर और एक धर्मशाला को छोड़ कर जो कमेटी के आधीन है शेष मन्दिरों और धर्मशालाओं का प्रवन्ध विभिन्न पंचायतों द्वारा होता है। पर्वत के ७७ मन्दिरों का प्रवन्ध सिद्ध क्षेत्र कमेटी करती है—प्रदक्षिणा का पक्का मार्ग है जो लगभग ५ कि० मी० है।

करगुवां

करगुवां क्षेत्र झाँसी शहर से ५ कि० मी० की दूरी पर झांसी-लखनऊ मार्ग पर मेडिकल कालेज के ठीक सामने आधा कि० मी० दूर पहाड़ी की मनोरम तलहटी में अवस्थित है। क्षेत्र ८ एकड़ भूमि के परकोटे में भूगर्भ (भोंयरे) में है। अव केवल ७ प्रतिमाएँ हैं।

उनमें से ६ पर सं० १३४३ खुदा हुआ है। भगवान महावीर की एक प्रतिमा पर सं० १८५१ खुदा है। यहाँ मूलनायक प्रतिमा भगवान पार्श्वनाथ की है। इस प्रतिमा के निकट प्रायः सर्प देखे गये हैं किन्तु किसी को उन्होंने कभी भी काटा नहीं। इस क्षेत्र के अतिशयों की अनेक किंवदन्तियां प्रचलित हैं। यहाँ वर्ष में दो मेले होते हैं--चैत्र शुक्ला त्रियोदशी तथा कार्तिक कृष्णा अमावस्या।

पावाजी (पावागिरि)

झांसी से ४१ कि० मी० और ललितपुर से ४८ कि० मी० है। इन दोनों स्टेशनों के मध्य में, मध्य रेलवे के बसई अथवा तालबेहट स्टेशन पर उतरना चाहिए जो यहां से क्रमशः १३-१४ कि० मी० पूर्व में है। मोटर व जीप जा सकती है। कच्चे मार्ग में २ नाले पड़ते हैं। क्षेत्र के पश्चिम में बेतवा और दूसरी ओर चेलना या बेलना नदियाँ बहती हैं। दो पहाड़ियों में से एक पहाड़ी 'सिद्धों' की पहाड़ी कहलाती है। जिस पर २ मढियां बनी हैं। दोनों की बनावट एक-सी है परन्तु एक प्राचीन प्रतीत होती है। जैसी मढियां पहाड़ी की चोटी पर है, वैसी ही क्षेत्रपाल की मढ़िया मूल भोंयरे के पास है। उन दोनों मढियों में चरण चिन्ह बने होंगे परन्तु अब वह यहां नहीं हैं। जहां सिद्धों की पहाड़ी और क्षेत्र की परिक्रमा देने वाली चेलना नदी मिलती है वहीं एक शिला रखी है जिसे मेधानन देवी की शिला कहते हैं।

यहाँ के लिए ऐसी किंवदन्ती है कि एक साधु सिद्ध पहाड़ी की मढ़िया पर आकर रहा जो कभी नीचे नहीं आया। पहाड़ी के ऊपर ही उसकी मृत्यु हुई और वहीं पर उसका दाह-संस्कार भी हुआ। हो सकता है कि दूसरी मढिया उसकी स्मृति में बनायी गयी हो, क्योंकि वह सिद्ध पुरुष माना जाता था और उसी के कारण इसका

नाम 'सिद्धों की मढ़िया' पड़ा ।

नायक की गढ़ी—जहाँ सिद्धों की पहाड़ी प्रारम्भ होती है वहाँ 'लाला हैदोल' का चवूतरा बना है, जहाँ कुछ खण्डित मूर्तियां पड़ी हैं। उसी चवूतरे से नायक की गढ़ी का बाहरी परकोटा शुरु हो जाता है। यहाँ गढ़ी के पूरे निशान, परकोटा, बावड़ो, सीढ़ियाँ तथा कमरों के भग्नावशेष अब भी मिलते हैं। वस्तुत: यह नायक की गढ़ी नहीं है वल्कि एक विशाल जैन मन्दिर के खण्डहर हैं। यदि इन खण्डहरों का उत्खनन हो तो इसमें कई बोलते पृष्ठ दवे पड़े मिलेंगे।

सात भोंयरे वुन्देलखण्ड में रहे हैं, जिनमें से एक भोंयरा पावागिरि का है अन्य देवगढ़, चन्देरी, सैरोन, करगुवाँ, पपौरा और थूवौन में हैं। कहा जाता है कि यह सातों भोंयरे देवपत-खेमपत के बनवाये हुए हैं। इस भोंयरे में कुल ६ मूर्तियाँ हैं जो तीर्थंकर मल्लिनाथ, आदिनाथ, पार्श्वनाथ, नेमिनाथ आदि की वि० संवत् १२६६ एवं १३४५ की हैं। पावागिरि सिद्ध क्षेत्र के स्थान के सम्बन्ध में कुछ विवाद है। प्रचलित मान्यता उनके निकटवर्ती पावागिरि की है। पावा जी अतिशय क्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध रहा है, किन्तु कुछ समय से वुन्देलखण्ड का प्रवुद्ध वर्ग यह दावा कर रहा है कि 'पावा जी ही वास्तविक पावागिरि' है। वेतवा नदी ही वास्तव में चेलना नदी है। इसलिए स्वर्णभद्र आदि चार मुनि जिस पावागिरी से चेलना के तट पर मुक्त हुए हैं, वह पावागिरी और चेलना यहीं है। यहां तीन नवीन जिनालय हैं तथा एक मानस्तम्भ है। बाहुवली स्वामी की एक भव्य मूर्ति भी विराजमान की गयी है। पहाड़ी पर सुवर्णभद्र आदि मुनिराजों के चरण-चिन्ह वने हुए हैं। क्षेत्र का वार्षिक मेला मंगसिर कृष्णा २ से ५ तक होता है। ठहरने के लिए धर्मशाला है।

खजुराहो

खजुराहो झांसी से छतरपुर-वमीठा होकर १७५ कि.मी. है। चन्देल युग में एक विशाल नगरी थी, जो आठ-दस वर्ग मील के अन्तर्गत वसी हुई थी। पुराने अभिलेखों में इस स्थान को 'खरजुवाहका' कहा गया है। परम्परा से यह माना गया है कि इस नगरी में एक समय सिंह द्वार पर दो स्वर्ण क खजूर के वृक्ष बनाए गये थे, ताकि प्रवेश द्वार सुसज्जित रहे। जिस चन्देल नृप ने इस वंश की नींव डाली वह नन्नुक नाम से विख्यात था तथा ई० सन् ८३० के लगभग शासन करता था। चन्देलों का जन्मस्थान मणियागढ़ था जो केन नदी के दायीं ओर एक छोटी सी पहाड़ी मात्र है। यहाँ पर पहले एक दुर्ग था, जिसमें चन्देले शताब्दियों तक राज्य करते रहे, परन्तु उत्तर भारत के सम्राट हर्षवर्धन की मृत्यु के पश्चात् चन्देलों ने अपने राज्य का प्रसार वड़े वेग से किया। वह प्रतिहार राज्य के उत्तराधिकारी बने, यह काल नवीं शताब्दी के मध्य का था और उस समय प्रतिहार राज्य के शासक भोज थे। चन्देल नृप हर्षदेव ने, जो बड़े पराक्रमी थे, अपने राज्य को पराधीनता से छुड़ा कर स्वतन्त्र घोषित कर दिया और कन्नौज के राजा क्षितिपाल देव को भी राष्ट्र कूट वंश के तृतीय राजा इन्द्र के चंगुल से छुड़ाया। हर्ष से लेकर धंग के काल तक चन्देल राज वंश वहुत फला-फूला; किन्तु लगभग १३वीं शताब्दी में त्रैलोक्य वर्मदेव के पश्चात इस वंश का अन्त हो गया।

उस समय खजुराहो की मूर्तिकला अपने विकास को चरमसीमा पर पहुँच चुकी थी। हर मन्दिर की शिल्पकला अपने काल की संस्कृति एवं सभ्यता का दिग्दर्शन स्वयं कराती है। उन मन्दिरों को ध्यान से अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि उन कला प्रेमी चन्देल नृपो ने अपने काल के जीवन की हर घटना का इस प्रकार अंकन करवाया, मानों उन्हें आज के काल की कल्पना हो गई हो। खजुराहो

के अवशेषों में आखेट, लोक नृत्य, उत्सव, युद्ध पूजन, स्नेह, काम, शृंगार, ममता, अकाल, सम्पन्नता, कर्मरत, मजदूर आदि दिखाए गये हैं। चन्देलों की वैभवशाली राजधानी में आज वहाँ केवल २०-२२ मन्दिर शेष हैं। कुछ को तो १४९५ में सिकन्दर लोदी ने भागते समय नष्ट कर दिया था।

खजुराहो में जैन मन्दिरों का समूह पृथक है। बस स्टैंड से पूर्व की ओर दो कि० मी० की दूरी पर खजुराहो के सन्निकट में जैन मन्दिर अवस्थित हैं। वस स्टैन्ड से रिक्शा जैन मन्दिरों तक जाने के लिए प्राय: हर समय उपलब्ध रहते हैं। घंटाई मन्दिर के अतिरिक्त शेष सभी जैन मन्दिरों के चारों ओर सुरक्षा की दृष्टि से एक पर-कोटा बना हुआ है। इन मन्दिरों की कुल संख्या ३३ है। शिखर युक्त मन्दिर २२ ही हैं। इनमें ऐतिहासिकता एवं कलात्मकता की दृष्टि से भगवान शान्तिनाथ, पार्श्वनाथ, आदिनाथ एवं घंटाई मन्दिर विशेष रूप से दर्शनीय हैं।

भगवान शान्तिनाथ जिनालय—यह जिनालय प्रमुख है, इसमें मूलनायक प्रतिमा भगवान शान्तिनाथ की खड्गासन १४ फुट अव-गाहना की ओपदार पालिश को हुई सं० १०८५ की प्रतिष्ठित विराजमान है। यह मूर्ति अतिशय पूर्ण, नयनाभिराम, चिताकर्षक एवं मनोज्ञ है। इसके दर्शन मात्र से ही, भाव विभोर एवं विमुग्ध हुए विना नहीं रहता। अन्त:करण में अपूर्व शान्ति का अनुभव कराने वाली और वीतराग भाव का उदय कराने वाली इस भव्य प्रतिमा को वनाने में मूर्तिकार ने जो शिल्प साधना की है वह स्तुत्य है। इस प्रतिमा के दोनों ओर सानत्कुमार और महेन्द्र इन्द्र वने हुए हैं। इसी मन्दिर में अन्य प्रतिमाओं के साथ-साथ प्रांगण में वायीं ओर दीवार में तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के शासन सेवक धरणेन्द्र और पद्मावती की एक वहुत सुन्दर मूर्ति लगी हुई है। इसमें यक्ष दम्पति एक सुन्दर और सुडौल ललितआसन में मोद मग्न वैठे हैं। इनके हाथों में श्रीफल

है, देवी के हाथ में एक छोटा बालक भी है। यह युगल प्रतिबिम्ब अपने अनन्त सौन्दर्य के कारण खजुराहो का सर्व सुन्दर युगल माना जाता है। मूलनायक मूर्ति के अतिशय के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि जब मूर्ति भंजक औरंगजेब अपने दल सहित इसे तोड़ने आया और उसने मूर्ति की कनिष्ठा उँगली पर टांकी चलाई तो उस जगह से दूध की धारा प्रवाहित हो उठी और तत्काल ही मधु मक्खियाँ औरंगजेब तथा उसके दल पर टूट पड़ीं, जिससे शीघ्र ही उसे अपने प्राण बचा कर भागना पड़ा।

पार्श्वनाथ मन्दिर—अपनी विशालता, कलागत विशेषता तथा सौन्दर्य के कारण विख्यात है। पहिल श्रेष्टि ने इसका निर्माण दसवीं शताब्दी में कराया था। मन्दिर के द्वार के दाहिनी ओर एक लेख है। इस लेख में महाराजा धंग के मंत्री पाहिल श्रेष्टी तथा उसकी सात वाटिकाओं के नामों का उल्लेख हैं। निर्माण कर्ता ने इच्छा प्रकट की है कि कोई भी इस पृथ्वी पर शासन करे मुझे अपना दासानुदास समझ कर मेरी इन सात वाटिकाओं का संरक्षण करता रहे। (इस प्रकार निर्माण कर्ता की दूरदर्शिता एवं नम्रता से पूर्ण शिला लेख कहीं भी नहीं देखे गये) यह मन्दिर लगभग ६८ फुट लम्बा तथा ३५ फुट चौड़ा, खजुराहो के अन्य मन्दिरों की तरह विशाल और ऊँचे चबूतरे पर स्थित नगर शैली का पंचायतन मंदिर है। यद्यपि यह पूर्वाभिमुख है तथापि इसके पीछे पश्चिम की ओर भी गर्भगृह का निर्माण करके जिनबिम्ब की स्थापना की गई है। इस मन्दिर में मूलनायक के रूप में भगवान आदिनाथ की मूर्ति विराजमान थी, पर बाद में भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति को स्थापित करके तभी से इसे पार्श्वनाथ मन्दिर कहने लगे।

छोटे बड़े शताधिक शिखरों से सुज्जित इसकी शिखर संयोजना नयनाभिराम है। परिक्रमा में देव देवियों अप्सराओं आदि के बड़े मनोहर अंकन है, तथा बीच-बीच में तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं। गर्भगृह

के द्वार पर गंगा, यमुना, चक्रेश्वरी, सरस्वती तथा नवगृह आदि का अत्यन्त सजीव अंकन हुआ है। प्रवेश द्वार के मुख्य तोरण के बीच में दो अर्हंत प्रतिमाओं का अंकन करके उनके दोनों ओर छह-छह दिगम्बर मुनि उनकी बन्दना करते हुए दिखाये गये हैं। तीर्थंकर प्रतिमाओं को केन्द्र बनाकर कुवेर युगल द्वारपाल, दिग्पाल तथा गजारूढ़, जैन शासन देवी-देवताओं का अंकन है। हाथों में सुरभित पुष्पमाला लिए विद्याधर युगल नाना वादित्र बजाते हुए गन्धर्व, किन्नर तथा किन्नरियों का अंकन और ऊपर उरु श्रृगों की जंघा में दिग्पाल, धनुधर्र एवं चतुर्मुख देव-देवियों का मनोहर अंकन है। कामनी की कमनीय देह बल्लरी की हर सम्भव लोच और लचक को साकार प्रस्तुत कर सकने में यहां के कलाकार को अदभुत सफलता प्राप्त हुई है।

आदिनाथ मंदिर—आकार प्रकार में पार्श्वनाथ मन्दिर से छोटा है और लगभग सौ वर्ष उपरान्त की रचना माना जाता है। परिक्रमा नहीं है और बाहरी भित्तियों की ऊपर की छोटी पंक्ति में गन्धर्व, किन्नर, और विद्याधर तथा शेष दो पंक्तियों में शासन देवता यक्ष मिथुन तथा अप्सराएँ आदि दिखाये गये हैं। अप्सराओं की मूर्तियों में सिन्दूर आँजती हुई, चुम्वन के व्याज से बालक पर ममता उडेलती हुई- नृत्यांगना अप्सरा के शरीर की स्पूर्ति, देवी बालक को स्तन पान कराती हुई साकार की गई हैं।

घंटाई मंदिर--परकोटे के वाहर ग्राम के पास यह मन्दिर ध्वस्तावस्था में पड़ा है। वास्तव में यह भगवान आदिनाथ का जिनालय था। यहां के स्तम्भों पर सुन्दर वेलिशाखा तथा पत्र शाखाओं के साथ स्वर्ण श्रृंखलाओं में लटकती हुई क्षुद्रघंटिकाओं की सजीवता के कारण ही मन्दिर घंटाई मन्दिर कहलाता है। ऊपर की एक पट्टिका में तीर्थंकर माता के सौलह स्वप्नों का अंकन वड़ा सुन्दर है।

वार्षिक मेला—पालकी का मत्हव आश्विन कृष्णा ३ को और

चैत्र मास के शुक्ल पक्ष में मैला भरता है।—अन्य मुख्य मन्दिर, चौंसठ योगिनी मन्दिर' लक्ष्मण मन्दिर, विश्वनाथ मन्दिर, नन्दि मन्दिर, चित्रगुप्त, जगदम्बा, कंधारिया, दुलादेव मन्दिर आदि।

टीकमगढ़

ललितपुर से टीकमगढ़ ५४ कि० मी० है तथा खजुराहो से छतरपुर होकर वस द्वारा जा सकते है। यहाँ लगभग १६ विशाल मन्दिर हैं। टीकमगढ़ से आहारजी २४ कि०मी० पपौरा जी ४ कि० मी० तथा वंधा जी वम्हौरी वराना जाकर वहां से ७ कि० मी० है।

आहार जी सिद्ध क्षेत्र

सिद्ध क्षेत्र आहार जी—प्राकृतिक रूप में अत्यन्त रमणीक एवँ आत्मीक लाभ के लिए अति उपयोगी टीकमगढ़ से २४ कि० मी० की दूरी पर पूर्व दिशा में मदनेश सागर एवँ सुरम्य पहाड़ियों, जलाशयों तथा प्राकृतिक सुषमा से सम्पन्न वन के मध्य स्थित है। टीकमगढ़ से क्षेत्र तक प्रतिदिन दो वसें आती-जाती हैं। टीकमगढ़ से वलदेवगढ़-छतरतुर जाने वाली वसों से क्षेत्र के मोड़ पर उतर कर मदनेश सागर के किनारे-किनारे ४ कि० मी० क्षेत्र है। शिलालेखों के आधार पर जो यहां दूसरी शताब्दी तक के उपलब्ध हुए हैं उनके आधार पर यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो चुका है कि यह चन्देल वंश के राजा मदनवर्म्मदेव के समय में एक समृद्ध एवं वैभवशाली नगर के रूप में स्थित था और प्राचीन कालों में यह मदनेशपुर,

मदनेशसागरपुर, वसुहाटिकापुर, नन्दनपुर ढड़कना आदि नामों से प्रसिद्ध था तथा उस समय यहाँ सैकड़ों जैन मन्दिर थे। इनके पुरातत्व अवशेष पहाड़ियों पर एवं यत्र-तत्र आज भी उपलब्ध हैं।

जो सामग्री यहाँ से खुदाई में प्राप्त हुई है उसमें संवत् १०१३ तक की प्राचीन मूर्तियाँ तथा स्फटकमणि की मूर्तियों के अंग-प्रत्यंग भी हैं। सन् १८८४ तक यह क्षेत्र सघन वन के मध्य में खण्डहर के रूप में स्थित था। जहाँ अनेकों वन पशुओं ने अपना आश्रय बना लिया था। इसी वर्ष में नारायणपुर निवासी सवदल प्रसाद तथा वैद्य भगवान दास जो ढड़कना (अहार जी) के ग्राम-वासियों के सहयोग से घने तथा बीहड़ जंगल से होकर अनेक कठिनाइयों के पश्चात् इस विशाल टीले के निकट पहुँचने में सफल हुए जो गुफा के रूप में था। जब गुफा के अन्दर मसालों के प्रकाश को लेकर उन्होंने प्रवेश किया और भगवान शान्तिनाथ की यह विशाल मूर्ति देखी तो विस्मय से वह ठगे से रह गये।—धीरे-धीरे वहाँ तक पहुँचने का मार्ग बनाया गया एवं सन् १८८४ की कार्तिक कृष्णा २ को एक छोटा सा उत्सव मनाया गया। इस प्रकार यह क्षेत्र प्रकाश में आया।

अतिशय—यहां के विषय में ऐसा प्रसिद्ध है कि प्राचीन समय में १२ वीं शताब्दी में चन्देरी के निवासी पाणाशाह नामक धनवान व्यापारी थे, उनको नित्य जिन्दे-दर्शन करके ही भोजन करने की प्रतिज्ञा थी। एक दिन जब वह राँगा की भरी गाड़ी खरीद कर ला रहे थे, उन्हें यात्रा में उस तालाब के निकट ठहरना पड़ा जहाँ आज अहार जी के मन्दिर हैं। उस स्थान पर कोई मन्दिर न होने से दर्शन न हुए और उन्होंने उपवास करने का निश्चय ही करने वाले थे कि एक मुनिराज का शुभागमन हुआ और उन्होंने साक्षात गुरु के दर्शन कर उन्हें आहार' दिया और तत्पश्चात स्वयँ भोजन ग्रहण किया। संयोग से वह जो राँगा व्यापार के लिए लाये थे, वह चाँदी

हो गया। पाणाशाह जी ने उस सम्पूर्ण द्रव्य से, इस अतिशय पूर्ण स्मृति को सुरक्षित रखने हेतू वहां एक विशाल मन्दिर का निर्माण कराया। तभी से यह क्षेत्र अहार जी के नाम से प्रसिद्ध है। पूर्व में यह क्षेत्र अतिशय क्षेत्र ही था, पश्चात् अनवरत खोज के फलस्वरूप इस क्षेत्र के 'जै कोटे' पर्वत सिद्ध स्थल होने के पर्याप्त प्रमाण प्राप्त हुए, जिससे यह सिद्ध क्षेत्र कहलाया।

क्षेत्र दर्शन—इस विशाल मन्दिर का निर्माण सवत् १२३७ के पूर्व चन्देली पाषाण से श्रेष्ठिवर्य्य जाहड़ व उदयचन्द ने कराया था। और जो भोंयरे की शैली पर आधारित था। मन्दिर में प्रवेषार्थ एक छोटा सा द्वार था एवं चारों ओर वाहर की दीवाल में गंध-कुटियों को वनाया गया था। परन्तु मुसलमानों द्वारा किये गये विनाश के पश्चात धीरे-धीरे एक टीले का रूप में हो गया था। मूल-नायक प्रतिमा २१ फुट अवगाहना को भगवान शान्तिनाथ की है जो एक अंखड शिला में उत्कीर्ण की गई है। जो मूर्तिकला की दृष्टि से एवँ मूर्तिकला विशेषज्ञों की दृष्टि से भारतीय मूर्तिकला तथा स्पापत्यकला का एक उत्कृष्ट एवं उत्तमोत्तम उदाहरण है। मूलनायक प्रतिमा के वायीं ओर भगवान कुन्थुनाथ की ११ फुट अवगाहना की मूर्ति है। इस मूर्ति का शिलालेख बहुत ही मार्मिक है, उससे ज्ञात होता है कि महादेव नामक व्यक्ति ने अपने दो छोटे भाइयों के स्वर्ग-वास हो जाने के विरह से व्याकुल होकर उसने अपनी सारा द्रव्य इस मूर्ति के निर्माण में व्यय कर दी। दायीं ओर भगवान अरहनाथ की १६ फुट अवगाहना की मूर्ति है। मुगल साम्राज्य काल में मूर्ति भंजकों ने इस मूर्ति को पूर्णतः नष्ट कर दिया था जिसके कुछ अंग प्रत्यंग ही प्राप्त हो सके। पुनः नवीन मूर्ति की सन् १६५७ में स्था-पना की गई है।

त्रिकाल चौवीसी एवं संग्रहालय—प्रारम्भ में यह मन्दिर एक टीले के रूप में था। जव चारों ओर से इसकी खुदाई की गई

तो जो रूप सामने आया उससे यह स्पष्ट हो गया था कि इससे चारों ओर दलहाने तथा गंधकुटियों का निर्माण किया गया था। जो प्राय नष्ट हो चुकी थी। खुदाई में उनकी ३२ मूर्तियाँ उपलब्ध हुई थी जिन्हें तत्कालीन औरछा शासन ने जप्त करने का सख्त आदेश दिया था। परन्तु यह प्रतिष्ठित मूर्तियां प्रमाणित हो जाने पर शासन को वह आदेश निरस्त करना पड़ा। अतः उन्हीं गंधकुटियों इत्यादि में पर्याप्त सुधार करा कर अब त्रिकाल चौबीसी एवं विद्यमान बीस तीर्थकारों की रचना करा दी गई है।—मुगल शासन काल में मूर्ति-भन्जकों ने इस मूर्ति के अंग प्रत्यंगों को क्षति पहुँचा दी थी। जिस का सुधार करके एवं मरकतमणि (पन्ना) का पालिस करवाया गया, जिसमें ७२ तोले के लगभग मणि खर्च हुई। अहार क्षेत्र में खुदाई के समय प्राप्त अनेकों खण्डित मूर्तियाँ तथा अन्य सामग्री जो पुरातत्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, उनकी रक्षार्थ सन् १९३५ में संग्रहालय की स्थापना की गई। वर्तमान में यहां सहस्त्रों उत्कृष्ट कलाकृतियों का अमूल्य संग्रह है।

श्री वर्द्धमान मंदिर—संग्रहालय के ऊपर दूसरे खण्ड में है सन् १९५८ में इसका निर्माण हुआ था, जिसमें भगवान महावीर के साथ साथ अनेक अन्य प्रतिमाए हैं।—मेरु मन्दिर का निर्माण १९३७ का है, और संग्रहालय के वाम पार्श्व में स्थित है। मनोज्ञ काले पापाण की मूर्ति जो पास ही एक खदान से प्राप्त हुई थी विराजमान है।—सोजना मन्दिर सन् १९५४ का निर्मित है।—पार्श्वनाथ मन्दिर १४ वीं शताब्दी का है और भगवान पार्श्वनाथ की दो फुट अवगाहना वाली मूर्ति विराजमान है। लेख नहीं है किन्तु १०-१२ वीं शताब्दी की लगती है।—सभा मण्डप, इसका निर्माण १२ वीं शताब्दी में शान्तिनाथ मन्दिर के साथ हवण-यज्ञशाला के रूप में हुआ था यहां भी १४-१५ वीं शताब्दी की मूर्तियाँ हैं।—बाहुबिल मन्दिर में १९५८ की स्थापित नौ फुटी बाहुबिल स्वामी की प्रतिमा विराज-

मान है।—युगल मानस्तम्भ, यह एक ही अखंड शिला से निर्मित १० वीं शताब्दी के हैं।—निर्वाण स्थल, क्षेत्र से लगभग ४ फर्लांग की दूरी पर कोटे पर्वत पर स्थित है. यहां से मदनेशकुमार और विस्कंवल केवलियों ने निर्वाण प्राप्त किया था। प्राचीन मन्दिरों के भग्नावशेषों पर छोटी मढ़ियां बना दी गई हैं।

क्षेत्र की संस्थाएं—शान्तिनाथ सरस्वती भवन, संस्कृत विद्यालय—व्रती आश्रम—महिलाश्रम आदि। ठहरने का समुचित प्रवन्ध है—मेला प्रतिवर्ष अगहन शुक्ल १३ से १५ तक होता है।

पपौरा जी

टीकमगढ़ से लगभग चार कि० मी० दूरी पर पूर्व में पपौरा अतिशय क्षेत्र विद्यमान है। टीकमगढ़ से उत्तर-दक्षिण दोनों ओर ललितपुर और मऊरानीपुर रेलवे स्टेशन यात्रियों के लिए सुविधाजनक पड़ते हैं। प्राचीन साहित्य में पपौरा को पंपापुर भी कहा गया है, इसके पास ही विशाल वन है जो 'रमन्ना' के नाम से प्रसिद्ध है। टीकमगढ़ से पपौरा जाते समय सर्वप्रथम अपनी लोल लहरों से लहराता हुआ सरोवर आपका चरण पखारेगा, आगे नयनाभिराम वन 'रमन्ना' (रामारण्य) कहते हैं मिलेगा। इसके आगे एक छोटे से तालाव के निकट क्षेत्र है। अनेक सघन वृक्षावलि के साथ एक विस्तृत परकोटे के घेरे में विविध शैलियों के प्राचीन अर्वाचीन गगन-चुम्वी ८१ जैन मन्दिर, मेरु, मठ, मानस्तम्भ, भोंयरे मुकलित कमल अष्ट पंखुरियों से युक्त, रथाकार वरण्डा, चौवीसी आदि से सुशोभित यह क्षेत्र अपनी कलाकृति से निराला ही है। भिन्न-भिन्न कालीन स्थापत्यकला और मूर्तिकला वि० १२वीं से २०वीं शताब्दी तक की हैं। पपौरा एक ओर सौन्दर्य से परिपूर्ण है तो दूसरी ओर इतिहासिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है, वैसे वहाँ का इतिहास कहीं

लिखा नहीं मिलता केवल जो शिलालेख उत्कीर्ण हैं उनमें इतिहास की यथेष्ट सामग्री सँचित है।

अतिशय के बारे में किंवदन्तियाँ—बावड़ी का दान, वहाँ एक पुरानी बावड़ी है, पहले वह ऊपर तक भरी रहती थी। जब किसी यात्री को भोजन बनाने के लिए बर्तनों की आवश्यकता होती तो वह आवश्यक बर्तनों की लेख लिखित सूची इसमें डाल देते थे और बर्तन पानी के ऊपर आ जाते थे। यात्री अपना काम निकाल कर फिर इन्हें बावड़ी में ही डाल आते थे। एक दिन एक लालची यात्री इन बर्तनों को लेकर चलता बना तभी से इस बावड़ी ने अपना दान देना बन्द कर दिया।—पतंराखन-क्रम संख्या के अनुसार पहले मन्दिर की सं० १८७२ में जब नींव भरी जा रही थी और एक वृद्धा माँ की ओर से मन्दिर का निर्माण हो रहा था। उस अवसर पर उपस्थित जनसमूह को प्रीतिभोज देना भर बाकी रहा था किन्तु कुएँ का पानी समाप्त हो गया। जनसमूह पानी न मिलने से दुखी होकर छटपटाने लगे, कोई वृद्धा के पैसे को बुरा-भला कहने लगा, तो कोई प्रबन्धकों की व्यवस्था पर टिका-टिप्पणी करने लगा। वृद्धा उदासीन होकर, रस्सों से बँधी चौका पर बैठकर भगवान का स्मरण करती हुई कुएं में उतरी और नीचे पहुंचकर भगवान से प्रार्थना करने लगी। पानी का स्रोत नीचे से फूट पड़ा जैसे जैसे वह वृद्धा ऊपर आती गयी पानी चौकी से छूता हुआ बढ़ता गया और कुएँ से बाहर निकल पड़ा। कहते हैं तभी से इस कुएं का नाम 'पतंराखन लाज रखने वाला, नाम रख दिया।—अभी २० वर्ष की बात है ३५ नं० मन्दिर के पास एक गर्भिणी शेरनी १ माह तक रही, न किसी को सताया न कोई नुकसान पहुँचाया, यह आंखों देखी घटना है।—एक अन्य सामने देखा घटना इस प्रकार है, पुराने भोंयरे में एक सर्प रहता था, कई दिनों तक वह भोंयरे के दरवाजे पर आकर बैठ जाता था। जब कोई पूजन-वन्दना करने आता तो सर्प हट जाता और यात्री के चले जाने पर फिर वहीं

आकर बैठ जाता। किसी को कोई नुकसान नहीं पहुँचाया।—श्री भोंयरे और चन्द्रप्रभु मन्दिर के दर्शन से मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं। ऐसी भी मान्यता है।

प्राचीन समुच्चय—पपौरा का यह सबसे प्राचीन स्थान है और समुच्चय सभामण्डप के नाम से प्रख्यात है। इसके बीच में एक मन्दिर है और उसके चारों ओर बारह पुराने ढंग के मठ हैं जो समवसरण की बारह सभाओं के द्योतक हैं। अनुमानतः यह स्थान तपो भूमि भी रहा होगा।

भोंयरा—यह बहुत विशाल है यहाँ एक मनोज्ञ और भव्य प्रतिमा है, पर लेख नहीं है लेकिन कला की दृष्टी में चतुर्थ कालीन प्रतीत होती है, और काले पाषाण की है। चमक आज भी इतनी सुन्दर है कि देखते ही बनती है। इसके अतिरिक्त दो प्रतिमाएं और हैं।

चौबीसी—एक बड़े मन्दिर के चारों ओर प्रत्येक दिशा में छह-छह मन्दिर हैं। इस तरह एक स्थान पर चौबीस मन्दिरों की एक पंक्तिशः रचना बड़ी सुन्दर प्रतीत होती है। सब मन्दिरों की एक साथ और प्रत्येक की पृथक्-पृथक् परिक्रमा की व्यवस्था है, इस प्रकार की चौबीसी भारत में अन्यत्र नहीं मिलती।

चन्द्रप्रभु मन्दिर—इस मन्दिर की रचना और शिलपकला चन्द्रगुप्त कालीन प्रतीत होती है। पत्थर पर खुदाई स्पष्ट एवं सुन्दर है।

रथाकार मन्दिर नं ७५—यह मन्दिर रथाकार बना हुआ है। दूर से देखने में प्रतीत होता है जैसे रथ में घोड़े जुते बड़ी तेजी से जा रहे हों। सचमुच यह भक्ति से ओत-प्रोत भव्य मानवों को मुक्ति रमा से मिलने के लिए रथ ही बनाया गया है।

बाहुबलि मन्दिर प्रान्तीय जैन समाज की ओर से निर्माण कराया गया है, २२५ फुट के गोल घेरे में तीन परिक्रमाओं से सुशोभित, इसमें १८ फुट अवगाहना की बाहुबलि स्वामी की प्रतिमा विराजमान है। इसके साथ ही चौबीस मढ़ियों में २४प्रतिमाएँ विराजमान की है।

पपौरा के अन्तर्गत संस्थाएँ, विद्यालय, उदासीन आश्रम, पं० मोतीलाल वर्णी सरस्वती सदन आदि। वार्षिक मेला कार्तिक सुदी १३ से १५ तक होता है। ठहरने का बड़ा सुन्दर प्रबन्ध है।

बंधा जी

अतिशय क्षेत्र बंधा जी, वह ऐतिहासिक पवित्र भूमि जहां हजारों वर्ष पूर्व जैन संस्कृति प्रचुर मात्रा में समुन्नत थी, टीकमगढ़ जिला के अन्तरगत बम्हौरी बराना से ७ कि० मी० दूर दक्षिण दिशा की ओर स्थित है। वर्तमान में यहां दो शिखर बन्द मन्दिर एक प्राचीन भोंयरा तथा संग्रहालय है। ऐतिहासिक दृष्टि एवं शिला-लेखों की सामग्री से इस क्षेत्र की प्राचीनता १५०० वर्ष पूर्व की है। अशोक कालीन कला वेष्टित मूर्तियां एवं अजित प्रभु की सं० ११६६ की सुन्दर मनोज्ञ मूर्ति इसके दोनों ओर खड्गासन श्री ऋषभदेव एवँ श्री सम्भवनाथ की प्रतिमाएँ सं० १२०६ की इस क्षेत्र की प्राचीनता के द्योतक हैं। मन्दिर के निकट ही १ मठ है जिसमें अशोक कालीन तीन प्रतिमाएँ हैं।

भगवान अजितनाथ की कीनिष्ठा का कुछ भाग भग्न अवस्था में होने से प्रतीत होता है कि मूर्तिभंजक इस स्थान पर भी आये और अन्य स्थानों की तरह उन्होंने यहाँ भी मूर्तियों को नष्ट करना चाहा और ज्यों ही वह अजितनाथ भगवान की मूर्ति को नष्ट करने लगे त्यों ही वह अतिशय स्वरूप ज्यों के त्यों बन्धे रह गये। बाद में भगवान की स्तुति-वन्दना से बन्धनहीन हुए तभी से यह स्थान 'बंधा' नाम से प्रसिद्ध हुआ।—इतिहासकारों के अनुसार बुन्देलखण्ड में देवपत और खेमपत के बनवाये सात भोयरें क्रमशः पावा, देवगढ़, सीरोन, करगुँवा पपौरा और थूबोन जी में हैं। बंधा जी का भोंयरा भी उतना ही प्राचीन और रचना-शैली का है जैसे की अन्य सातों

भोंयरे हैं।

वंधा जी से कुछ ही दूरी पर एक धर्मटीला नामक टीला है जो मन्दिरों के खण्डहरों के विध्वस्त हो जाने के कारण टीले के रूप में परिवर्तित हो गया, यहां खुदाई में कुछ पाषाण की जैन मूर्तियाँ प्राप्त हुई थीं जो संग्रहालय भवन में सुरक्षित हैं। इसी प्रकार यंत्र-तंत्र प्राचीन सामग्री एवँ मूर्तियां भूमि में दवी पड़ी हैं। अव भी कभी-कभी मूर्तियां मिलती रहती है।

ललितपुर (क्षेत्रपाल)

मध्य रेलवे के झांसी-वीना जंकशन के वीच ललितपुर स्टेशन है। जो उत्तर-प्रदेश के जिला झांसी मण्डल के अन्तर्गत बुन्देलखण्ड का प्रमुख नगर है। इतिहास के आधार पर यह स्थान चन्देल कलचूरी वंश के शासकों के आधीन था। यह नगर बुन्देलखण्ड के दि० जैन तीर्थ क्षेत्रों का जंकशन है। यहां से :—

अतिशय क्षेत्र देवगढ़ जी—३३ कि० मी०
,, ,, सैरोन जी—३० कि० मी०
,, ,, चन्देरी जी—३२ कि० मी०
,, ,, थूवौन जी…४६ कि० मी०
,, ,, पपौरा जी—६६ कि० मी०
,, ,, अहार जी—६० कि० मी०

ललितपुर नगर में विशाल व प्राचीन चार शिखरवत जिनालय हैं (१) श्री जैन वड़ा मन्दिर (२) श्री दि० जैन नया मन्दिर (३) श्री पार्श्वनाथ अटा मन्दिर (४) श्री दि० जैन क्षेत्रपाल जी तथा तीन चैत्यालय हैं।

श्री क्षेत्रपाल जी—रेलवे स्टेशव से १ कि० मी० की दरी पर एक विशाल कोट के अन्दर अद्भुत जिनबिम्ब एवं चैत्यालयों से

सुशोभित हैं। इसके प्रमुख हाथी द्वार से प्रवेश करते ही मानस्तम्भ है। निकट में जमीन के समतल से लगभग ३१ फुट की ऊँचाई पर एक टीले पर परकोटे में वेष्टित मन्दिर है जहां ६ प्राचीन वेदियाँ हैं। मन्दिर नं० ३ में भगवान अभिनन्दन नाथ की श्याम वर्ण पाषाण प्रतिमा सं० १२४३ की प्रतिष्ठित है। इसी के नीचे क्षेत्रपाल जी के नाम से शिलाखंड है। जिसके निकट एक कुण्ड है। ऐसी जन-श्रुति है कि यह कुण्ड सतत भी डाले जाने पर भी कभी भरा नहीं जा सका मन्दिर नं० ४ में वि० सं० १२२३ की सफेद पाषाण की सुन्दर मूर्ति है जिसमें आवाज आती है। मन्दिर नं० ७ में लगभग ७ फुट उत्तुंग वि० सं० १७०६ में निर्मित भगवान पार्श्वनाथ की खड्गासन मूर्ति चट्टान में उत्कीर्ण है जिसके चरण से लेकर मस्तक के ऊपर तक ७ फणों से युक्त सर्प चिह्न बना हुआ है। इसीके निकट प्राचीन भोंयरा है जिसमें चट्टान में उत्कीर्ण १२ तीर्थकरों तथा ३५ देव देवियों की मूर्तियां हैं। मन्दिर प्राँगण में एक विशालकाय हाथी विद्यमान है जिनके सम्बन्ध में जनश्रुति है कि मध्य रात्रि के समय श्री क्षेत्रपाल जी की सवारी नगर परिक्रमा हेतू निकलती थी।

देव गढ़ (अतिशय क्षेत्र)

देवगढ़ झांसी जिले में सेन्ट्रल रेलवे के ललितपुर स्टेशन से ३३ कि० मी० तथा जाखलोन से १३ कि० मी० दूर वेत्रवती (वेतवा) के किनारे स्थित है। पहाड़ी पर जाने के लिए बस व कार योग्य पक्का रोड मन्दिर के द्वार तक है। दुर्ग की १५ फुट मोटी प्राचीर चंदेल-वंशी राजाओं ने बनवाई थी। देवगढ़ सुरक्षा गढ़ अवश्य रहा है, किन्तु यह कभी किसी की राजधानी नहीं रहा। राजवंशों ने इस दुर्ग पर आधिपत्य के जो भी प्रयत्न किये, वे केवल इस गौरव के

लिए कि वह उन असंख्य देव—प्रतिमाओं का स्वत्वाधिकारी है जो कला सौष्ठव और विपुल परिमाण की दृष्टि से देश-भर में अनुपम हैं। लगता है कि बुन्देलखण्ड में उस समय जैनों का पर्याप्त प्रभुत्व एवं प्रभाव रहा। कला को दृष्टि से इसे प्रदेश का स्वर्ण काल कहें तो अनुचित नहीं होगा। पुरातत्व विभाग के अनुसार हजारों वर्ष पहले यहाँ शवर जाति का आधिपत्य था, पश्चात् पाण्डवों, गोंड, गुप्तवंश, देववंश, चन्देलवंश, मुगल तत्पश्चात् अंग्रेजों का यहाँ आधिपत्य रहा।

देवगढ़ नाम के सम्बन्ध में एक किंवदन्ती बहु प्रचलित है। देव-पत और खेमपत दो भाई थे। उनके पास एक पारसमणि थी, जिसके प्रभाव से वह असंख्य धन के स्वामी वन गये थे। उस धन से उन्होंने देवगढ़ का किला और मन्दिर बनवाये। तत्कालीन राजा को जब इस मणि का पता चला तो उसने देवगढ़ पर चढ़ाई करके उस पर अपना अधिकार कर लिया। किन्तु उसे पारसमणि नहीं प्राप्त हो सकी, उसे तो उन भाईयों ने बेतवा के गहरे जल में फेंक दिया था। सम्भवत: उसी देवपत के नाम पर इसका नाम देवगढ़ पड़ गया था इसकी रचना देवों ने की थी या यहाँ विपुल परिमाण में देव मूर्तियाँ प्राप्त थी। भारतीय संस्कृति के समुज्जवल अतीत के मूर्तिमान स्मारक देवगढ़ में कलानिधियाँ यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हैं, इनके संरक्षण की यथोचित व्यवस्था न होने से नराधूम मूर्ति-भंजकों एवं तस्करों ने विदेशी कला प्रेमियों से कलापूर्ण मूर्तियों का लाभप्रद व्यापार करने के लिये अनेकों मूर्तियों को चुराया, काट, अँग भँग किये और शिरोच्छेदन किये।

देवगढ़ में तीर्थंकर मूर्तियाँ अत्यधिक मात्रा में हैं, तथा कुछ वहुत प्राचीन हैं। इन्द्र, इन्द्राणी, यक्ष, यक्षी, विद्यादेवीयाँ, लक्ष्मी, सरस्वती, नवग्रह, गंगा, यमुना, नाग-नागी, कीर्तिमुख कीचक और क्षेत्रपाल आदि की अनेक मूर्तियां विद्यमान हैं। यहां आचार्य, उपाध्याय साधु

प्रमेष्ठियों और अर्जिकाओं की भी मूर्तियां हैं। तीर्थंकर माता के १६ स्वप्न भी अनेक जगह दरसाये गये हैं। यहां ५०० के लगभग शिला लेख हैं, उनसे ज्ञात होता है कि यहां अनेक मूर्तियों का निर्माण भिन्न-भिन्न समय में साधुओं या अर्जिकाओं की प्रेरणा या उपदेश द्वारा हुआ। देवगढ़ में छोटे बड़े ४० जैन मन्दिर तथा २६ कला पूर्ण मानस्तम्भ हैं।

देवगढ़ के जैन मन्दिरों का निर्माण उत्तर भारत में विकसित आर्य नागर शैली में हुआ है। यह दक्षिण की द्रविड़ शैली से अत्यन्त भिन्न है। समस्त मध्य प्रान्त की कला इसी नागर शैली से ओतप्रोत हैं। इस कला को गुप्त, गुर्जर, प्रतिहार और चन्देल वंशी राजाओं के राज्यकाल में पल्लवित और विकसित होने का प्रश्रय मिला है। देवगढ़ की मूर्तियों में दो प्रकार की कला देखी जाती है। प्रथम आकार की कला में कलाकृतियाँ अपने परिकरों से अंकित हैं, जैसे चमरधारी यक्ष-यक्षिणियाँ, सम्पूर्ण प्रस्तराकार कृति में नीचे तीर्थंकर का विस्तृत आसन और दोनों पार्श्वों में यक्षादि अभिषेक—कलश लिए हुए दिखलाए हैं। किन्तु दूसरे प्रकार की कला मुख्य मूर्ति पर ही अंकित है। देवगढ़ जैन मन्दिर की स्थापत्य-कला मध्य भारत की अपूर्व देन है। इनमें नं० ४ के मन्दिर में तीर्थंकर की माता सोती हुई स्वप्नावस्था में विचार-मग्न मुद्रा में दिखलाई है। नं० ५ का मन्दिर सहस्त्रकूट चैत्यालय है जिसकी कला पूर्ण मूर्तियाँ अपूर्व दृश्य दिखलाती है। इस मन्दिर के चारों ओर १००८ प्रतिमाएं खुदी हुई हैं। वाहर सं० ११२० का लेख उत्कीर्ण है। नं० ११ के मन्दिर में दो शिलाओं पर चौवीस तीर्थंकरों की १२-१२ प्रतिमाएँ अंकित हैं। इन सब मन्दिरों में सबसे विशाल मन्दिर नं० १२ है, जो शान्तिनाथ मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। जिसके चारों ओर अनेक कला-कृतियाँ और चित्र अंकित हैं। इसमें भगवान शान्तिनाथ की १२ फुट उत्तुंग जिन प्रतिमा विराजमान है। जो दर्शक को अपनी

ओर आकृष्ट करती है। और चारों कोनों पर अम्बिका देवी की चार मूर्तियां हैं बाहरी दीवार पर २४ यक्ष-यक्षणियों की सुन्दर कला कृतियाँ बनी हुई हैं, जिनकी आकृतियों में भव्यता टपकती है। साथ ही १८ लिपियों वाला लेख भी बरामदे में उत्कीर्णित है।

पहाड़ी के नीचे दि० जैन धर्मशाला, साहू म्यूजियम और छोटा सा मन्दिर है। इसके पास ही गुप्तकाल का एक मन्दिर है, जिसे दशावतार मन्दिर कहते हैं। तथा वन विभाग का विश्रामगृह है। पहाड़ी पर प्राचीन दुर्ग की दीवार है, जिसके पश्चिम में कुंज द्वार और पूर्व में हाथी दरवाजा है। इस दीवार के पश्चात फिर एक दूसरी दीवार आती है इसे दूसरा गेट कहते हैं, इसके भीतर ही जैन मन्दिर हैं।

बानपुर

यह क्षेत्र ललितपुर से महरौनी होते हुए ५३ कि० मी० है। यहां गाँव के बाहर क्षेत्रपाल का मंदिर है। मंदिर के चारों ओर कोट है और अन्दर ५ मन्दिर तथा १ सहस्त्रकूट चैत्यालय है। मंदिर नं० १ में छह फुट ऊँची एक मनोज्ञ एवं प्राचीन प्रतिमा तथा एक अन्य आधुनिक प्रतिमा है। मंदिर नं० २ में १ प्रतिमा ९ फुट ० इंच की है इसके अतिरिक्त ४ मूर्तियाँ और हैं। मन्दिर नं० ३ में एक पद्मासन प्रतिमा वि० सं० १५४१ की है। मन्दिर नं० ४ मे भगवान शांतिनाथ की अत्यन्त मनोज्ञ प्रतिमा है, जिसकी अवगाहना १५ फुट है। यही इस क्षेत्र की मूलनायक प्रतिमा कहलाती है। इस प्रतिमा के दायें-बायें ७ फुट ऊँची मूर्तियाँ भगवान कुन्थुनाथ और अरहनाथ की है। लेखों के अनुसार इनकी प्रतिष्ठा काल सं० १००१ का है। पांचवां मन्दिर हौज के दूसरी ओर है, जिसमें एक सहस्त्रकूट चैत्यालय सं. १००१ का बना हुआ है। क्षेत्र के आहाते में कई मंदिरों और

मूर्तियों के भग्नावशेष पड़े हुए हैं। यहां से लगभग १६ कि० मी० दूर 'सोजना' नामक गांव में कई जैन मूर्तियां पड़ी हुई हैं। गाँव का मंदिर विशाल है तथा १५—१६ वीं शताब्दी की प्रतिमाएं विद्यमान हैं।

चांदपुर-जहाजपुर

यह क्षेत्र ललितपुर-बीना लाईन पर धौर्रा स्टेशन से पौना कि. मी. दूरी पर बियावान जंगल में जीर्ण-शीर्ण अवस्था में पड़ा हुआ है। देवगढ़ से लगभग ३१ कि. मी. हैं। चांदपुर और जहाजपुर के बीच से रेलवे लाईन गुजरती है। चांदपुर पूर्व और जहाजपुर पश्चिम की ओर है। चाँदपुर की ओर जाते हुए कुछ मूर्तियाँ रास्ते में भी पड़ी हैं। यहाँ एक कोट में ३ मन्दिर विद्यमान हैं। पहला मन्दिर छतरी के आकार का बना है। चारों तरफ मूर्तियां बिखरी पड़ी हैं। इनमें से एक तो १२ फुट की है। बीच के मन्दिर में १७ फुट की भगवान शान्तिनाथ की मूर्ति है तथा आठ मूर्तियां इधर उधर रखी हैं। मन्दिर के बाहर भी अनेको मूर्तियाँ बिखरी पड़ी हैं। यहां अगर खुदाई कराई जाये तो बहुत मात्रा में पुरातत्व सामग्री मिलेगी रेलवे लाईन पार करके पचासों मन्दिर एक के साथ एक लगे टूटे पड़े हैं। ये मन्दिर अधिकतर अजैनों के हैं। केवल एक मन्दिर में कुछ अंश जैन के हैं। यहाँ से कुछ दूरी पर और भी जैन मंदिर और मूर्तियों का होना सम्भव है।

दुधई क्षेत्र

यह देवगढ़ से ३० कि० मी० और ललितपुर से जाखलौन होकर लगभग ५० कि० मी० है। इस गांव का पुराना नाम 'महोली' है।

यहां तीन मन्दिरों के खण्डहर पड़े हुए हैं, और पुरातत्व विभाग के अन्तर्गत हैं। दो विशाल मूर्तियां एक १४½ फट और दूसरी ११ फुट की है। लगभग ६६ टूटी मूर्तियाँ हैं और विपुल परिमाण में भग्नावशेष पड़े हैं। यहां पर अनेक मूर्तियां तो कुछ समय पहले खण्डित की गई प्रतीत होती हैं। कुछ दूर पर और भी मन्दिरों के भग्नावशेष मिलते हैं। सभी मूर्तियां और भग्नावशेष बिलकुल खुले मैदान में पड़े हुए हैं और पुरातत्व विभाग की कोई विशेष देख-भाल प्रतीत नहीं होती। पुरातत्व विभाग ने इस स्थान को 'नेमिनाथ की बरात, कहा है।

बालाबेहट क्षेत्र

ललितपुर से मालथौन होकर यह क्षेत्र ५३ कि. मी. है जिसमें ४० कि० मी० पक्का रोड है तथा १३ कि० मी० कच्चा मार्ग है। अतिशय क्षेत्र है' मुख्य प्रतिमा काले पाषाण की सवा फुट अवगाहना को भगवान पार्श्वनाथ की है। प्रतिमा के लेख से प्रतीत होता है कि यह वि० सं० १४४६ में प्रतिष्ठित हुई थी। यह साँवलिया पार्श्वनाथ के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अतिशयों की काफी किवदन्तियां प्रचलित हैं। तथा धर्मशाला भी है।

मदनपुर--मड़ावरा

ललितपुर से बरौदिया होकर ७५ कि० मी० व महरौनी होकर ८३ कि० मी० है, दोनों रोड पक्के हैं। बसें बराबर चलती हैं। क्षेत्र पहाड़ी पर स्थित है। पूर्वकाल में यहाँ श्री--सम्पन्न पुरपट्टन या पाटनपुर नाम का एक नगर था। राजा मदनसेन इस नगर के शासक थे। आमोली—दामोती नामकी उनकी दो रानियां थीं। एक किंवदन्ती

प्रचलित है कि दोनों रानियाँ प्रतिदिन नयी साड़ी पहनती थी। दूसरे दिन उन साड़ियों को दान कर देती थी विशेषता यह थी कि वे साड़ियां इसी नगर में ३६५ जुलाहे बनाते थे। एक जुलाहा वर्ष में २ साड़ियां बना कर देता था। सत्रहवीं शताब्दी में इन्हीं मदनसेन के नाम पर मदनपुर नामक नगर की स्थापना हुई। बुन्देलखण्ड के इतिहास में राजा मदनसेन और उनकी रानियों की बड़ी ख्याति रही है। प्राचीन नगर के अवशेष यहां मिलते हैं। स्व० पूज्य गणेश प्रसाद जी वर्णी का जन्म इसी गांव में हुआ था।

मड़ावरा ग्राम में ११ विशाल तथा ६ छोटे मन्दिर हैं। गाँव में एक प्राचीन मन्दिर है। जो जीर्ण-शीर्ण दशा में है। गर्भगृह के ऊपर लगभग ४० फुट ऊँचा शिखर बना हुआ है। मन्दिर में ६ श्वेत पाषाण और ६ धातु की प्रतिमाएँ १५ वीं से १८ वीं शताब्दी तक की हैं। गांव से उत्तर की ओर लगभग ५००गज चलने पर पर्वत पर पंच-मढ़ी है। यहां चार मन्दिर तो चार कोनों पर और एक सबसे मध्य में बना हुआ है। प्रत्येक मढ़ में एक-एक खड्गासन प्रतिमा दीवार में जोड़कर खड़ी की गयी है, जिनकी अवगाहना ५ फुट की है। दो मूर्तियों पर वि० सं० १३१२ का व दो अन्य पर सं० १६१८ का लेख है। पंचमढी के सामने पश्चिमाभिमुख २८ फुट ऊँचा विशाल मंदिर है। इसके गर्भगृह में तीन खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। मध्य में १० फुट ऊँची भगवान शान्तिनाथ की वि० सं० १२०४ की प्रतिमा है, जो खण्डित है। इसके दोनों ओर सात फुट अवगाहना वाली भगवान कुन्थुनाथ और अरहनाथ की प्रतिमाएँ हैं। एक ढाई फुट ऊंची सर्वतोभद्रिका प्रतिमा रखी हुई है। मन्दिर के बाहर एक शिला-फलक पर एक फुट ऊँची पन्द्रह तीर्थंकर मूर्तियाँ बनी हुई हैं। एक भग्न मानस्तम्भ भी है।

इस मन्दिर से लगभग ३०० गज आगे मढ़ है। अब तो यह टीला बन गया है। टीले पर नौ फुट ऊँची एक मर्ति खण्डहरों के

बीच में खड़ी हुई है। किन्तु घुटनों तक यह मिट्टी में दबी पड़ी है। इन भग्नावशेषों में खोज की जायें तो अनेक मूर्तियां निकलने की सम्भावना है। इस स्थान से लगभग आधा कि० मी० उत्तर की ओर चम्पोमढ़ है। इस समय यहाँ एक ही मन्दिर है, इसके गर्भगृह में अष्ट प्रतिहार्ययुक्त तीन मूर्तियां विराजमान हैं। मध्यवाली मूर्ति का आकार लगभग ९ फुट ३ इंच है। लेख के अनुसार इसकी प्रतिष्ठा फाल्गुन शुक्ला १० वीं, वि० सं० १२०४ को हुई थी। इसके दोनों ओर ७-७ फ़ुट ऊँची भगवान महावीर की प्रतिमाएँ हैं। इनके हाथ खण्डित हैं। इस मढ़ के तीन कोनों पर यद्यपि वर्तमान में कोई मन्दिर नहीं है केवल भग्नावशेषों के टीले बने हुए हैं, किन्तु दक्षिण की ओर एक अर्धभग्न मढ़ को दीवारें खड़ी हैं। इस मढ़ में भगवान शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरहनाथ की प्रतिमाएँ विराजमान है। मध्य की १० फुट तथा शेष दोनों ७ फुट की है।

मोदीमढ़—पाटनपुर नगर की ओर चम्पोमढ़ से दो फर्लांग की दूरी पर स्थित है। यह एक मढ़ है जो पूर्वाभिमुख है। इसमें तीन प्रतिमाएँ विराजमान है। मध्य में भगवान शान्तिनाथ की - फुट ऊँची और दायें बायें भगवान शान्तिनाथ व महावीर की ६ फुट की प्रतिमाएँ विराजमान हैं। चारों कोनों पर मढ़ों के अवशेषों के टीले बने हुए हैं। इन टीलों में ही एक वृक्ष के सहारे भगवान ऋषभदेव की ७ फुट की प्रतिमा मौजूद है। मोदीमढ़ के नीचे पूर्व की ओर एक प्राचीन बावड़ी बनी हुई है जिसे बाजना बावड़ी कहा जाती है। बावड़ी में पत्थर डालने से ऐसी आवाज होती है जैसे बर्तन पर पत्थर डालने से होती हैं। जौहर कुण्ड—पुरपट्टन नगर के ध्वंसावशेषों के बीच बना हुआ है, जहाँ आततायियों से अपने शीलधर्म की रक्षा के लिए अगणित वीरांगनाओं ने अग्नि में हंसते हुए कूदकर जौहर व्रत किया था। ठहरने हेतू धर्मशाला हैं। वार्षिक मेला फागुन कृष्णा चतुर्दशी से पंचमी तक होता है।

सीरौन

मड़ावरा नगर से ६ कि० मी० पूर्व में स्थित हैं। पुरातत्व एवं कलाकी दृष्टि से यहाँ गाँव में तथा निकटवर्ती जंगल से विपुल मात्रा में तीर्थंकर प्रतिमाएँ, देवी-देवताओं की मूर्तियां, तोरण, पाषाण स्तम्भ आदि मिलते हैं। जो प्रायः ११ वीं से लेकर १३ वीं शताब्दी तक की हैं। एक जैन मन्दिर ५० फुट ऊँचा है जो भग्न अवस्था में है।

गिरार क्षेत्र

मड़ावरा से १६ कि० मी० उत्तर-पूर्व को ओर अतिशय क्षेत्र है। अनेक लोग यहाँ अब भी मनौती माँगते हैं। ऐसा अनुमान है कि कभी यहां जैनों की वड़ी आबादी थी। यहां भगवान आदिनाथ का एक विशाल मन्दिर है। वार्षिक मेला माघ कृष्णा १४ को होता है।

सैरोन जी

यह अतिशय क्षेत्र ललितपुर से झांसी की ओर ३१ कि० मी० है। सड़क पक्की है और क्षेत्र गांव से कुछ दूर स्थित है। पीछें लगभग १ फर्लांग दूर पर खैडर नदी वहती है। ठहरने के लिए धर्म-शाला हैं। क्षेत्र के चारों ओर २०० फुट लम्बा पक्का परकोटा वना हुआ है। द्वार में प्रवेश करते ही मानस्तम्भ के दर्शन होते है। प्रांगण में पहले मन्दिर में प्रवेश करके एक वड़ा गर्भगृह मिलता है जिसमें एक वेदी है। मूर्तियाँ प्राचीन हैं। वेदी के चारों ओर अनेक प्राचीन खण्डित-अखण्डित मूर्तियां रखी हैं।

प्राँगण में से दूसरे मन्दिर में १८ फुट ऊँची भगवान शान्तिनाथ की मूलनायक प्रतिमा है। द्वार के तोरण पर द्वादश राशियां अंकित हैं। चौखट पर खड्गासन और पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ बनी हुई हैं। दरवाजे के दोनों ओर दो शिलाओं पर सहस्त्र चैत्यालय का दृश्य अंकित है। मूलनायक प्रतिमा के हाथ को सुधार दिया गया है। मूलनायक के अतिरिक्त २३ तीर्थंकरों ी खड्गासन व पद्मासन प्रतिमाएँ भी हैं। इसी प्रकार तीसरे व चौथे मन्दिरों में भी प्राचीन मूर्तियाँ विराजमान हैं। धर्मशाला के उस भाग में जहाँ बाबड़ी है तथा प्रांगण में दीवार के सहारे प्राचीन मूर्तियाँ रखी हैं, जिनकी समानता केवल देवगढ़ तथा खजुराहो कर सकता है। जहाँ मान-स्तम्भ बना है वहाँ खुदाई के समय पाषाण में अभिलिखित एक मंत्र और मंगलकलश उपलब्ध हुए थे, जो सुरक्षित रखे हुए हैं। परकोटे के बाहर नवीन धर्मशाला में कमरों की भीतरी दीवालों में अनेक मूर्तियाँ उनकी सुरक्षा की दृष्टि से चिन दी गई हैं।

गांव में और आस पास ३-४ कि० मी० के घेरे में प्राचीन मंदिरों के अवशेष बिखरे पड़े हैं। प्राचीन मन्दिरों के धराशाही होने से टीले से बन गये हैं, ऐसे टीलों की संख्या अनुमानतय ४२ हैं। इनमें से एक टीले पर पद्मासन जैन मूर्ति शीर्ष रहित रखी है जिसे आम जनता 'बैठा देव' कहकर पूजती है तथा मनौती मनातीहै। परकोटे से लगभग १ कि० मी० दूर सैंकड़ों की संख्या में मूर्तियां पड़ी हैं। कहीं-कहीं तो भग्न मूर्तियों का ढेर लगा हुआ है। पुरातत्व तथा कला की दृष्टि में इनका मूलयांकन अभी तक नहीं किया गया है। 'बैठा देव' के पश्चिम में एक बावड़ी और कुंआ है। उसके निकट आठ जैन मन्दिरों के खंडहर धर्म चक्र सहित है परकोटे के बायी ओर कुछ आगे चलकर एक पाषाण—द्वार खड़ा हुआ है। उसके ऊपर जैन मूर्तियां अंकित हैं। इसे लोग 'धोबी की पौर' कहते हैं। वास्तव में यह किसी प्राचीन जैन मन्दिर का द्वार है।

मन्दिर के अहाते में बरामदे की दीवार में ५½ × ३¾ फुट का एक शिला पट लगा हुआ है' जो अभिलिखित है। इसमें वि० सं० ६६४ से १००५ तक का विवरण दिया गया है। जिससे स्पष्ट है कि कई सौ वर्षों तक सैरौन का अपना सांस्कृतिक और धार्मिक महत्व रहा है। इस काल में यहाँ गोड वंश, भोजवंश और चन्देल वंश का शासन रहा, लेख यद्यपि अभी तक पूरा नहीं पढ़ा गया है। किन्तु जो अंश पढ़ा गया है, इसमें वहाँ की राजवंशावली दी गयी लगती है। परकोटे के बाहर दायीं ओर सन् १९६१ में हुई खुदाई में एक वेदी, अनेक स्तम्भ मूर्तियां और धर्मचक्र निकले हैं। लगता है, यहाँ कोई विशाल मन्दिर रहा होगा, जिसका विध्वंस होगया। यहाँ देवी— मूर्तियों में सरस्वती चक्रेश्वरी, ज्वालामालिनी और पद्मावती की मूर्तियां बहुतता से मिलती हैं। पद्मावती की एक मूर्ति तो प्रायः ९ फुट ऊँची है। उसके ऊपर सर्प-फण की चौड़ाई सवा पाँच फुट है। यहां मूर्तियाँ तो सहस्त्रधिक हैं किन्तु लेख उनमें से २—४ पर ही हैं। यहां तक कि मूलनायक भगवान शान्तिनाथ की मूर्ति पर भी कोई लेख नहीं है। वस्तुतः जिनपर लेख नहीं है, चतुर्थ काल की होंगी, निश्चित रूप से गुप्तोत्तर काल की हैं।

चन्देरी-बूढ़ी चन्देरी

बूढ़ी चन्देरी एवं चन्देरी भारत का एक प्राचीन ऐतिहासिक तथा दर्शनीय नगर अटेर नदी के दक्षिणी तट पर स्थित है। ललितपुर से ५४ व मुगाओली से ३६ और गुना से ६२ कि० मी० की दूरी पर स्थित है। आधुनिक चन्देरी से बूढ़ी चन्देरी लगभग १३ कि० मी० है। एक जनश्रुति के अनुसार, शिशुपाल, श्री कृष्ण के प्रतिद्वन्द्वी की यह राजधानी थी। कुछ अन्य इतिहासकारों के अनुसार चन्देरी (बूढ़ी) की नीव जेजायुक्ति या बुन्देलखण्ड के चन्देल राजपूतों ने डाली। इनका

शासन काल ८०० से १३०० ई० के बीच रहा तथा चेदिवंश के राजाओं के बसाने के कारण इसका नाम चन्देरी प्रसिद्ध हुआ। बूढ़ी चन्देरी से नई चन्देरी में राजधानी कब, आई, यह कहना कठिन है परंतु प्रतिहार शिलालेख से एक बात प्रकट है कि कीर्तिपाल के पहले ही नई चन्देरी में राजधानी बन चुकी थी, उसी ने बूढ़ी चन्देरी को वीरान करके वर्तमान चन्देरी को स्थापित किया था।

बूढ़ी चन्देरी अब एक उजड़ा गांव है। जंगल तथा वन्य पशुओं से आक्राँत तथा बीहड़ रास्ता है। भवनों, जैन मन्दिरों और गढ़ी के अवशेष बचे हैं। गढ़ी का विस्तार पौन मील लम्बाई और आध मील चौड़ाई में होगा। यहां कलापूर्ण जैन मूर्तियां सैकड़ों की संख्या में यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हैं, जो शिल्प कला की दृष्टि से यहां के मन्दिर एवं मूर्तियां अद्वितीय तथा अष्ट प्रातिहार्य युक्त अति प्राचीन एवं मनोज्ञ हैं। प्रत्येक मन्दिर की छत केवल एक पत्थर की है। किसी-किसी शिला का परिमाण २०० मन से भी अधिक है।—पुरातत्व विभाग ने चन्देरी में एक संग्रहालय की स्थापना की है, जहां बूढ़ी चन्देरी तथा आसपास से जैन सामग्री एकत्रित करके प्रदर्शित की हैं।

चन्देरी सामरिक दृष्टि से इसकी स्थिति अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। एक विशाल खंड् के ऊपर पहाड़ी पर किला बना हुआ है। बेतवा नदी की घाटी पर चन्देरी दुर्ग पूर्णतः कमान करता है। इस तक पहुंचने के घाट अत्यन्त संकीर्ण और दुगर्म हैं। बुन्देले राजपूतों और माण्डू के सुलतानों के समय के बनाए भवनों एवं दुर्ग के अवशेष बड़े परिमाण में विख्यात हैं। चन्देरी की समृद्धि के काल में कहा जाता है ३६० मस्जिदें, ३६० सराएँ, ३६० बावड़ी, ३६० मकबरे आदि थे। उपनगरों को मिलाकर नगर विशाल क्षेत्र में फैला हुआ था। चन्देरी के मुख्य जैन मन्दिर के दो भाग हैं—चौबीसी एवं बड़ा मन्दिर। बड़ा मन्दिर अधिक प्राचीन है तथा इसमें १३वीं शताब्दी तक की प्रतिमाएँ विराजमान हैं। चौबीसी का निर्माण सं० १८९३ में चन्देरी

के भूतपूर्व जागीरदार सवाई राजधर हिरदेशाह चौधरी मदन सिंह ने करवाया था। चौवीसी की पृथक-पृथक वेदी हैं और प्रत्येक तीर्थंकर की मूर्ति उनके मूलवर्ण के अनुरूप उसी रंग के पाषाण (संगमरमर) से निर्मित की गई हैं। जो मूर्ति कला एवँ स्थापत्य कला की दृष्टि से भारतवर्ष में अद्वितीय हैं। मूर्तियाँ अगकद एवँ सुडोलता की दृष्टि से भी अनुपम हैं।—मन्दिर के प्रांगण में एक मानस्तम्भ तथा एक विशाल शास्त्रभन्डार है जिसमें लगभग १५०० हस्तलिखित प्राचीन ग्रंथ हैं। दूसरा मन्दिर छोटा मन्दिर कहलाता है जिसमें अनेकों प्राचीन काल की मूर्तियां हैं।

खन्दार जी

उक्त चन्देरी क्षेत्र से एक कि० मी० की दूरी पर यह क्षेत्र है। यहाँ पहाड़ी की गुफाओं में पत्थर काट कर मूर्तियां बनायी गई है जो तेरहवीं से सत्रहवीं शताब्दी के अन्तर्गत हैं। एक प्रतिमा २५ फीट ऊँची है। यहां की सभी प्रतिमायें पुरातत्व व कला की दृष्टि से विशेष महत्व रखती हैं।

गुरीलागिरी

यह स्थान चन्देरी से १२ कि० मी० पूर्वोत्तर है। यहाँ प्राचीन जैन मंदिरों के भग्नावशेष है। अनेकों खंडित प्रतिमायें इस स्थान के प्राचीन जैन वैभव को बतलाती हैं।

थूबौन जी अतिशय क्षेत्र

चन्देरी से लगभग १३ कि० मी० की दूरी पर थूबौन जी क्षेत्र है। इसका प्राचीन नाम तपोवन है जो अपभ्रंश होकर थूबौन बन गया।

यहां २५ दि० जैन मन्दिर हैं और प्रत्येक मन्दिर में खड्गासन मुद्रा में स्थित पत्थरों में उकेरी हुई २० से लेकर ३० फुट अवगाहना तक की मूर्तियाँ विराजमान हैं। सबसे प्राचीन मन्दिर नं० ४ पाणाशाह का बनवाया हुआ है जो लगभग ११वी शताब्दी का है और भगवान शान्तिनाथ की २० फुट अवगाहना वाली खड्गासन सौम्य प्रतिमा विराजमान है। मन्दिर नं० १३ में ३० फुट अवगाहना की भगवान आदिनाथ की प्रतिमा विराजमान है। ये दोनों प्रतिमाएँ बड़ी मनोज्ञ एवँ सातिशय हैं। यहां एक छोटी सी धर्मशाला है।

पचराई क्षेत्र

अतिशय क्षेत्र पचराई, थूबौन जी से २२ कि० मी० तथा खानिया धाना से ढाई कि० मी० दूर अवस्थित है। यहां २२ मन्दिरों में लगभग १००० प्रतिमाएं हैं, जिनमें आधी खण्डित होगीं। जिन मूर्तियों पर लेख है वह सं० १२३२ से १३४५ तक की है।

सबसे प्राचीन एवं प्रसिद्ध मन्दिर भगवान शान्तिनाथ का है जिस का निर्माण १४ पंक्त्यात्मक लेख के अनुसार वि० सं० ११९२ में पट्ट वंश के समुत्पन्न साहु महेश्वर के पुत्र पाड़ाशाह ने कराया था। अतिशय – जनश्रुति के अनुसार सं० १९४३ में बाजार के मन्दिर की प्रतिष्ठा के समय एवँ जन्म-कल्याणक के दिन कुछ उपद्रवी वैष्णवों ने विघ्न करने की इच्छा से उपद्रव किया था और २७ मूर्तियों को खण्डित करके जब वह प्राचीन भौहरे में स्थित सं० १२३९ की उपर्युक्त खड्गासन भगवान अरनाथ तथा कुंथुनाथ जी के मूर्तियों को खण्डित करना चाहा था तो अचानक अंगारों की वर्षा और खूब धुआं हुआ, जिससे घबराकर उपद्रवी भाग गये। यहां पर मूर्तियों में

बाल-युवा एवँ वृद्धदशाओं का मान होता है तथा कभी-कभी रक्षक देव सर्प के रूप में दिखाई देते हैं।

बजरंगगढ़ (अतिशय क्षेत्र)

कोटा-बीना लाईन पर गुना स्टेशन से ८ कि० मी० दूरी पर यह क्षेत्र अवस्थित है। यहां के तीन मन्दिरों में एक पाड़ाशाह द्वारा निर्मित है जिसके एक भोंहरे में अनेकों प्रतिमाएँ विराजमान हैं। यहां यहाँ की अनेकों प्रतिमायों को मुसलमानों ने और कुछ को धार्मिक विद्वेष से जैनेतर लोगों ने लगभग १०० वर्ष पूर्व विध्वंस कर दिया था। सन् ११८१ की प्रतिष्ठित भगवान अरहनाथ एवँ कुंथुनाथ स्वामी की प्रतिमाएं अतिशययुक्त विराजमान हैं।

बीनाजी (अतिशय क्षेत्र)

मध्य रेलवे के बीना-कटनी सेक्शन पर सागर स्टेशन से देवरी तथा देवरी से ६ कि० मी० दूरी पर बीना जी अवस्थित है। यहां तीन विशाल एवँ कलापूर्ण दिगम्बर जैन मन्दिर है, इनमें एक प्रतिमा भगवान शांतिनाथ की १४ फुट की तथा एक अन्य प्रतिमा भगवान महावीर की १२ फुट खड्गासन विराजमान हैं। एक भोंहरे में बहुत सी प्राचीन प्रतिमाएं हैं।

अजयगढ़ (अतिशय क्षेत्र)

पन्ना से ३३ कि०मी० पर अवस्थित है। नगर में एक मंदिर है। आबादी के निकट एक पर्वत पर एक किला है जिसके द्वार से पार होते ही दीवालस्थ, दो शिलाओं में उत्कीर्ण पद्मासन ५० दिगम्बर

मूर्तियाँ हैं। इसके पास ही दो कुण्ड और एक तालाव है। तालाब की दीवार में भी प्राचीन प्रतिमायें है। यहाँ एक मानस्तम्भ भी है।

कुंडलपुर (अतिशय क्षेत्र)

मध्य रेलवे की वीना-कटनी लाईन पर दमोह स्टेशन से ३० कि० मी० तथा जवलपुर से रोड द्वारा १२६ कि० मी० है। ग्राम के निकट ही तालाब के किनारे कुण्डल के आकार का पर्वत है तथा इसी कारण इस क्षेत्र को कुण्डलपुर कहते हैं। पर्वत पर जाने हेतू सीढ़ियाँ वनी है। इस पर्वत एवं तलहटी में कुल ५६ मन्दिर हैं। पर्वतस्थ मन्दिरों के वीच में एक विशाल मन्दिर पहाड़ काट कर बनाया गया है। जो जमीन की सतह से १७ फुट नीचा है इस मन्दिर में भगवान महावीर की ६ फुट ऊँची प्रतिमा पहाड़ में उत्कीर्ण की हुई महामनोहर सातिशय प्रतिमा हैं। इसका अतिशय इस प्रकार प्रसिद्ध है। जब महमूद गजनवी ने इस क्षेत्र पर आक्रमण करके प्रतिमा को तोड़ना चाहा था। तदर्थ ज्योंही अंगुष्ट पर छैनी लगाई (जिसका चिह्न अभी भी है) त्यों ही वहां से दूध की धारा और भ्रमरों की पंक्ति प्रकट हो गई जिससे पीड़ित होकर गजनी को प्राण वचाकर भागना पड़ा था। भगवान महावीर का समवसरण कुण्डलपुर आया था पर्वतस्थ मन्दिरों में प्राचीन शिलालेख तथा यन्त्र भी खुदे हुए हैं।

सागर

सागर-मध्य प्रदेश की प्रमुख नगरी है। यहां १६ जैन मन्दिर है जिसमें तीन विशाल एवं प्राचीन हैं।

समोरसरण की भव्य रचना का दृश्य

—पर्वत लगभग १०० फुट ऊँचा है और चढ़ने के लिए सीढ़ियां बनी हैं। पर्वत पर २६ प्राचीन दि० जैन मन्दिर हैं तथा एक गुफा है। पर्वतमाला के झरते हुए निर्मल जल के दो कुण्ड हैं, जिनका जल शीत ऋतु में गर्म और ग्रीष्म ऋतु में शीतल रहता है।

द्रोणगिरि पर्वत गुरुदत्तादि मुनिराजों की निर्वाण-भूमि है तथा ऐसी भी कहावत है कि अयोध्यापती राम बनवास के समय ओरछा आये थे तो प्रकृतिप्रिय राम ने इस पुण्य भूमि में पदार्पण किया था। दूसरी जब राम-रावण युद्ध के समय लक्ष्मण जी को शक्ति लगी थी तो हनुमान जी संजीवनी बूटी आदि दिव्यौषदि रूपी रत्न यहीं से ले गये थे।

जबलपुर-बाहुरीबंद

मध्य रेलवे की इटारसी-जबलपुर वाली मुख्य लाईन पर प्रमुख जंकशन स्टेशन है। यहां लगभग ५० विशाल मन्दिर है। हनुमान ताल वाला मन्दिर तथा भेड़ाघाट में मढ़ियां जी नाम का मन्दिर विशेष प्रसिद्ध हैं। मढिया जी के मन्दिर में चतुर्थ कालीन २ मेक हैं। पहले मेक में ६२ एवँ दूसरे में २४ मनोज्ञ प्रतिमाएँ हैं।—धुँआ-धार, यह स्थान नर्मदा के किनारे है, एक स्थान पर पानी ऊँचे से गिरने के कारण उसमें से धुंआ-सा उठता दिखाई देता है। इससे यह धुंआधार के नाम से प्रसिद्ध है। इस झरने को और नदी के पास संगमरमर (सेलखड़ी) की चट्टानों के भी दृश्य देखने योग्य हैं।

बाहुरीबंद—जबलपुर से ३३ कि० मी० की दूरी पर ग्राम में प्राचीन मन्दिरों के भग्नावशेष यंत्र-तंत्र बिखरे पड़े हैं। एक मन्दिर में १२ फुट ऊँची भगवान शान्तिनाथ की सन् १०४३ की प्रतिमा है।

जैन दृष्टि में राजस्थान

जैन धर्म संसार के अत्यन्त प्राचीन धर्मों में से एक है। इसकी प्राचीनता वेद व वैदिक ग्रंथों से भी सिद्ध होती है। जैन धर्म के साथ-साथ उसकी उपासना पद्धति भी प्राचीनत्तम है। इस उपासना पद्धति के मुख्य आधार जैन मन्दिर और जैन प्रतिमाएँ हैं। सच कहा जाय तो जैन धर्म को जीवित रखने में इन मन्दिरों का वहुत कुछ श्रेय है। राजस्थान के जैन कला पूर्ण मन्दिरों में जो अध्ययन सामग्री उपलब्ध होती है उसका महत्व कम नहीं है। राजस्थान के अनेक मन्दिरों का इसलिए भी महत्व है कि उनमें हस्तलिखित प्राचीन शास्त्र भण्डार है।

श्री महावीर जी अतिशय क्षेत्र

दिल्ली से पश्चिमी रेलवे पर श्री महावीरजी स्टेशन २६३, जयपुर एवँ आगरा से ७६ कि० मी० है तथा स्टेशन से क्षेत्र लगभग ६ कि० मी० गम्भीर नदी के उस पार अवस्थित है। भगवान महावीर की मनोज्ञ अतिशययुक्त प्रतिमा का अतिशय इस प्रकार है—एक ग्वाला नदी के किनारे गीएं चराया करता था। एक समय उनमें से एक गाय का दूध प्रतिदिन एक ही स्थान पर झड़ जाता था, ग्वाला इस से व्याकुल एवं चिंतित होने लगा, उसने एक रात्रि को स्वप्न देखा—वहां एक प्रतिमा है। प्रातकाल को उसने खोदना प्रारम्भ किया तो 'आवाज आई कि धीरे खोदो।' इस आवाज से चकित होकर उसने हाथों से कुरेदना शुरू किया तो यहां पर उल्लिखित प्रतिमा निकली।

यह क्षेत्र राजस्थान का सर्वाधिक व्यवस्थित एवँ उन्नतशील

तीर्थ माना जाता है। जनश्रुति के अनुसार बसवा नगर के श्री अमर चन्द बिलाला ने प्रारम्भ में लगभग १७ वीं शताब्दी में इस मन्दिर का निर्माण कराया। क़टले के मध्य में गगनस्पर्शी तीन शिखरों से अलंकृत एक विशाल दि० जैन मन्दिर है। मन्दिर में १० वेदियां हैं। सबसे पिछाडी की मध्य वेदी में भगवान महावीर की गेहूआँ रंग के पाषाण की पद्मासन तीन फुट अवगाहना की मनोज्ञ अतिशययुक्त प्रतिमा विराजमान है जो कि समीपस्थ टीले से प्राप्त हुई थी। क्षेत्र के उद्भव काल से ही महावीर जयन्ती (चैत्र सुदी) पर यहाँ आयोजित होने वाला मेला राजस्थान का महान मेला माना जाता है। रथ यात्रा वैशाख कृष्णा प्रतिपदा को निकलती है तथा हर वर्ष दीपावली पर निर्वाण लाडु चढ़ता है। कटरे के भीतर तथा बाहर अनेक सुन्दर धर्मशाला है। व्यवस्था सुन्दर है।

चरण छतरी (निशिया जी) एवं आश्रम—जिस स्थान से भगवान महावीर की प्रतिमा उपलब्ध हुई थी वहां छतरी के नीचे प्राचीन चरण युगल विराजमान हैं।—दि. जैन मुमुक्ष महिलाश्राम मुख्य मन्दिर के निकट ही अवस्थित है। ब्र. कृष्णाबाई द्वारा निर्मित आश्रम में एक अन्य मन्दिर का निर्माण भी कुछ वर्ष पूर्व हुआ है जिसमें भगवान महावीर की ६३ फुट मनोज्ञ प्रतिमा विराजमान है।—दि. जैन आदर्श महिला विद्यालय, ब्र, कमलाबाई के सदप्रयत्नों से यह संस्था कटले के पूर्व दिशा में अवस्थित है। आश्रम में विधवा-सधवा एवँ कन्याओं को धार्मिक, कोसिक एवं लौकिक शिक्षा दी जाती है। भगवान पार्श्वनाथ की कृष्ण पाषाण की भव्य मूर्ति विराजमान है।

शान्तिवीर नगर—गम्भीर नदी के पूर्वी तट पर अवस्थित है। एक मन्दिर दूसरे खण्ड में है तथा नवीन मन्दिर में ३२ फुट अवगाहना की शान्तिनाथ भगवान की खड्गासन प्रतिमा है एवं दोनों ओर चौबीसी बनी है। दो वेदो भोहरे में हैं।

सवाई माधोपुर

पश्चिम रेलवे की दिल्ली वम्वई लाइन पर सवाई माधोपुर जंक्शन स्टेशन है। स्टेशन से लगभग ६॥ कि० मी० को दूरी पर नगर में विशाल मन्दिर हैं। कई मन्दिरों में भोहरें हैं जिनमें सैकड़ों प्राचीन मनोज्ञ प्रतिमायें विराजमान हैं।

चमत्कार जी

उक्त सवाई माधोपुर स्टेशन से ३ कि० मी० की दूरी पर यह क्षेत्र है। यहां एक विशाल मन्दिर व निशियाँ जी है। ऐसा कहा जाता है कि सन १८४७ में एक स्फटिक मणि की ६ इंच की प्रतिमा एक वाग में मिली थी, उस समय यहा केशर की वर्षा हुई थी।

रणथँभोर

सवाई माधोपुर से यह १६ कि० मी० दूर है। यहां राजा हम्मीर सिंह का वनवाया हुआ एक हजार वर्ष प्राचीन किला है जिसमें अनेक मन्दिरों के साथ एक जैन मन्दिर भी है। मन्दिर जी में सं० १० की श्वेत पाषाण की एक फुट ऊंची पद्मासन भगवान चन्द्रप्रभु की मूर्ति विराजमान है।

खंडार जी

रणथंभोर से ३८ कि० मी० दूर यह स्थान है। यहाँ एक वड़े कोट में दो मन्दिर हैं उनमें अनेक विशाल प्रतिमायें हैं।

श्री केशवराय पाटण

पश्चिम रेलवे की बम्बई दिल्ली लाइन पर कोटा जंक्शन स्टेशन से १२ कि० मी० दूर यह नगर अवस्थित है। यहां एक प्राचीन विशाल जैन मंदिर है जिसमें पृथ्वी के अन्दर गुफा में मूर्तियां विराजमान हैं। इन प्रतिमाओं के अतिरिक्त भगवान मुनिसुव्रतनाथ की श्याम वर्ण लगभग १२ वीं शताब्दी की भव्य एवँ दर्शनीय, चमत्कार पूर्ण प्रतिमा विराजमान है।

चांदखेड़ी (अतिशय क्षेत्र)

कोटा जंक्शन से ११२ कि० मी० की दूरी पर यह क्षेत्र अवस्थित है। यहाँ सन् १६८६ की प्रतिष्ठित विशाल मन्दिर भूगर्भ में हैं। इसमें भगवान ऋषभदेव की ५ फुट ऊँची प्रतिमायें तथा उभय पार्श्वों में भगवान शान्तिनाथ की दो प्रतिमायें ७-७ फुट की विराजमान हैं। इनके अतिरिक्त सैकड़ों प्राचीन जैन बिम्ब है। द्वार के उत्तर भाग में १० फुट ऊँचा एक कीर्ति स्तंभ है जिसके चारों ओर प्रतिमायें उत्कीर्ण हैं। एक जनश्रुति के अनुसार क्षेत्र से १० कि०मी० की दूरी पर बारापाटी नामक पर्वत पर सं० ५०५ का निर्मित एक विशाल मन्दिर सन १६८८ के लगभग ध्वंस दिशा में पड़ा था, सांगोद निवासी कामदार किशनदास व अन्य एक सज्जन को स्वप्न आया कि इस प्राचीन ध्वंस मन्दिर की प्रतिमाओं को लाकर ग्राम में विराजमान करो। वह उस जंगल से उन प्रतिमाओं को बैलगाड़ी से सादोद ला रहे थे, विश्राम करने हेतु रुपली नदी के किनारे गाड़ी ठहरा दी। कुछ समय पश्चात गाड़ी जोती गई किन्तु लाख प्रयत्न करने पर भी गाड़ी एक इंच भी नहीं चली। अतएव रात्री को वहीं ठहरे रहे, उसी रात्री को उन्हें अन्य स्वप्न हुआ कि प्रतिमाजी यहीं पर विराज-

मान होंगी तथा वहीं नदी के किनारे मन्दिर का निर्माण हुआ। भोंयरा सचमुच भूमि से बहुत नीचे गहराई में हैं। नदी होने के चिह्न भी प्राप्त होते हैं।

अतिशय क्षेत्र तिजारा

दिल्ली से तिजारा लगभग ११७ कि० मी० है। इस अतिशय क्षेत्र से श्रावण शुक्ला १० सं० २०13 में चन्द्रप्रभु की दिव्य चमत्कारी पूर्ण प्रतिमा भूगर्भ से प्राप्त हुई थी। यद्यपि इस क्षेत्र को प्रकट हुए अधिक समय नहीं हुआ फिर इतने थोड़े समय मे जो ख्याति प्राप्त हुई है वह अवर्णनीय है। इस चमत्कारी मूर्ति के दर्शन कर लाखों नर-नारी अपनी मनोकामना पूर्ण कर अपने मानसिक एवं शारीरिक दुखों से छुटकारा प्राप्त करते हैं। भूत प्रेतादि की बाधा से पीड़ि‍त अनेकों नर-नारी अपनी बाधा को दूर करने के लिए आते हैं। और प्रभु के चरण कमलों में रहकर शान्ति तथा सुख की प्राप्ति करते हैं। यहाँ यात्रियों के ठहरने का भी यथोचित प्रबन्ध है। इस मूर्ति को विराजमान करने हेतु नवीन विशाल मन्दिर का निर्वाण हो रहा है।—ग्राम मन्दिर पार्श्वनाथ दि० जैन मन्दिर में अनेकों प्रतिमाएँ विराजमान हैं। मेला प्रतिवर्ष फागुन वदी सप्तमी और श्रावण शुक्ला १० को होता है।

अलवर

अलवर दिल्ली से १५८ कि० मी० दूरी पर स्थित है। तिजारा क्षेत्र से बसें दिन भर आती जाती हैं। यहां के मन्दिरों में अनेक प्राचीन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। मुख्य मन्दिर श्री नन्दिराम जी (भूतपूर्व ग्वालियर राज्य के दीवान) के पुत्र मुन्शी रिशक लाल जी ने, जो अलवर राज्य के दीवान थे, सन् १८८०-९० के लगभग

निर्माण करवाकर प्रतिष्ठा करवाई थी ।

जयपुर

जयपुर जैनियों का प्रमुख केन्द्र है । इसे यदि जैन पुरी कहें तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी । यह नगर दिल्ली से २६२ कि० मी० आगरा से १२८ कि० मी० तथा श्री महावीर जी से १७६ कि० मी० है । यहाँ के जैन मन्दिर अपनी गौरव गाथायें स्वयं गाते दिखाई देते है । यद्यपि इन मन्दिरों में १०वीं शताब्दी से ही प्रतिष्ठित मूर्तियाँ मिलती है लेकिन सं० १५४८ से सं० १८६१ में प्रतिष्ठित मूर्तियों की संख्या सबसे अधिक है । मन्दिर अपनी विशालता सुन्दरता एवं शिल्पकला से विख्यात हैं जयपुर में अनेक धर्मशाला हैं (१) बनजी ठोलिया की धर्मशाला, घी वालों का रास्ता, (२) मलजी भोरालाल जी की एम. आई. रोड (३) बक्शी जी की, मेंहदी वालों का चौक रामगंज बाजार (४) खजांची की, गोदीकों का रास्ता किशनपोल बाजार (५) दिवाल जो की, लाल जो साँड का रास्ता (६) खिन्दूकों की, चौड़ा रास्ता (७) टांक धर्मशाला, घी वालों का रास्ता (८) धूपिया धर्मशाला, भेंरू का रास्ता (९) बैराठियों की धर्मशाला, जड़ियों का रास्ता (१०) पुंगलिया धर्मशाला, स्टेशन रोड ।

वर्तमान में विभिन्न चौकड़ियों के आधार पर विवरण इस प्रकार है । (१) मन्दिर श्री महावीर स्वामी, गोपाल जी का रास्ता । नगर के मध्य में स्थित है, सं० ११४७ की खड्गासन श्याम वर्ण भगवान महावीर की मनोज्ञ चमत्कारी प्रतिमा के अतिरिक्त १५५ प्रतिमाएं एवं ३९ यंत्र हैं तीन लोक के मकराने के पाटिये पर सोने के छपे भाव हैं—(२) सोनियों का मन्दिर, परशुराम मार्ग में

भगवान पार्श्वनाथ की खड्गासन विशाल प्रतिमा, मनोज्ञ, चमत्कारी कलात्मक भव्यता एवं विलक्षणता से परिपूर्ण है—(३) मन्दि? अमी चन्द जी, मोती सिंह भोमियों का रास्ता, २४ तीर्थंकरों की पद्मासन मनोज्ञ प्रतिमाएँ हैं। (४) तेरापन्थी बड़ा मन्दिर घी वालों का रास्ता में पंचायती मन्दिरों में से है छत में सोने की छपाई, खम्बों पर कुराई, दोवारों में पच्चीकारो जैसी कला अन्यत्र कम ही मिलेगी, विशाल प्राचीन शास्त्र भंडार में २६०० ग्रन्थों एवं गुटकों का संग्रह है यहीं दुली चन्द जी के शास्त्र भंडार में ८०० कलापूर्ण हस्तलिखित ग्रंथों का संग्रह व ताडपत्रीय शास्त्र सुरक्षित हैं। (५) मन्दिर दि० बधी चन्द साहु का, घी वालों के रास्ते के तोसरे चौराहे के नुक्कड़ पर है तथा इसका विशाल एवँ कलापूर्ण गुम्बद सोने की छपाई की दृष्टि में दर्शनीय है २८६ प्रतिमाएं तथा ७१ यंत्र और वृहत शास्त्र भँडार है। पं० टोडरमल के हस्तलिखित मोक्षमार्ग प्रकाशक, गोम्मट-सार तथा आतमानुशासन ग्रन्थ यहाँ मौजूद हैं।—(६) मन्दिर ठोलियों का, धर्मशाला के सामने घी वालों का रास्ता में, लगभग ३६४ प्रतिमाएँ, १२७ यंत्र तथा ३ विशाल विल्लोरी प्रतिमाएँ हैं। शास्त्र भंडार में ६५० ास्त्र आदि हैं। नगर के मन्दिरों चैत्यालयों व निशियायों में सबसे अधिक प्रतिमाएँ एवं यंत्र का संग्रह केवल यहाँ ही है। (७) मन्दिर दरोगा जी का, हल्दियों के रास्ते में ऊंचे कुएं के निकट है, सं० १८८८ के निर्मित मन्दिर में ८५ प्रतिमाएं एवं १८ यंत्र कला को दृष्टि में श्रेष्ठ हैं।—(८) मन्दिर चाकस का, चाकस चौंक हल्दियों के रास्ते में लगभग २४५ मूर्तियाँ एवं १३० यंत्र हैं। (९) मन्दिर बूचरों का चाकस मन्दिर के निकट हैं यहाँ भगवान महावीर की धवल पाषाण को अति प्राचीन एवं मनोहर मूर्ति है। —(१०) मन्दिर सँघी जी का, मणिहारों का रास्ता महावीर पार्क के निकट है इसका निर्माण सं० १७८८ का है २५६ प्रतिमाएँ तथा ३९ यंत्र हैं। वेदी देखने योग्य है।—(११) मन्दिर खिन्दकों का, चौरुकों

का रास्ता, चौराहे की कूंट पर है यहाँ अंगूठी में ३ प्रतिमाएँ २ चरण हैं तथा भगवान अजितनाथ की श्याम वर्ण प्रतिमा दर्शनीय हैं। —(१२) मन्दिर बड़ा दीवान जी का, दि० संस्कृत कालेज के निकट मणियारों के रास्ते में है यहाँ भगवान आदिनाथ की श्याम पाषाण की विशाल प्रतिमा दर्शनीय है।—(१३) मन्दिर पाटौदी का मणियों का रास्ता में, मन्दिर सं० १७८४ में नगर की स्थापना काल का है गुम्वद के भीतरी भाग में चित्रों की कला दर्शनीय है तथा लगभग १४५ प्रतिमाएँ एवं शास्त्र भंडार है। (१४) लश्कर मन्दिर, वोरड़ी का रास्ता में लगभग २२१ प्रतिमाएँ हैं। यह मन्दिर महिलाओं की आपसी वोली—ठोली के हेतू निर्मित हुआ। राजा-महाराजाओं के साथ संग्राम में जाने वाले जैनों के दर्शन के हेतू एक चैत्यालय यहां से जाया करता था। इसीलिये इसे लश्करी मन्दिर कहने लगे।—(१५) छोटे दिवान अमर चन्द जी का मन्दिर लाल जी सांड का रास्ता में है यहाँ चन्द्र प्रभु भगवान की विशाल प्रतिमा है।—(१६) मन्दिर सिरमोरियों का, आचार्यों का रास्ता में है चौकडी मोदीखाना में लगभग १६० प्रतिमाएँ एवँ ३० यंत्र हैं।—(१७) नवीन मन्दिर मुलतान वालों का आदर्श नगर में स्थित है। यहाँ पाकिस्तान वनने के समय मुलतान आदि से लगभग १०० प्रतिमाएँ लाकर यहां विराजमान की गई हैं।—(१८) मन्दिर गोधों का, नागोरियों के चौक में संगमरमर पर शिल्प कला का एक अच्छा नमूना है तथा चंवरी में धातु की २४ समान प्रतिमाएँ मन मोह लेती है।—(१९) मन्दिर वाँस का, गोधों का चौक मन्दिर में मूलनायक प्रतिमा भगवान पार्श्वनाथ को स० १६१९ की है तथा चन्द्रप्रभु स्वामो की स० १५२५ की है।—(२०) मन्दिर लूणकरण जी ठाकुर पचवेर का रास्ता में पद्मावतो देवो की प्रतिमा चमत्कारी है।—(२१) मन्दिर चौधरियों का, वख्शो जी का चौक, रामगँज वाजार में लगभग १५१ प्रतिमाएँ तथा १७ यँत्र हैं।—(२२) मन्दिर कलहकीर्ति जी, चौड़ा रास्ता,

मन्दिर में कांच का काम देखने योग्य हैं। (२३) मन्दिर मेघराज जी, सेवा पथ चौकड़ी मोदीखाना में, यहाँ भी आकर्षक एवँ मनोज्ञ प्रतिमाएँ हैं।

चौकड़ी घाट दरवाजा—(२४) वैराठ्यों का नया मन्दिर, मोती सिंह भोमियों का रास्ता। (२५) चौधरीयों का नया मन्दिर, वोहरा जी के कुएँ के निकट। (२६) निगोतियों का मन्दिर, २५ के निकट। (२७) फागी का मन्दिर, घी वालों का रास्ता चूड़ी वाला चौराहा। (२८) गुमानी राम जो का मन्दिर, कन्या पाठशाला के निकट। (२९) लाडी जी का मन्दिर, दरोगा जी की हवेली के पास। (३०) मुशरफों का मन्दिर, मुशरफों का चौक, मनीराम कोठी के निकट। (३१) वैदों का मन्दिर, कोठी मनीराम के सामने। (३२) जीउवाई का मन्दिर, शिवजी राम भवन के सामने। (३३) भूराजी का मन्दिर, वैज्या के चौराहे के नुक्कड़ पर। (३४) मारु जी का मन्दिर, मारु जी का चौक।

चौकड़ी तोपखाना हुजूरी—(३५) ढूडियों का मन्दिर, जीनमाता के खुरे का रास्ता। (३६) अठारह महाराज मन्दिर तथा (३७) विजेराम जी का मन्दिर पानों का दरीबा में स्थित है।

चौकड़ी मोदी खाना—(३८) छावड़ों का मन्दिर, छींक माता मन्दिर के निकट। (३९) कालों का मन्दिर, छावड़ो के मन्दिर की अगली गली में। (४०) शिवाउ वालों का मन्दिर, अजमेरी गेट वाकली वालों की गली। (४१) वाकली वालों का मन्दिर, अजमेरी गेट के निकट। (४२) मन्दिर खोजों का वाड़दारों के निकट। (४३) गढमल का मन्दिर, दीवान शिवजी का रास्ता। (४४) सांगों का मन्दिर, किशन पोल बाजार। (४५) चाई जी का मन्दिर, चोरुकों के रास्ते के नुक्कड़ पर। (४६) पापलियों का मन्दिर, लाल जी सांड के रास्ते में। (४७) पहाड़ियों का मन्दिर, दीवान अमरचन्द की गली। (४८) भौसों का मन्दिर, चौराहा मोदीखाना।

चौरु के भौंसा। (४६) जती जी का मन्दिर, मनिहारों का रास्ता। (५०) चौधरियों का मन्दिर, बोली के कुएँ के पास। (५१) चम्पाराम पांडया मन्दिर, आचार्यो के रास्ते का चौराहा।

चौकड़ी तोपखाना देश—(५२) शिवलाल पाँडया मन्दिर, आंकडों का रास्ता। (५३) सोगाणियों का मन्दिर, आंकडों का रास्ता। (५४) वगीची वाले वजों का मन्दिर, टिक्की वालों का रास्ता। (५५) वधीचन्द का मन्दिर, टिक्की वालों का रास्ता। (५६) आमली का मन्दिर, नमक मण्डी। (५७) डूंगरसी मन्दिर, पहला चौराहा टिक्की वालों का रास्ता। (५८) जोवनेर का मन्दिर, पहला चौराहा खेजड़ों का रास्ता। (५६) वेगस्यों का मन्दिर, चांद पोल वाजार, डीणयारों का रास्ता। (६०) वेनाड़ों का मन्दिर, ठा. हरिसिंह लाडखानी के सामने। (६१) कासली वालों का मन्दिर, वेनाड़ों के मन्दिर के पास। (६२) घिनोई वालों का मन्दिर, पांचवां चौराहा जयलाल मुँशी का रास्ता।

जयपुर में चैत्यालय—चौकड़ी मोदीखाना में २६—घाट दरवाजा में २३—चौकड़ी तोपखाना देश में ६—चौकड़ी तोपखाना हुजूरी में ४—चौकरी विश्वेश्वर जी में ३—चौकड़ी गंगापोल में एक—चार दीवारी के वाहर ८।

जयपुर में नशियां मन्दिर एवं नवीन मंदिर—(१) मोहन वाड़ी, गलता रोड पर सूरज पोल के बाहर। (२) नशियाँ खजांची की, चाँदपोल दरवाजे के बाहर। (३) नशियां बगरुवालों की, स्टेशन रोड अटल जी के वाग के बाहर। (४) नशियाँ तेरापंथी की, स्टेशन पोस्ट आफिस के सामने। (५) नशियां दीवान जी, सवाई मानसिह अस्पताल के सामने। (६) नशियाँ भट्टारक जी, राम वाग से पहले रामसिह रोड पर। इनके अतिरिक्त जयपुर में अनेक स्थानों पर नवीन मन्दिरों का निर्माण हुआ है।

पुराना घाट (खानियां) नगर से जयपुर-आगरा राजमार्ग पर

३ कि० मी० है तथा दो जैन मन्दिर हैं। नया मन्दिर वोहरा जी का व दूसरा चुन्नीलाल जी का जो विहारी के मन्दिर के नाम से भी विख्यात है। जगों की वावडी का मन्दिर जयपुर-गलता मार्ग पर, शिशोदिया रानी के महलों से आगे पूर्व में १॥ कि० मी० है यहां भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति दर्शनीय है। राणा जी की एवं संघी जी की नशियाँ (खानियां) राणा जी की नशियाँ अपनी विशाल एवं सोने की कलम के सुनहरी काम के लिये सर्वत्र प्रसिद्ध है। मूलनायक प्रतिमा भगवान वासपुज्य की है। नशियाँ के समीप ही ७०० फुट ऊँचे पर्वत पर श्री पार्श्वनाथ चूलगिरी नामक नवीन मन्दिर हैं। आचार्य रत्न श्री देश भूषण जी महाराज की प्रेरणा से इस क्षेत्र को विकसित करके रमणीक तीर्थ क्षेत्र वनाया जा रहा है। पर्वत पर भगवान पार्श्वनाथ का मन्दिर और २८ गुम्वटियों में प्रतिमाएँ एवं चरण विराजमान हैं। मूलनायक प्रतिमा भगवान पार्श्वनाथ की ७ फुट अवगाहना की खड्गासन तथा इसके दायीं वायीं ओर भगवान महावीर व नेमीनाथ स्वामी की विशाल पद्मासन प्रतिमाएँ हैं। शान्तिनाथ की खोह खानिया से लगभग ४ कि० मी० दूर स्थित है, यह जयपुर राज्य की पूर्व राजधानी थी यहां पर मनोज्ञ एवं सुन्दर प्रतिमाएँ हैं। दि० जैन मन्दिर वगराणा खानियों से ६ कि० मी० दूर यहां प्राचीन मन्दिर है। दि० जैन मन्दिर जयसिंहपुरा-खोर (कानी खोह) जयपुर से ६ कि० मी० दूर रामगढ़ रोड पर डेढ़ कि० मी० दायीं ओर स्थित है। गोधान के जैन मन्दिर में सं० १७८० की प्रतिष्ठित श्री श्रेंयासनाथ स्वामी की मूलनायक प्रतिमा है। जैन मन्दिर चावड का मठ, जयसिंहपुरा खोर से ३ कि० मी० दूर है। यहाँ से ३ कि० मी० सायपुरा एवं ४॥ कि, मी. दूर साईवाड़ का जैन मन्दिर है। जैन मन्दिर नटाटा, साईवाड़ से ४॥ कि. मी. है। जैन मन्दिर कूकस नटाटा से ३ कि. मी. दूर है। जैन मन्दिर दुर्गापुर, जयपुर-सांगानेर मार्ग पर लगभग ८ कि. मी. है।

जयपुर में अन्य दर्शनीय स्थल—हवा महल, संग्राहलय, चन्द्र महल (सिटी पैलेस), गोवीद 'देव जी मन्दिर, यन्त्रालय (जन्तर-मन्तर) गलता तीर्थ, पुराना घाट, आमेर आदि।

आमेर—जयपुर नगर से ८ कि० मी० है तथा जयपुर राज्य की प्राचीन राजधानी यहीं थी। यहां अनेक विशाल व कलापूर्ण दि० जैन मन्दिर हैं। प्राचीन जैन मन्दिर कुछ तो धाराशाही है और केवल अपने भग्नावशेषों द्वारा जाने जाते हैं, कुछ किसी समय शैव मन्दिर में परिवर्तित कर दिए गये थे जैसा कि शिवनन्दी की स्थापना से स्पष्टतया विदित होता है। इन मन्दिरों में अनेक मूर्तियां १२-१३ वीं शताब्दी की भी हैं। यहां इस समय सात प्राचीन जैन मन्दिर हैं। जिनमें (१) साँवला जी नेमिनाथ का मन्दिर प्रमुख है। इसमें ७६ प्रतिमाएँ २६ यन्त्र तथा प्राचीन शास्त्र भंडार है। (२) मुंशी जी का मन्दिर (३) वधीचन्द का मन्दिर (४) बक्शी जी का मन्दिर (५) भट्टारक जी का चैत्यालय (६) १२वीं शताब्दी की निर्मित नशियाँ जी पहाड़ी पर है। (७) बाहर की आमेर—दिल्ली रोड के मन्दिर में भगवान नेमिनाथ की सं० १२०५ की भव्य एवं मनोज्ञ, चमत्कारिक मूर्ति विराजमान है।

अन्य दर्शनीय स्थल—आमेर का प्राचीन किला तथा इसके भवन आदि, शिला देवी का मन्दिर जगत शिरोमणि मन्दिर आदि।

सांगानेर—जयपुर से १३ कि० मी० है तथा कोट के मध्य में एक प्राचीन नगर है। यहां विशाल एवं अद्भुत चित्रकारी के सात दि० जैन मन्दिर हैं। जिनमें अनेकों प्राचीन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। (१) संघी जी का मन्दिर, यह मन्दिर बड़ा विशाल एवं कलापूर्ण है तथा इसका निर्माण १२वीं शताब्दी में हुआ था। मन्दिर में सं० ११५० में प्रतिष्ठित मूर्ति बड़ी मनोज्ञ, चमत्कारिक एवं दर्शनीय है। इसमें एक प्राचीन भोंहरा भी है। हाल ही में भूगर्भ से प्राप्त ३ मूर्तियाँ भी यहीं स्थापित हैं। (२) गोधों का मंदिर इसे ढाई पेड़ी भी

कहते हैं इसमें भी भोंहरा है। (३) बधीचन्द जी का मन्दिर। (४) गोदीकों का, वेदी की खुदाई का काम दर्शनीय है। (५) ठोलियों का मन्दिर। (६) लुहाड़ियों का मन्दिर। (७) नशियाँ जी।

अन्य निकटवर्ती मन्दिर—जैन मन्दिर श्योपुर साँगानेर थाने से १।। कि० मी० कच्चे में है। दिगम्बर जैन मन्दिर जगतपुर, सांगानेर स्टेशन के निकट है। जेन मन्दिर भाँकरोटा, जयपुर, अजमेर रोड पर १२ कि. मी. दूर है—जैन मन्दिर मुकन्दपुरा भाँकरोटा से लगभग ७ कि. मी. है—वैनाड़ जैन अतिशय क्षेत्र जयपुर से ६ कि. मी. जयपुर भोटवाड़ा रोड पर प्राचीन मन्दिर है मूलनायक प्रतिमा भगवान चन्द्रप्रभु की है।

पदमपुरी (बाड़ा)

जयपुर से ३६ कि. मी. है, कुछ वर्ष पूर्व मूलाजाट जब अपना घर बनाने हेतु उसकी नींव खोद रहा था तो भूगर्भ से पद्मप्रभु भगवान की एक श्वेत पाषाण की ढाई फुट अवगाहना वाली पद्मासन मनोज्ञ एवं सातिशय मूर्ति निकली थी। प्रतिमा को स्थाई रूप में विराजमान करने के सुउद्देश्य से एक विशाल एवं अपने ही ढंग के निराले मन्दिर का निर्माण हो रहा है। सुन्दर धर्मशाला है।

अजमेर पुष्कर

जयपुर से लगभग १३२ कि० मी० दूर पहाड़ियों से घिरी एक सुरम्य घाटी में स्थित अजमेर नगर अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के अतिरिक्त धार्मिक दृष्टि से भी दर्शनीय है। अजमेर की स्थापना ७ वीं शताब्दी में अजयपाल चौहान द्वारा की गई थी। नगर में लगभग ३१ दि० जैन मन्दिर हैं। स्टेशन से थोड़ी ही दूरी पर सोनी जी की निशियां एवं धर्मशाला है। निशियाँ जी में भगवान आदिनाथ

का मन्दिर तथा यहां की अनेक रचनाएँ दर्शनीय हैं। दर्शनीय स्थल, ख्वाजा की दरगाह—ढाई दिन का झोंपड़ा, यह १२वीं शताब्दी का जैन मन्दिर एवं हिन्दू मन्दिर था मुसलमानों ने विध्वंस करके मस्जिद बनाई—आनासागर—तारागढ़ का किला राजा अजयदेव द्वारा निर्मित यह दुर्ग समुद्रतल से २८५५ फीट व जमीन से ८०० फीट ऊँची पहाड़ी के शिखर पर है—पुष्कर अजमेर से ११ कि० मी० दूर है बस जाती हैं, पुष्कर सरोवर अति पावनतम तीर्थ हैं तथा यहां अनेक वैष्णव मन्दिर हैं।

श्री शान्तिनाथ बघेरा अतिशय क्षेत्र

अजमेर से ६७ कि० मी० तथा केकड़ी से १७ कि० मी० दूर पूर्व दिशा में ड़ाई नदी के निकट स्थित है। यहां सं० ११५६ की भगवान शान्तिनाथ की खड्गासन प्रतिमा है तथा खुदाई में अनेक दि० जैन मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं।

उदयपुर

अद्वितीय सौन्दर्य एवँ प्राकृतिक छटा से सुसज्जित उदयपुर नगर की स्थापना महाराणा उदयसिंह ने सन १५५ में करायी थी। यह अजमेर से ३०६ कि० मी० है। नगर में हाथी पोल के निकट एक विशाल जैन धर्मशाला है तथा नगर के मध्य में आठ विशाल दि० जैन मन्दिर हैं जिनमें सैकड़ों प्रतिमाएँ विराजमान हैं। आदिनाथ भगवान के मन्दिर के प्रागण में सम्मेद शिखर जी की रचना की है जो अति प्रभावित हैं। इस अनूठी अनुकृति के सम्मुख भगवान बाहुवली की पाँच फुट अवगाहना की मूर्ति विराजमान है।—दर्शनीय स्थल, राजमहल, प्रताप संग्रहालय, पिछोला भील, जग निवास,

जग मन्दिर, जगदीश मन्दिर, सहेलियों की वाड़ी, फतहसागर झील प्रताप स्मारक, सज्जन निवास वाग, महाराणाओं के स्मारक आदि।

करेड़ा पार्श्वनाथ (भोपाल सागर)

उदयपुर-चितोड़गढ़ जाने वाले रेलवे मार्ग पर करेड़ा स्टेशन के निकट है। इसका नाम अव भोपाल सागर रखा गया है। विशाल जैन मन्दिर में भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा भव्य, मनोज्ञ एवं दर्श-नीय हैं।

चितौड़

उदयपुर से चितौड़ ११० तथा अजमेर से १८६ कि० मी० है। चित्तौड़ एक स्थान का नाम भर नहीं है। यह एक ऐसी परम्परा का प्रतीक है जो शताब्दियों से अपनी मातृभूमि के लिए मर मिटने की प्रेरणा देती रही है। वीरों और वीरंगनाओं के रुधिर और भस्म ने मिल कर इसको ऐसा पक्का और गहरा रंग दिया है कि इसकी चमक सदियों से वरावर वनी हुई है। वीरों और वीरांगनाओं के ज्वलंत स्मारक के अतिरिक्त चितौड़ स्वयं अपने में अत्यन्त आकर्षक है। सूरज पोल से उत्तर की ओर जाने वाली सड़क पर आगे पूर्व की ओर जैन कीर्ति स्तम्भ आता है। इस सात मंजिले ८० फीट ऊँचे स्मारक का निर्माण दिगम्वर सम्प्रदाय के वघेरवाल महाजन सानाय के पुत्र जीजा ने करवाया था। इसका निर्माण वारहवीं शताव्दी का माना जाता है। यह कीर्ति-स्तम्भ आदिनाथ का स्मारक है। इसके चारों पार्श्व पर पाँच-पांच फुट ऊँची आदिनाथ भगवान की दिगम्वर मूर्तियाँ खुदी हुई हैं और वाकी के भागों पर अनेक छोटी छोटी जैन मूर्तियां, अङ्कित हैं। जैन कीर्ति स्तम्भ के पास ही महावीर स्वामी
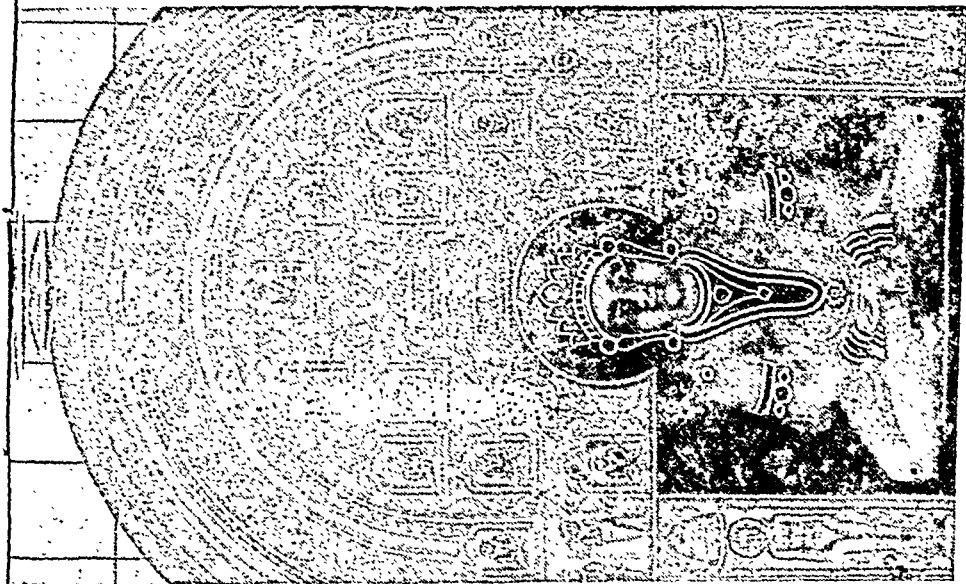
ऋषभदेव भगवान की मूर्ति केशरिया जी
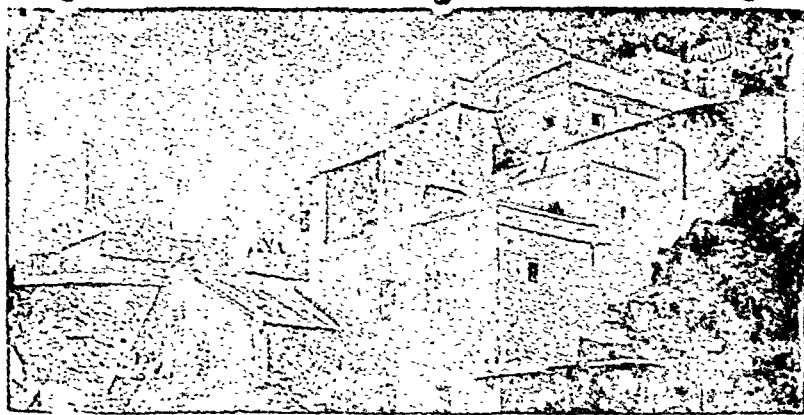
जैन मन्दिर अचलगढ़
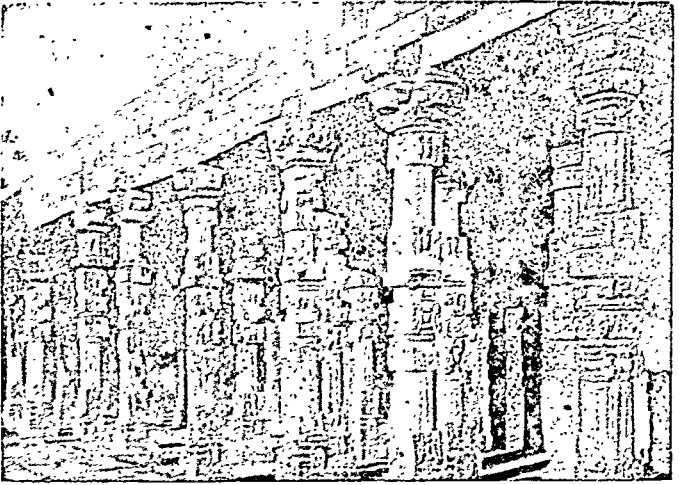
प्राचीन जैन मन्दिर कुतब दिल्ली
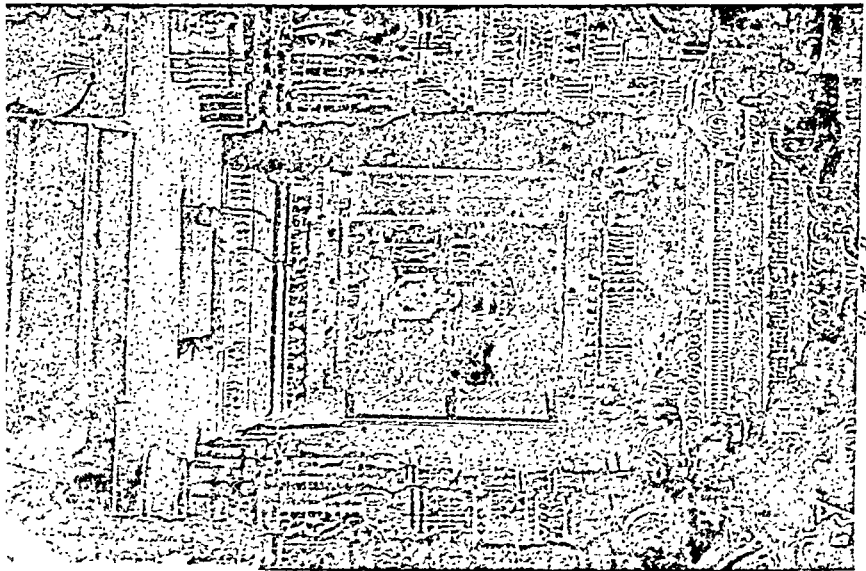
। जैन मन्दिर हैं जिसका जीर्णोधार महाराणा कुम्भा के समय सन् १४२८ ई० में ओसवाल महाजन गुणराज ने करवाया था।
—सतबीस देवरा, फतह-सागर महल के दक्षिण-पश्चिमी में सड़क पर ही है, ग्यारहवीं शताब्दी का निर्मित एक भव्य श्वे० जैन मन्दिर है। जिनमें २७ देवरियां होने के कारण यह सतबीस देवरा' कहलाता है। इसमें पत्थर की खुदाई की कला बहुत ही उच्च-कोटि की है। मन्दिर के अन्दर की गुम्बजनुमा छत व खम्भों पर की गई खुदाई दिलवाड़ा के जैन मन्दिरों के ही प्रकार की है। यहाँ ठहरने हेतु जैन धर्मशाला है।

अन्य दर्शनीय स्थान—बाघसिंह का चबुतरा, जयमल और कल्ला की छत्रियां, भामा शाह का महल, भामा शाह जैन थे और महाराणा प्रताप के आपत्तिकाल के समय अपना सर्वस्य राणा पर न्यौछावर कर दिया था। पत्ताजी का स्मारक, शृंगार चौंरी, राणा कुम्भा का महल, कुम्भश्याम मन्दिर, मीराबाई का मन्दिर, जयस्तंभ, कालिका माता का मन्दिर, पद्मिनी का महल, चित्रंग मोरी का तालाव, अद्भुत जी का मन्दिर, गोमुख, सीमद्धेश्वर मन्दिर, कीर्ति स्तम्भ, कुकडेश्वर कुंड।

चूलेश्वर

पश्चिमी रेलवे की अजमेर-खंडवा वाली लाइन पर चित्तौड़ गढ़ स्टेशन से ४५ कि० मी० दूरी पर यह क्षेत्र अवस्थित है। यहाँ पहाड़ के नीचे तथा ऊपर एक-एक मंदिर है। ऊपर के मंदिर में २ फुट ऊंची भगवान पार्श्वनाथ की एक प्रतिमा बालूकी बनी हुई हैं।

लाडनूं

नागौर जिले के अन्तर्गत लाडनूं नगर में दि० जैन मन्दिर हैं।

यहाँ संगमरमर से निर्मित लाखों रुपयों की लागत से बना हुआ सुखदेव आश्रम का जैन मन्दिर राजस्थान में अपने ढंग का एक ही है।

सीकर

सीकर में भी भव्य जैन मन्दिर हैं जिनमें प्राचीन मूर्तियाँ आकर्षक हैं।

फलवर्धी पार्श्वनाथ

नागौर जिले में मेड़ता सिटी तहसील से १४ कि० मी० दूर फलोंदी ग्राम में फलवर्धी पार्श्वनाथ हैं। रेलवे स्टशन मेड़ता रोड जंक्शन लगता है। मूलनायक के अतिरिक्त शीतलनाथ जी व अजित-नाथ जी की प्रतिमाएँ तथा काँच का काम प्रभाविक है।

सूमैक

जाखलौन स्टेशन से ६ कि० मी कच्चे पहाड़ी मार्ग की दूरी पर यह स्थित है। यहां पर्वत पर एक छतरी बनी है जिसमें डेढ़ हजार वर्ष प्राचीन शान्तिन.थ भगवान के चरण चिह्न हैं।

श्री ऋषभदेव (केशरिया जी)

उदयपुर से रोड द्वारा लगभग ६७ कि० मी० दूर है तथा धुलेव ग्राम के नाम से प्रसिद्ध है। श्री ऋषभदेवजी का मन्दिर दुर्ग के समान पत्थर का बना हुआ है चारों ओर विशाल कोट के फाटक पर पत्थर के दो हाथी हैं। भीतर नाना देव-देवियों की मूर्तियों से सुशोभित

संगमरमर का बना हुआ एक विशाल मन्दिर है जिसमें ४८ शिखर हैं मध्य वेदी में मूलनायक श्री आदिनाथ भगवान की ६-७ फुट, अवगाहना वाली पद्मासन अति मनोज्ञ श्याम वर्ण दि० प्रतिमा विराजमान है। जिसके चारों ओर एक धातुपट्ट में अनेक प्रतिमाएँ भी अंकित हैं। यहाँ दूध दही के भी कलश होते हैं और केशर का तो इतनी अधिकता से प्रचार है कि सारी मूर्ति को लेप कर दिया जाता है और उसकी मनोहरता को ही ढक दिया जाता है। केशर से ज्यादा फूलों की भरमार होती है और मस्तक तक आच्छांदित कर दिया जाता है। इस प्रतिमा पर आँगी, मुकुट आदि भी चढ़ता है। प्रतिमा के सामने हाथी पर चढ़े हुए नाभिराय और मरुदेवी की दा मूर्तियां हैं। इसके बायीं ओर में भी वेदियाँ है। एक दाल.न में चार वेदियों में चार मूर्तियां हैं। इसके आगे सात वेदियों में सात मूर्तियां हैं। पूजन के दालान में एक कोठहरी के आगे दालान में बड़ी सौम्य भगवान शान्ति नाथ की तथा दो अन्य प्रतिमाएँ हैं, द्वार के उभय पार्श्वों में भी दो श्याम वर्ण प्रतिमाएँ है। उसके बगल के दालान में १६ वेदियों में १६ श्याम वर्ण की प्रतिमाए हैं। इसके पीछे एक सहस्त्रकूट चैत्यालय है। बड़े मन्दिर के पीछे एक अन्य वेदी में भगवान शान्तिनाथ की प्रतिमा के अतिरिक्त और भी बहुत सी प्रतिमाऐं हैं। यहां अनेक शिलालेख हैं जिससे स्पष्ट होता है कि यह दिगम्बर मन्दिर है। कई धर्मशाला हैं—प्रति वर्ष चैत्र सुदी ८ को रथयात्रा होती है।

बामन बाड़ जी

सिरोही रोड स्टेशन से ८ कि० मी० दूर यह तीर्थ स्थान है। मूलनायक प्रतिमा भगवान महावीर की है। साहित्यकारों के अनुसार भगवान के कानों में कीले ठोकने की घटना यहाँ घटी थी। इस

प्राचीन मन्दिर का निर्माण मौर्य सम्राट महाराज सम्प्रति द्वारा किया वताया जाता है। भगवान महावीर के २७ पूर्व भवों के अति उत्तम तथा कलात्मक चित्र वने हुए हैं।

गोड़वाड़ पंचतीर्थी

फालना से वस के द्वारा रणकपुर व वहाँ से मुंछाला महावीर, नारलोई, नाड़ोल व वरकाणा होकर राणी स्टेशन गोड़वाड़ पंचतीर्थी का एक स्थल नारलाई है। यहाँ ११ जैन मन्दिर हैं। नारलोई से नाड़ोल ९ कि० मी० है यहाँ पद्मप्रभु भगवान का मन्दिर है। नाड़ोल से वरकाणा ५ कि० मी० है। यहां पर भगवान पार्श्वनाथ का ५२ जिनालय अति प्राचीन मन्दिर है।

आबू पर्वत--दिलवाड़ा

आबूरोड स्टेशन-दिल्ली से ७७६ कि० मी० तथा अहमदावाद से २१३ कि० मी० है। अरावली शृंखलाओं के दक्षिण-पश्चिम में ४००० फीट ऊँची पहाड़ी पर स्थित 'माउन्ट आबू, चारों ओर से सुहावने जंगली तथा विचित्र आकृतियों की विशाल चट्टानों से घिरा है।— दर्शनीय स्थल, नक्खी तालाव, रघुनाथ जी मन्दिर, टोड एवं ननरोक, सनसेट पाँइण्ड अर्बुदा देवी मन्दिर, गुरुशिखर, गौमुख आदि।

विश्व प्रसिद्ध दिलवाड़ा श्वे० जैन मन्दिर माउन्ट आबू डाकघर से लगभग डेढ़ कि० मी० दूर है। मुख्य पांच मन्दिरों में से दो मन्दिर अपनी सूक्ष्म कलात्मक खुदाई के लिए अद्वितीय हैं। तेजपाल मन्दिर का निर्माण महाराजा भीम के मंत्री विमलशाह ने सन् १०३१ में लगभग १८ करोड़ ५३ लाख रुपये की लागत से कराया था। मूल-नायक भगवान आदिनाथ की प्रतिमा है तथा परिक्रमा में ५२

देवालयों में तीर्थंकर मूर्तियां विराजमान हैं।—विमलवसही मन्दिर भी विशद कलात्मक शिल्प और कला कौशल का परिचायक है। गर्भगृह के दायीं और बायीं ओर देवरानी एवं जेठानी के छोटे-छोटे अति सुन्दर देवालय हैं।—पितलहर एवँ चौमुखी मन्दिर भी दर्शनीय हैं। दि० जैन मन्दिर माउन्ट आबू से जाते हुये दायीं ओर सड़क पर कुछ सीढ़ियाँ चढ़कर हैं, ऐसा अनुमान होता है कि किसी प्राचीन मन्दिर के स्थान पर प्राचीन प्रतिमा स्थापित करके इस मन्दिर का निर्माण हुआ है। धर्मशाला है तथा व्यवस्था सुन्दर है।

अचलगढ़—जैन श्वे० मन्दिर एक छोटी सी पहाड़ी पर स्थित हैं। रास्ता पक्का सुन्दर है। यहां चार मन्दिर हैं। जिनमें चौमुख जी का मन्दिर १७ वी शताब्दी का बहुत प्रसिद्ध है। अष्ट धातु की वनी १४ मूर्तियों का वजन १४४० मन अनुमान किया जाता है। अचलगढ़ किले का निर्माण मेवाड़ के महाराणा कुम्भा ने संन् १४५२ में कराया था। किले में अनाज के भण्डार रानी ओखा के महल इत्यादि दर्शनीय हैं। दिलवाड़ा से लगभग १० कि० मी० है।

कुम्भारिया—आबू रोड स्टेशन से २४ कि० मी० अम्वा जी गुजरात प्रान्त में हैं और अम्बा जी माता की यहां बड़ी मान्यता है। यहाँ से १½ कि० मी० दूर विमलशाह के निर्मित ५ विशाल एवँ कलापूर्ण तथा श्वे० जैन मंदिर कुम्भारिया में हैं।

श्री जीरा वाला पार्श्वनाथ

माउन्ट आबु के पश्चिम में ३८ कि० मी० दूर ग्राम में प्राचीन तीर्थ स्थित है। मूलनायक भगवान पार्श्वनाथ की प्राचीन प्रतिमा एक पर्वत की गुफा में भूगर्भ से प्राप्त हुई थी। यहां ५२ जिनालय हैं तथा धर्मशाला है।

वीजोल्या-पार्श्वनाथ

वीजोल्यिा ग्राम के समीप ही आग्नेय दिशा में यह प्राचीन एवं रमणीय अतिशय क्षेत्र स्थित है। इसका प्राचीन नाम विन्ध्याचली था। सैकड़ों स्वाभाविक चट्टानों में से दो चट्टानों पर शिलालेख तथा उन्नत-शिखर पुराण नामक ग्रन्थ अंकित है। कोट में पार्श्वनाथ जी के ५ दि० मन्दिर हैं, जिन्हें ११७० में लोलक नामक श्रावक ने बनवाये थे। इन मन्दिरों को अजमेर के चौहान वंशी राजा पृथ्वीराज द्वि० और सोमेश्वर ने सं० १२२६ को एक ग्राम भेंट किया था। यहां भट्टारकों की प्रतिमाएँ भी हैं तथा एक मन्दिर ग्राम में भी हैं।

रणकपुर

उदयपुर से लगभग १६० कि० मी० है। रेल द्वारा फालना जंकशन से ३२ कि०मी० सादड़ी से १६ कि०मी० दूरी पर रणकपुर जैन मंदिर कला और शिल्प के अनुपम भंडार हैं। इन मन्दिरों का निर्माण मेवाड़ के महाराणा कुम्भा के राज्यकाल में धरणशाह नामक पोरवाल जैन महाजन ने सन् १४३९ में करवाया तथा निर्माण कार्य ६५ वर्षों में पूर्ण हुआ। चौमुखा मन्दिर के सामने ही दो जैन मन्दिर है। १४४४ स्तम्भों पर खड़ा हुआ २९ हाल वाला यह मूर्तिकला का अद्भुत नमूना हैं, इन स्तम्भों की विचित्रता यह है कि कोई भी दो स्तम्भ एक समान नहीं हैं। कुछ युगल जोड़ों की भी कलाकृतियाँ हैं।

मूंछाला महावीर

पाली जिले के देसुरी तहसील में घाणेराव कस्बे से ३ कि. मी. दूर यह स्थल है। मूलनायक प्रतिमा भगवान महावीर की है। भारत

में यही एक ऐसी प्रतिमा है जिसमें भगवान महावीर के बिम्ब पर दाढ़ी-मूंछ है। धर्मशाला है।

श्री नाकोड़ा पार्श्वनाथ

यह स्थान लूनी पुनाकाव लाइन पर वालोतरा स्टेशन से लगभग ९ कि. मी. चल कर पर्वतों में स्थित है। ग्यारहवीं शताब्दी में नाकोड़ा नामक छोटे से गाँव में भूमि खोदते समय तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ स्वामी की मनोहर प्रतिमा प्राप्त हुई थी और उसे मन्दिर वनवाकर उसमें स्थापित किया था। अब यहां एक विशाल घेरे में तीन भव्य जैन मन्दिर हैं और चार भूमिगृह हैं। वाजोतरा स्टेशन में जैन धर्मशालाएं हैं।

घँघाडी (गंगाडी)

उत्तर रेलवे की बीकानेर जोधपुर लाइन से आसरनाड़ा स्टेशन से घंघाड़ी तीर्थ को मार्ग जाता है यहां सम्राट अशोक के पौत्र सम्प्रति का वनवाया हुआ पद्मप्रभु जिनालय हैं। १७वीं शताब्दी में यहाँ कई धातुमयी जैन प्रतिमायें थी जिन पर सम्प्रति आदि के लेख होने का उल्लेख महाकवि श्री समय सुन्दर ने किया है। परन्तु वे प्रतिमायें अब प्राप्त नहीं। १० वीं शताब्दी की मूर्तियाँ अब भी प्राप्त हैं।

जैसलमेर

उत्तर रेलवे की जोधपुर पोकरण लाइन पर पोकरण स्टेशन से जैसलमेर के लिये वस सर्विस है। यहां के किले में ८ भव्य व कला पूर्ण मन्दिर हैं, उनके तोरणादि एवँ शिखर की कारीगरी वहुत ही भव्य है। दो मन्दिरों के वीच एक भोयरें में सुप्रसिद्ध प्राचीन ताड़

पत्रीय जैन साहित्य भंडार है। यहां सभी मन्दिर १५ वीं अथवा १६ वीं शताब्दी के हैं। नगर में अनेक मन्दिर देवासर, दादावाड़ियां तथा उपाश्रम हैं। जैसलमेर से ५ कि. मो. दूरी पर 'अमर सागर' में अनेक कलापूर्ण जैन मन्दिर हैं।

लौद्रवा

जैसलमेर से १६ कि० मी० पश्चिमोत्तर दिशा में है। पहले रियासत की राजधानी थी। प्राचीन काल में यहां विश्वविद्यालय भी रहा है। मोहम्मद गौरी ने यहाँ काफी विनाश किया। सहस्त्रफणी श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ की प्रतिमा आर्कषक है। प्रवेश द्वार स्थापत्य कला का अनोखा नमूना है।

कापरड़ाजी

जोधपुर से जैतारण मार्ग जो लगभग १०४ कि० मी० है, के मध्य में कापरड़ा जी तीर्थ है। भाना जी भण्डारी पर शासन की ओर से आई विपत्ति टलने पर उन्होंने यहां एक यति जी के उपदेश से जैन मन्दिर का निर्माण कराया था। यहाँ के मूलनायक स्वयंभु पार्श्वनाथ भगवान हैं। मन्दिर के चारों ओर विशाल धर्मशाला है।

गांगाणी (अर्जुनपुरी)

यह क्षेत्र मारवाड़ का एक अति प्राचीन तीर्थ स्थल है जो जोधपुर से दक्षिण पूर्व दिशा में ३२ कि० मी० दूर स्थित हैं। इसका प्राचीन नाम अर्जुनपुरी था तथा धर्मनाथ स्वामी का जिनालय अति प्राचीन है। जनश्रुति के अनुसार इस मन्दिर का निर्माण मौर्य सम्राट

सम्प्रति ने करवाया था। यहां ४ प्रतिमाएँ हैं जिनमें से एक सर्व-धातु की भगवान ऋषभदेव की सं० ६३७ की है।

सांचोर [सत्यपुरी]

राजस्थान-गुजरात की सीमा पर वाड़मेर से डीसा की ओर जाने पर अवस्थित है। यहाँ पाँच जैन मन्दिर हैं। इनमें २ भगवान महावीर स्वामी के हैं, एक जीवित स्वामी का मन्दिर है जिसमें मूलनायक प्रतिमा भगवान महावीर की है। खरतरगन्ध का धर्मनाथ, चोदसिया गच्छ का शीतलनाथ और ग्राम के बाहर पार्श्वनाथ के जिनालय हैं।

कैलाश-अस्टापद

हरिवंश पुराण के अनुसार भगवान ऋषभदेव देवों में पूजित चरणों के धारक रत्नत्रय रूप भावतीर्थ को प्रवर्तन कर कल्पान्त काल तक स्थिर रहने वाला एवँ त्रिभुवन जन हितकारी क्षेत्र तीर्थ को प्रवर्तन करने के लिए स्वभावत: कैलाश पर्वत पर इस तरह आरुढ़ हो गये, जिस तरह देदीप्यमान प्रभा का धारक वृपका सूर्य निषेधाचल पर आरुढ़ होता है।—भगवान ने एक हजार राजाओं के साथ योग निरोध कर कैलाश से मोक्ष प्राप्त किया।—मुनिराज भरत ने आयु के अन्त में वृषभसेन आदि गन्धरों के साथ कैलाश पर्वत पर आरुढ हो मोक्ष प्राप्त किया।—श्री वाहुवली स्वामी कैलाश से मोक्ष प्राप्त हुए।—सगर चक्रवर्ती के उत्तराधिकारी भगीरथ नरेश ने कैलाश में जाकर मुनिदीक्षा ली और गंगा-तट पर तप करके मुक्त हुए।—हरिपेण चक्रवर्ती का पुत्र हरिवाहन था, उसने कैलाश पर्वत पर दीक्षा ली और वहीं से निर्वाण प्राप्त किदा।—शिखर से

व्याल, महाव्याल, अच्छेद्य, अभेद्य और नागकुमार मुनि भी मुक्त हुए।

इन्द्र ने अष्टापद पर रत्नत्रय के प्रतीक तीन स्तूप वनाये। भरत चक्रवर्ती ने यहां चार सिंहनिषेद्या वनवायीं, जिनमें सिद्ध प्रतिमाएँ विराजमान करायीं। इनके अतिरिक्त उन्होंने चौबीस तीर्थंकरों और अपने भाइयों की प्रतिमाएँ भी विराजमान करायीं, ७२ स्वर्ण मन्दिर निर्मित कराये थे तथा चौवीस तीर्थंकरों और ९९ भाइयों के स्तूप भी वनवाये थे। इनका अस्तित्व कव तक रहा—किन्तु अनुमान है सहस्त्राब्दियों तक रहा।—द्वितीय चक्रवर्ती सगर के साठ हजार पुत्रों ने जव अपने पिता से कुछ कार्य करने की आज्ञा माँगीं तव राजा ने आज्ञा दी कि भरत चक्रवर्ती ने कैलाश पर्वत पर महारत्नों से अरहन्तों के मन्दिर वनवाये थे। तुम लोग पर्वत के चारों ओर गंगा नदी को उन मन्दिरों की परिखा बना दो। उन राजपुत्रों ने आज्ञानुसार दण्डरत्न से वह काम शीघ्र ही कर दिया।—इस घटना के पश्चात् एक वार लंकापति दशासन नित्यालोक नगर के नरेश की पुत्री रत्नावली से विवाह करके आकाश मार्ग से जा रहा था। किंतु कैलाश पर्वत पर विमान सहसा रुक गया। दशासन ने विमान रुकने का कारण जानना चाहा तो उसके अमात्य मारीच ने कहा—कैलाश पर्वत पर एक घोर तपस्वी मुनिराज विराजमान हैं, विमान उनको प्रतिक्रमण नहीं कर सका है। दशासन ने उतर कर मुनिराज के दर्शन किये। किन्तु यह देखते हीं वह वाली है और अपने पूर्व संघर्ष का स्मरण कर क्रोध में भर वोला—अरे दुर्वुद्धि, अभिमान में मेरा विमान रोक लिया। तू जिस कैलाश पर्वत पर वैठा है उसे उखाड़ कर तेरे ही साथ अभी समुद्र में फेंकता हूँ। यह कहकर दशासन ने ज्यों ही भुजाओं के विद्यावल की सहायता से कैलाश को उठाना प्रारंभ किया, मुनिराज वाली ने अवधिज्ञान से दशासन के इस दुष्कृत्य को जान लिया।—'भरत चक्रवर्ती ने नाना प्रकार के सर्व रत्नमयी भव्य

जित मन्दिर बनवाये हैं और सुर और असुर प्रतिदिन इनकी पूजा करते हैं।'—ऐसा विचार कर मुनिराज ने पर्वत को अपने पैर के अंगूठे से दवा दिया। दशानन दव गया और बुरी तरह रोने लगा। तभी से इसका नाम रावण पड़ गया। महामुनि बाली घोर तपस्या करके कैलाश से मुक्त हुए। जैन पुराणों के अनुसार चतुर्थ काल में कैलाश यात्रा का वहुत रिवाज था। विद्याधर विमानों द्वारा कैलाश की यात्रा को जाते रहते थे। अजंना के पिता राजा महेन्द्र और पवंनजय (हनुमान) के पिता राजा प्रल्हाद ने कैलाश यात्रा के समय ही दोनों का विवाह सम्बन्ध निश्चय किया था।

कैलाश पर्वत की स्थिति—कैलाश की आकृति ऐसे लिंगाराज की है जो षोडश दलवाले कमल के मध्य खड़ा हो। उन सोलह दल वाले शिखरों में सामने के दो शृंग झुककर लम्बे हो गये हैं। इसी भाग से कैलाश का जल गौरी कुण्ड में गिरता है। कैलाश इन पर्वतों में सबसे ऊँचा है और वर्ण कसौटी के ठोस पत्थर जैसा है। किन्तु वर्फ से ढँके रहने के कारण वह रजत वर्ण प्रतीत होता है। दूसरे शृंग कच्चे लाल मटमैले पत्थर के हैं। कैलाश के शिखर की ऊँचाई समुन्द्र तल से १९००० फुट है। इसकी चढ़ाई डेढ़ मील की है जो अति कठिन है। तिव्वत की ओर से पर्वत ढलान वाला है और इधर से चढ़ना योग्य है।

हिन्दू पुराण 'श्रीमद्भागवत' के उल्लेख से स्पष्ट है कि वदरिकाश्रम (जिसे वदरी विशाल या विशाला भी कहते हैं) में भगवान ऋषभदेव के पिता नाभिराज जीवनमुक्त हुए तथा माता मरुदेवी ने तपस्या की थी, वहाँ लोगों ने मन्दिर बनवाकर उनके प्रति अपनी भक्ति प्रकट की। वह मन्दिर अलकनन्दा के उस पार माणा गाँव के निकट है। सम्भवत: नाभिराज के मुक्ति स्थान पर चरण स्थापित कर दिये गये। ये चरण वदरीनाथ मन्दिर के पीछे पर्वत पर बने हुए हैं। यह मानने के पर्याप्त कारण हैं कि यहाँ पर प्रथम चक्रवर्ती भरत

ने एक मन्दिर वनवाया था। सम्राट भरत ने कैलाश पर्वत पर जिन ७२ स्वर्ण मन्दिरों का निर्वाण कराया वह अनुमानतः एक ही स्थान पर नहीं वनवाये थे, अपितु वे उस विस्तीर्ण पर्वत प्रदेश के उन स्थानों पर थे, जहां मुनियों ने तपस्या की अथवा उन्हें लाभ हुआ। अतः प्राचीन काल में उत्तराखण्ड के इस विस्तृत पर्वत प्रदेश में जैन मन्दिरों का वाहुल्य था। नीती घाटी या अलमोड़ा मार्ग से कैलाश की ओर जाने पर मार्ग में ध्वस्त मन्दिरों के अवशेष और जैन मूतियाँ अव भी मिलती हैं। सम्भवतः कुछ शताब्दियों पूर्व तक इस प्रदेश में जैन धर्म के अनुयायियों की भी संख्या विशाल होगी। एक जाति इस प्रदेश में अव भी मिलती है जिसे डिमरी कहा जाता है। डिमरी शब्द सम्भवतः दिगम्वरी का पहाड़ी अपभ्रंश है। इनके जीवन-मरण आदि जैनों से मिलते-जुलते हैं।

वदरीनाथ के दर्शन—वदरीनाथ की मूर्ति भगवान ऋषभदेव की ध्यान मुद्रा वाली पद्मासन मूर्ति है। यह वास्तव में दो भुजा वाली है, वाकी दो भुजाएं नकली लगाई हुई हैं। न्हवन करते समय मंदिर के पट वन्द रखे जाते हैं और पश्चात इसे वस्त्रालंकार से अलंकृत कर दिया जाता है, इसके पश्चात दर्शन कराये जाते हैं। वोलियाँ लेने पर कुछ लोगों को न्हवन के समय दिगम्वर वीतराग रूप में दर्शन होते हैं।

श्री नगर ऋषिकेश से वस द्वारा १०७ कि० मी० है। यह नगर एवँ जैन मन्दिर अलकनन्दा के तट पर अवस्थित है। पुराण साहित्य के अनुसार भगवान ऋषभदेव को केवल ज्ञान प्राप्ति के पश्चात भगवान के समवसरण अनेक वार इस पर्वत पर आया। हिमाचल के कण-कण में लोकवंश तीर्थंकरों और मुनियों की चरण धूलि मिली हुई है।—श्री नगर किसी समय पौड़ी गढ़वाल की राजधानी था एवं व्यापार का वहुत वड़ा केन्द्र रहा। उद्दाम विरही ने सन् १८६४ में श्री नगर को ध्वस्त कर दिया और जैन मन्दिर भी इस ध्वंस-

लीला में नहीं बच पाया। किन्तु प्रतिमाएं सुकुशल रहीं। ध्वस्त मन्दिर का पुननिर्माण हुआ जो शिला चातुर्य और कलापूर्ण वास्तु-विधान की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है।—इस मन्दिर में केवल एक वेदी है, जिस पर तीन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। मूलनायक भगवान ऋषभदेव की और दो भगवान पार्श्वनाथ की हैं। तीनों ही पद्मासन प्रतिमाएँ हैं और प्रभावक हैं। पाषाण का सूक्ष्म निरीक्षण करने से ज्ञात होता है कि ये प्रतिमाएँ लगभग पन्द्रह सौ वर्ष प्राचीन होगीं। इनमें भगवान पार्श्वनाथ की कृष्ण पाषाण की प्रतिमा के चमत्कारों और अतिशयों के सम्बन्ध में नाना प्रकार की किवदन्तियाँ प्रचलित हैं। मन्दिर के प्रांगण में क्षेत्रपाल का भी मन्दिर है।

बदरीनाथ का मार्ग—दिल्ली से ऋशिकेश रेल या बस द्वारा आगे ऋषिकेश से सीधे बदरीनाथ या श्रीनगर होकर बदरीनाथ बस द्वारा जा सकते हैं।

पोदनपुर

भगवान ऋषभदेव ने दीक्षा लेने से पूर्व अपने सौ पुत्रों को भरत क्षेत्र को ५२ जनपदों में बाँट कर विभिन्न देशों के राज्य दिये थे। अयोध्या की राजगद्दी पर अपने बड़े पुत्र भरत का राज्यभिषेक किया तथा दूसरे पुत्र बाहुबली को युवराज पद देकर उन्हें पोदनपुर का राज्य दे दिया। कुछ समय पश्चात महाराज भरत की आयुध-शाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ, भरत विशाल सेना लेकर दिग्विजय के लिए निकले और सम्पूर्ण भरत क्षेत्र जीत लिया, उन्होंने अपने भाइयों को भी अधनिता स्वीकार करने के लिए पत्र लिखे। ९८ भाइयों ने आपस में परामर्श करके भगवान के पास पहुँचे। भगवान ने उन्हें उपदेश दिया, जिससे उनके मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। फलतः उन्होंने मुनि दीक्षा ले ली। दिग्विजय प्राप्त करके जब भरत ने अयोध्या में प्रवेश किया तो उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि चक्र नगर के भीतर प्रवेश नहीं कर रहा, सन्देह युक्त होकर बुद्धि

सागर पुरोहित से इसका कारण पूछा। पुरोहित ने विचार करके उत्तर दिया 'आपके भाई बाहुबली आपकी आधीनता स्वीकार नहीं करते।' भरत ने एक चतुर दूत को बाहुबली के पास पोदनपुर भेजा। दूत ने बाहुबली की सेवा में पहुँचकर अपना परिचय दिया और अपने आने का उद्देश्य भी बताया। बाहुबली ने भरत की आधीनता स्वीकार करने से स्पष्ट इनकार कर दिया।

सम्राट भरत अपनी चतुरंग सेना के द्वारा पृथ्वीतल को आच्छादित करता हुआ पोदनपुर के मैदान में पहुँच गया। बाहुबली भी अक्षौहिणी सेना के साथ पोदनपुर से निकल पड़े। दोनों सेनाओं की भयानक मुठभेड़ हुई। तब दोनों राजाओं के मन्त्रियों ने परस्पर परामर्श करके, कि देशवासियों का व्यर्थ नाश न हो, अतः दोनों राजाओं में धर्म युद्ध यानी 'दृष्टि युद्ध, जलयुद्ध और मल्ल युद्ध' करने का निश्चय किया। बाहुबली सवा पांच सौ धनुष के थे और भरत पांच सौ धनुष के। इस ऊँचाई का लाभ बाहुबली को दृष्टि और जल युद्ध में हुआ। अन्त में मल्ल युद्ध हुआ। दोनों ही अप्रतिम वीर थे। किन्तु बाहुबली शारीरिक बल में भी भरत से बढ़-चढ़ कर थे। उन्होंने क्षणमात्र में भरत को हाथों में उठा लिया। बाहुबली ने राजाओं में श्रेष्ठ बड़े भाई तथा भरत क्षेत्र को जीतने वाले भरत को जीतकर भी 'वे बड़े हैं' इस गौरव से उन्हें पृथ्वी पर नहीं पटका बल्कि उन्हें अपने कन्धे पर बैठा लिया। बाहुबली स्वामी धन्य हो गये।—इस अपमान से क्षुब्ध होकर भरत ने बाहुबली पर चक्ररत्न चला दिया। किन्तु चक्र बाहुबली की प्रदीक्षण देकर लौट आया। बाहुबली भरत के चरम शरीरी भाई थे, इसलिए चक्र उनके ऊपर कुछ प्रभाव नहीं डाल सका। बाहुबली के ऊपर इसका इतना प्रभाव हुआ वह सोचने लगे—बड़े भाई ने इस नश्वर राज्य के लिए यह कैसा लज्जाजनक कार्य किया है। आहिस्ते से इन्होंने भरत को एक ऊंचे स्थान पर उतार कर भरत से अविनय की क्षमा मांगी और

अपने पुत्र महाबली को राज्य सौंप कर मुनि दीक्षा ले ली।

मुनि दीक्षा लेकर एकलविहारी रहे। फिर कैलाश पर्वत पर जाकर एक वर्ष का प्रतिमा योग धारण करने का नियम लेकर उसी स्थान पर खड़े रहे—दीमकों ने उनके चारों ओर वामी बना लीं। वामियों में सर्प आकर रहने लगे। उनमें लताएँ उग आयीं। चिड़ियों ने उनमें घोंसले बना लिये। किन्तु बाहुबली के मन में एक विकल्प था कि मेरे कारण भरत को कलेश पहुँचा है या मैं अभी भी भरत की भूमि पर खड़ा हूँ। जब एक वर्ष समाप्त हुआ तो चक्रवर्ती भरत ने आकर उन्हें प्रणाम किया। तभी बाहुबली स्वामी को केवल ज्ञान हो गया। भगवान बाहुबली केवलज्ञान प्राप्ति के पश्चात भगवान ऋषभदेव के सभासद हो गये और कैलाश पर्वत से युक्त हुए। भरत चक्रवर्ती ने पोदनपुर में ५२५ धनुष ऊँची स्वर्णमय बाहुबली स्वामी प्रतिमा को तथा सहस्त्रकुट नामक एक चैत्यालय जिसमें एक हजार स्तम्भ लगे हुये थे बनवाया।

कथा कोषों और पुराणों में पोदनपुर के कई नाम मिलते हैं, जैसे पोदन, पोतन एवँ पोयणयुरा। पोदनपुर क्षेत्र कहाँ था, वर्तमान उसकी क्या स्थिति है, अथवा क्या नाम है, इस बात का कहीं कोई उल्लेख नहीं है। समाज में एक धारणा व्याप्त है कि यह दक्षिण में कहीं था तो अन्य-धारणा है कि यह नगर उत्तरापथ देश में था। महापुराण, हरिवंशपुराण, पद्मपुराण इन सबमें बाहुबली के नगर का नाम पोदनपुर मिलता है।

पोदनपुर के विषय में कुछ पौराणिक घटनाएँ—हस्तिनापुर के राजा महापद्म और सुरम्य देश के पोदनपुर नरेश सिंहनाद में बहुत समय से शत्रुता चली आ रही थी। अवसर पाकर महापद्म ने पोदनपुर के ऊपर आक्रमण कर दिया पोदनपुर में एक हजार स्तम्भ युक्त सहस्त्रकूट नामक चैत्यालय को देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ और उसके मनमें भावना जागृत हुई कि मैं भी अपने नगर में ऐसा ही

चैत्यालय बनवाऊंगा।—एक अन्य कथा इस प्रकार मिलती है। पाटलिपुत्र नरेश गन्धविदत्त की पुत्री गन्धर्वदत्ता अत्यन्त रूपवती थी। उसने प्रतिज्ञा की थी कि 'जो मुझे गन्धर्व विद्या में पराजित कर देगा, उसे ही वर्ण करूँगी।' अनेक कलाकार पराजित होकर लौट गये। एक दिन विजयार्ध पर्वत के निकटवर्ती पोदनपुर के निवासी पंचाल उपाध्याय ने राज्यकन्या को पराजित करके उसके संग विवाह किया।—एक अन्य कथानक इस प्रकार है। द्वारका नगरी में वासुदेव कृष्ण की महारानी गन्धविदत्ता का पुत्र गजकुमार था। पोदनपुर नरेश अपराजित को पराजित करने के लिए कृष्ण ने कई बार प्रयत्न किया, किन्तु वह अपराजित ही रहा। फिर उसे राजकुमार गजकुमार ने पराजित किया।—एक अन्य घटना के अनुसार अयोध्या नरेश त्रिदशंजय नरेश के पुत्र जितशत्रु का विवाह पोदनपर नरेश व्यानन्द की पुत्री विजया से हुआ। जिसकी पवित्र कुक्षि से द्वितोय तीर्थंकर भगवान अजितनाथ का जन्म हुआ। ऐसा भी उल्लेख है कि भगवान पार्श्वनाथ अपने एक पूर्वभव में पोदनपुर नरेश अरविन्द के पुरोहित विश्वभूति के पुत्र मरुभूति थे—इस प्रकार अनेक पौराणिक घटनाओं का सम्वन्ध पोदनपुर के साथ रहा। किंतु इतने प्रसिद्ध एवँ समृद्ध नगर का विनाश किन कारणों से और किस काल में हो गया अथवा यह प्रकृति के प्रकोप से नष्ट हो गया या वर्तमान युग में अवस्थित है तो कहाँ है और किस रूप में है, इस सम्वन्ध में कोई उल्लेख साहित्य में अथवा इतिहास ग्रन्थों में नहीं मिलता है।

कोटिशिला

कोटिशिला निर्वाण क्षेत्र है, निर्वाण काण्ड गाथा में इस प्रकार है। 'कलिंग देश में स्थित कोटिशिला से यशोधर राजा के पांच सौ पुत्र और एक करोड़ मुनि मोक्ष गये।' 'हरिवंश पुराण' में कृष्ण की

दिग्विजय का उल्लेख करते हुए कोटिशिला का वर्णन किया है 'सर्व रत्नों से युक्त नारायण ने चक्ररत्न की पूजा करके दक्षिण भरत क्षेत्र को जीता, समस्त राजाओं को जीतकर कोटिशिला की ओर गये ।' उत्कृष्ट शिला पर अनेक करोड़ मुनिराज सिद्ध अवस्था को प्राप्त हुए हैं, इसलिए वह कोटिकशिला के नाम से प्रसिद्ध है । नारायणों के लिए इस शिला का उठाना सदा इसलिए आवश्यक रहा, जिससे इनके शारीरिक बल-विक्रम की परीक्षा हो सके । लोगों को अपनी शक्ति से प्रभावित करने के लिए इस शिला को उठाना मानो नारायण-पद की एक अनिवार्य शर्त थी । पद्मपुराण में भी लक्ष्मण द्वारा कोटिशला को उठाने का वर्णन मिलता है ।

वस्तुत: कोटिशिला कहां थी और अब कहां है, इससे इतिहास-कार अनभिज्ञ हैं ।—'विविध तीर्थकल्प' में इस स्थान को दशार्ण पर्वत के समीप वताया है । प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता वी० सी० मजूमदार का अभिमत है कि कलिंग और दक्षिण कोशल का मध्यवर्ती पार्वत्य प्रदेश औड़ था और निकटवर्ती पर्वत ही दशार्ण था । भुवनेश्वर के निकटस्थ उदयगिरि खण्डगिरि के कुमारी पर्वत अथवा कुमारगिरि पर स्थित शिला को कोटिशिला मानने की कल्पना को जन्म मिला । कुछ विद्वानों ने गंजाम जिले में मालती पर्वत स्थित शिला को स्वीकार किया, पुरातत्व अधिकारी श्री रावर्ट एवं श्री वैल के अनुसार यहां प्राचीन किला और मन्दिर भग्नावशेष दशा में विखरे पड़े हैं । कभी-कभी किसानों को यहां सोने की मुहरे तथा अन्य सामग्री मिल जाती हैं । पहाड़ी पर पाषाण में दीपक खुदा हुआ है जिसमें २५० सेर तेल आ सकता है इसे दीप शिला कहते हैं, पर्वत की तलहटी को केसरपल्ली कहा जाता है । यहाँ कमलों से सुशोभित ७२ सरोवर हैं, जिन्हें केसरपल्ली नरेश ने अपनी ७२ रानियों के लिए वनवाये थे । पर्वत तथा तलहटी में कुछ जैन मूर्तियाँ भी मिली थी—एक अन्य मान्यता देवगिरि की है जो कोरापुट जिले में गंजाम और विजगा-

पट्टम कावाच म नागावली नदी के किनारे अवस्थित है। ४८ कि० मी० तक पर्यन्त यहां पर्वत श्रेणियां फैली हुई हैं। सभी पहाड़ों पर जंगल हैं किन्तु इस देवगिरि पर्वत पर वृक्ष बिल्कुल नहीं हैं। पहाड़ ग्रेनाइट पाषाण का हाथी के आकार जैसा है। पहाड़ की कुछ विशेषताएँ हैं, एक ही कला का है, घास फूस, ऊबड़-खाबड़ नहीं है। हजारों व्यक्ति पहाड़ की पूजा करने आते हैं। मांसाहारी व्यक्ति भी पूजा करने यहाँ आता है उसे भी उस दिन माँस-भक्षण का नियम करना पड़ता है अन्यथा वह बीच में ही गिर पड़ता है, ऐसी कुछ मान्यता है।

मिथिलापुरी [जनकपुरी]

सीतामढ़ी से 'जनकपुर रोड' स्टेशन से जटकपुर (नेपाल सरकार रेलवे) ३८ कि० मी० है। भगवान ऋषभदेव ने दीक्षा लेने से पूर्व अपने सौ पुत्रों को विभिन्न प्रदेशों के राज्य दिये। उनमें एक पुत्र को विदेह देश का राज्य दिया था। इस देश पर इक्ष्वाकुवंश के राजाओं के सहस्त्रब्दियों तक राज्य किया। विदेह देश में स्थित प्रसिद्ध साँस्कृतिक नगरी में उन्नीसवें तीर्थंकर मल्लिनाथ और इक्कीसवें तीर्थंकर नमि नाथ की जन्म भूमि है। यहां इन दोनों तीर्थंकरों के गर्भ, जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान कल्याणक हुए हैं। इस कारण यह स्थान हजारों वर्षो से तीर्थ क्षेत्र रहा है। पश्चात इसी नगरी में राजा जनक हुए, जिनकी पुत्री सीता थी। उनका विवाह रामचन्द्र जी के साथ हुआ था। जनक और सीता के उज्जवल चरित्र और देदीत्यमान व्यक्तित्व ने मिथला को ख्याति के शिखर तक पहुंचा दिया। पार्श्वनाथ तथा महावीर भगवान का समवसरण अनेक वार आया था। जैन पुराण साहित्य और कथा--ग्रन्थों ने मिथिलापुरी और उससे सम्वन्धित अनेक व्यक्यिों और घटनाओं का वर्णन मिलता है।—आज मिथिला क्षेत्र का अस्तित्व भी लुप्त हो चुका है।—

कहते हैं, जनकपुर प्राचीन मिथिला की राजधानी का दुर्ग था। पुर-नैलिया कोठी से पाँच कि० मी० सिगराओ स्थान है। यहां पर प्राचीन मिथिला नगरी के चिन्ह मिलते हैं।

तक्षशिला आदि

प्राचीन तक्षशिला पाकिस्तान में वर्तमान रावलपिन्डी जिले में था कनिंघम के मतानुसार यह 'कलाका सराय' से १½ कि० मी० कटक और रावलपिण्डी के बीच में और शाहधेरी के निकट था। आजकल यहाँ इस नगरी के खण्डहर पड़े हुए हैं। इस नगर की स्थापना वितस्ता (झेहलम) के तट पर श्री रामचन्द्र के भ्राता भरत ने अपने पुत्र तक्ष के नाम पर की थी। इस नगर पर सूर्यवंशी राजाओं का बहुत समय तक अधिकार रहा। महाभारत युद्ध के पश्चात गंधार देश के राजाओं ने तक्षशिला पर अधिकार कर लिया और नाग राजा तक्ष ने हस्तिनापुर के नरेश परीक्षित को पराजित करके हस्तिनापुर को विजय कर लिया। जब ई० पूर्व ३२६ में सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया उस समय तक्षशिला का राजा आम्भि था, उसने सिकन्दर की अधीनता स्वीकार कर ली थी। उसकी ही सहायता से सिकन्दर की सेना ने सिन्ध पार की। इस बात की पुष्टि अनेक इतिहास ग्रन्थों से होती है कि तक्षशिला सिकन्दर के आकमण के समय जैन धर्म का केन्द्र था और यहाँ अनेक दिगम्वर मुनि रहते थे। सिकन्दर के चले जाने के चार वर्ष उपरान्त मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त ने इसे अपने राज्य में मिला लिया था। मौर्य ।म्राट बिन्दुसार के काल में तक्षशिला में दो बार विद्रोह हुआ। एक वार अशोक को और दूसरी बार कुणाल को वहां विद्रोह दवाने को जाना पड़ा। अशोक जब राजगद्दी पर बैठा, तब उसने अपने पुत्र कुणाल को तक्षशिला का गर्वनर बनाया। ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में कुषाणों ने इसे अपनी राजधानी बनाया था।—पंजाव, तक्षशिला और अफ-

गानिस्तान तक दिगम्बर जैनियों का वहुल्य था, चीनी यात्री हवन्त-साँग ७वीं शताब्दी में भारत आया था उसके अनुसार पंजाव के सिंहपुर आदि स्थानों एवँ अफगानिस्तान में दिगम्बर जैनों की पर्याप्त संख्या थी। (हवन्तसाँग भारत भ्रमण ३७ व १४२)। रावलपिण्डी वर्तमान पाकिस्तान में कोटेरा नामक ग्राम के निकट 'मूर्ति' नामक पहाड़ी पर डा० स्टोन को प्राचीन मन्दिर मिला था। समाप्त

तीर्थ स्थानों की अनुक्रमणिका